ार्थित सर्वेक्षण प्रतिवेदन

(एक फा उद्योगीय उत्पादन का अर्थशास्त्रीय अध्ययन)

कोटा जिला में मसूरिया उत्पादन

राजस्थान विश्वविद्यालय

की

एम. ए. (अर्थशास्त्र), १९६४

की

परीक्षा हेतु प्रस्तुत

निर्देशक
डा. एम. पी. माथुर
प्रिन्सिपल, राजकीय महाविद्यालय, कोटा

प्रस्तुत कर्ता
मानमल जैन
एम. ए. (उत्तरार्द्ध) अर्थशास्त्र
राजकीय महाविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

भूमिका

वैसे तो सम्पूर्ण राजस्थान ही औद्योगिक दृष्टिकोण से एक पिछड़ा हुआ प्रदेश है, परन्तु गत दो तीन वर्षों से कोटा में नवीन उद्योगों का जिस द्रुत गति से विकास हो रहा है उससे यह देश के प्रमुख औद्योगिक नगरों की पंक्ति में आ गया है। कोटा के इस औद्योगिक विकास में चर्मण्यवती नदी ने तो चार-चांद लगा दिये हैं। सम्पूर्ण कोटा क्षेत्र में प्राकृतिक साधनों का बाहुल्य है और चर्मण्यवती नदी ने इनके औद्योगिक उपयोग के लिये सस्ती विद्युत शक्ति प्रदान कर औद्योगिक विकास का मार्ग प्रशस्त कर दिया है। यातायात की दृष्टि से भी कोटा रेल द्वारा देश की राजधानी व अन्य प्रमुख औद्योगिक एवं व्यापारिक नगरों से सुसम्बन्धित है। सड़कों द्वारा भी कोटा राजस्थान के सभी प्रमुख नगरों से मिला हुआ है एवं सड़क यातायात भी इसके औद्योगिक विकास में अत्यधिक सहायक सिद्ध हुआ है। कोटा का स्थान राज्य की औद्योगिक अर्थव्यवस्था में प्रमुख हो गया है, और इसीलिये इसे राजस्थान का "कानपुर" की संज्ञा दी जाने लगी है।

राजस्थान की अर्थव्यवस्था में विशाल प्रमापीय उद्योगों के साथ साथ दैनिक आवश्यकता की वस्तुएं एवं दस्तकारी के उत्कृष्ट नमूने प्रस्तुत करने वाले लघु एवं कुटीर उद्योगों का भी बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। राजस्थान का लगभग प्रत्येक नगर अपनी विशिष्ट दस्तकारी के लिये केवल भारत में ही नहीं विदेशों में भी प्रसिद्ध है। औद्योगिक अर्थव्यवस्था में कोटा का प्रमुख स्थान तो है ही परन्तु दस्तकारी के क्षेत्र में भी कोटा अपनी एकमात्र दस्तकारी मसूरिया के कारण इस क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

गत वर्षों में जिस द्रुत गति से कोटा का औद्योगिक विकास हुआ है लगभग उसी गति से इस दस्तकारी का भी विकास हो रहा है। गत दो-तीन वर्षों में इस उत्पादन में जो पहले केवल कोटा, कैथून व बून्दी की कुछ कार्यशालाओं एवं मारवाड़ निवासी तक सीमित था अब कोटा विभाग के विभिन्न कस्बों एवं देश विदेश के उत्कृष्ट, कलापूर्ण एवं महीन वस्त्र पहनने वालों तक

अपना क्षेत्र विस्तार कर लिया है । गत वर्ष में होने वाली अत्यधिक मांग ने सरकार, सहकारी विभाग एवं जनता का ध्यान इस ओर आकर्षित किया है । अब तक यह उत्पादन व्यापारियों एवं सेठियों की निजी स्वार्थ भरी नीतियों द्वारा सम्पन्न हो रहा था, सहकारिता का प्रवेश तो इस क्षेत्र में नहीं के बराबर था ।

कोटा की इस दस्तकारी के अप्रतिम विकास ने मुझे भी कोटा-निवासी होने के नाते, इस सम्बन्ध में विशिष्ट जानकारी प्राप्त करने की तीव्र उत्कंठा हुई एवं इस हेतु मुझे सर्वेक्षण करने के लिये साधन, कारण एवं उचित निर्देशन का सुसंयोग उपलब्ध हो गया एवं यह सर्वेक्षण प्रतिवेदन इसीका परिणाम है । इसका उद्देश्य केवल परीक्षा हेतु प्रस्तुत कर देना मात्र न होकर इसके सम्बन्ध में अधिक से अधिक जानकारी सुव्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करना है ।

प्रस्तुत सर्वेक्षण प्रतिवेदन में इस उत्पादन के संगठन, वित्त-प्राप्ति, रोज़गार, श्रम, कच्चा माल, विपणन आदि के सम्बन्ध में तात्कालिक स्थिति को प्रस्तुत करते हुये उसमें व्याप्त दोषों एवं कमियों का उल्लेख कर उत्पादन के भावी विकास हेतु व्यावहारिक एवं समुचित सुझाव प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है । आशा है उनको व्यवहार में लाने के सक्रिय कदम उठाये जाने पर दस्तकारी के विकास एवं संवर्धन के साथ साथ बुनकरों की स्थिति में सुधार होगा जिससे कला को दीर्घजीवन एवं संरक्षण प्राप्त हो सकेगा ।

यह सर्वेक्षण इस कुटीर उद्योगीय उत्पादन के सम्बन्ध में सुव्यवस्थित जानकारी प्रस्तुत करने का मेरा प्रथम प्रयास है । न तो सरकार द्वारा न ही किसी व्यक्ति विशेष द्वारा मसूरिया उत्पादन का पूर्ण सर्वेक्षण किया गया है जिससे उद्योग की स्थिति एवं विकास का सही मूल्यांकन किया जा सके । सीमित साधनों एवं अल्प समय के कारण मैंने केवल कोटा शहर तक ही अपना क्षेत्र सीमित रखा है । भविष्य में कोटा विभाग में विद्यमान दस्तकारी के सम्पूर्ण उत्पादन केन्द्रों को एक साथ लेकर गहन एवं विस्तृत सर्वेक्षण करने की आवश्यकता है जिसके लिये अधिक साधन, सुविधायें एवं समय वांछनीय है

मैं आदरणीय डा० एम.पी.माथुर, अधिष्ठाता, राजकीय - महा-विद्यालय, कोटा का हार्दिक कृतज्ञ हूं जिनके सुयोग्य निर्देशन एवं प्रोत्साहन से मैं इस कार्य को पूरा कर सका। डा० आर.पी.सिंह एवं महा-विद्यालय के अर्थशास्त्र विभाग के अन्य प्राध्यापकों का भी मैं हार्दिक आभारी हूं जिन्होंने मुझे समय समय पर प्रोत्साहन एवं उचित निर्देशन देकर इस कार्य को पूरा करने में मदद की है। बहुमूल्य सूचनायें देने एवं प्राप्त करने में सहयोग देने के लिये श्री महावीर प्रसाद जी, भूतपूर्व प्रशिक्षक, हाथकर्घा प्रशिक्षण केन्द्र, कैथून, बालकिशन जी मेहता एवं अब्दुल्ला गार्ड अध्यक्ष, बुनकर सहकारी समिति, कैथून प्रशंसा के पात्र हैं। सहकारी - विभाग एवं सांख्यिकी विभाग के कर्मचारियों एवं अधिकारियों को भी मैं हार्दिक धन्यवाद देता हूं जिन्होंने मुझे पर्याप्त जानकारी पूर्ण सुविधा के साथ प्रदान की। अन्त में मैं उन सब बुनकर एवं अन्य महानुभावों के प्रति आभार प्रदर्शित करता हूं जिनके प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष सहयोग से ऐसे कठिन कार्य को जो असाधारण एवं श्रमपूर्ण होते हुये भी, अपने व्यस्त जीवन के साथ साथ पूरा कर सका।

आशा है इस सर्वेक्षण के द्वारा इस उद्योग के सम्बन्ध में विकासोन्मुख मार्ग निर्धारण हेतु आवश्यक जानकारी उपलब्ध हो सकेगी।

विनीत

(मान मल जैन)

११।५६ धानमण्डी,
कोटा
२५ फरवरी, १९६४।

अन्तर्वस्तु

अध्याय	पृष्ठ संख्या

विषय-सूची

पृष्ठ-संख्या

पृष्ठ-संख्या

पृष्ठ-संख्या

पृष्ठ-संख्या

=०=०=
०

नक्शे, चित्र एवं आलोकचित्र

नक्शे:-

क्र. पृष्ठ संख्या

चित्र :-

आलोक चित्र (फ़ोटो) :-

-0-

अध्याय प्रथम

प्रस्तावना

" भारी उद्योगों का तो अवश्य ही केन्द्रीयकरण व राष्ट्रीयकरण करना होगा। परन्तु वे उस राष्ट्रीय प्रवृत्ति का छोटा से छोटा भाग होंगे, जो मुख्यत: देहात में चलेगी।[१] यदि भारत यंत्रोद्योगवादी बन जायगा तब जरूर वह दूसरे राष्ट्रों का शोषण करेगा और वह दूसरे राष्ट्रों के लिए अभिशाप --सारे संसार के लिए खतरा बन जायगा।"[२]

गांधीजी

विश्व के रंगमंच पर युगों से अनेकानेक संस्कृतियों, उद्योगों, हस्त-कलाओं, दस्तकारियों एवं वास्तु कलाओं का उत्कर्ष, अपकर्ष होता आया है। भारत की परम पावन पुनीत धरा पर भी आर्य संस्कृति के उत्कर्ष-अपकर्ष एवं विभिन्न संस्कृतियों के सम्पर्क एवं समन्वय के साथ साथ विविध प्रकार की कलाओं का विभिन्न रूपों में उद्गम विकास एवं पतन होता रहा है। साथ यहां उद्योग में हस्तकला व दस्तकारी का सुन्दर समन्वय यहां की प्राचीन एवं अविनाशी परम्परा है। हिन्दू साम्राज्यकाल में ढाका की मलमल और केलिकों से वर्तमान में मैसूर, बनारसी व चन्देरी की साड़ियां, भागलपुर सिल्क, काश्मीर के शाल-दुशाले व कोटा का डोरिया मसूरिया इस कुटीर उद्योग से प्रस्फुटित हस्तकला व दस्तकारी की सुन्दर समन्वय के विभिन्न रूप हैं।

प्रकृति के विभिन्न रूपों को संयुक्त रूप स्थलों, रेगिस्तान, मैदान, पठार, पहाड़, नदियों आदि विविध स्वरूपों से युक्त कटीली झाड़ियों से लेकर सागवान जैसे बहुमूल्यों वनों से भरपूर, रेत से लगाकर कपास उत्पादक काली मिट्टी से बनी गर्भ में वर्तमान सभ्यता के मूलभूत पदार्थ पेट्रोलियम, कोयला, अबरक, शीशा, ताम्बा आदि से भरी, मक्का से लेकर चावल तक पैदा करने वाली, निर्भय-मस्त सांगा प्रताप, दुर्गादास जैसे शूरवीर देश भक्त व स्वाभिमानी सपूतों व मान सिंह, जसवंतसिंह जैसे कुल कलंकों व राजसेवकों, पद्मिनी जैसी वीरांगनाओं, डालमियां, बिड़ला जैसे व्यापारियों, अहिल्याबाई से भक्तों एवं अनेकानेक साहित्यकारों की

१—रचनात्मक-कार्यक्रम पृष्ठ १२ (१९४१)

जन्मभूमि, विशाल भारतीय प्रांगण के पश्चिमी भाग में २३ अंश ३ कला से ३० अंश १२ कला उत्तर अक्षांश व ६९ अंश ३० कला से ७८ अंश १७ कला पूर्व देशान्तर के मध्य स्थित राजस्थान, हस्तकला वास्तुकला व दस्तकारी को विभिन्न सम्बन्धित रूपों में प्रस्फुटित करने में भी परम्परा से भारत के अन्य भागों से कभी भी पीछे नहीं रहा है। आज भी जयपुर चन्दन, हाथीदांत व पीतल पर नक्काशी व मीनाकारी एवं संगमरमर पर कटाई, जूतों पर कसीदाकारी, कलायुक्त लाख की चुड़ियाँ व कालीनों के रूप में, जोधपुर बादले (पानी की कैटलियां) हाथी दांत की चुड़ियाँ, पुतियाँ एवं जूतों, रंगाई व बंधाई के द्वारा सिरोही तलवारें, चाकु व छुरियों के रूप में, उदयपुर, तलवारों व साड़ियों पर सुनहरी, रूपहरी छपाई व नक्कासी एवं चन्दन की कटाई के द्वारा, सांगानेर विविध प्रकार की रंगाई, छपाई व बन्धेज के रूप में, जैसलमेर व मकराना संगमरमर की विभिन्न वस्तुओं के द्वारा व कोटा मसूरिया की साड़ियों एवं वस्त्रों के रूप में हस्तकला व दस्तकारी के विभिन्न रूप प्रस्तुत कर न केवल भारत में वरन् विदेशों में भी अपना स्थान हस्तकला व दस्तकारी की इज्जत करने वालों के हृदयों में बनाये हुये हैं।

कोटा जिला :-

स्थिति:- राजस्थान का दक्षिणी पश्चिमी भाग जो प्राचीनकाल से सूती वस्त्र उत्पादन का केन्द्र है बीसवीं सदी में हस्तकला के इतिहास में अपना एक नया अध्याय जोड़कर कला के क्षेत्र में अपने अस्तित्व की घोषणा कर रहा है। कोटा जिला इसी भाग के कोटा विभाग के मध्य में २४ अंश २७ कला उत्तर अक्षांश से २५ अंश ५४ कला उत्तर अक्षांश और ७५ अंश ३७ कला से 76 अंश 26 कला पूर्व देशान्तर के मध्य स्थित है। पश्चिम व उत्तर में चम्बल नदी इसे घेरे हुये है जो इसे बून्दी, सवाईमाधोपुर, व टोंक जिलों से अलग करती है। इसके पूर्व में मध्य प्रदेश, दक्षिण में झालावाड़ जिला व दक्षिण पूर्व में भीलवाड़ा व चित्तौड़गढ़ जिले हैं।

इतिहास:- प्रकृति की महान अनुकम्पा का भागी राजस्थान का यह अलौकिक प्रदेश कोटा जिला, भूतपूर्व कोटा रियासत से कुछ भागों को विलग करके व कुछ भाग भूतपूर्व अन्य रियासतों के जोड़कर बनाया गया है। इसलिए इसका इतिहास कोटा रियासत के उद्गम एवं विकास का इतिहास है। कोटा राज्य की विधिवत् स्थापना

मुगल साम्राज्य के उत्कर्ष काल में सम्राट शाहजहां की स्वीकृति पर, मुगलों के अधीनस्थ राव राजा रतनसिंह के द्वारा सन् १६२५ में अपने द्वितीय पुत्र माधोसिंह को बुन्दी राज्य का एक भाग अलग से देकर की गई। उदगम से लगाकर सन् १९४८ में एकीकरण तक यह राज्य जो दासत्व के काल में जन्मा था जीवन भर दासत्व में ही बढ़ा व रहा। समय समय पर यहां के परम्परागत अग्निवंशी चौहान राजपूतों के वंशज हाड़ा राजपूत राजाओं ने मुगल, मराठों व अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार कर अपने अस्तित्व को अक्षुण्य बनाये रखा। मुगल सम्राटों की विविध प्रकार से सेवाओं के उपलक्ष में यहां के शासकों को १६२५ में राजा व १७०७ में महाराव की पदवी दी गई जो आज तक चली आ रही है। माधोसिंह जी, भीमसिंह जी, दुर्जनशाल जी, छत्रसाल जी, उम्मेदसिंह जी एवं वर्तमान महाराव भीमसिंह जी यहां के प्रमुख एवं क्रियाशील शासक रहे हैं। इस राज्य के ऐतिहासिक जीवन में सबसे महत्वपूर्ण घटना छत्रसाल जी के फौजदार सूर्यवंशी झाला राजपूत जालिम सिंह के सम्बन्ध में है, जिसने फौजदार के रूप में ही राज्य का सम्पूर्ण नियंत्रण अपने हाथों में ले लिया और अन्त में सन् १८३८ में कोटा रियासत का एक टुकड़ा और कर झाला के नाम से और झालावाड़ राज्य की स्थापना कर कोटा राज्य - घराने के इस कंटक को हमेशा के लिये दूर किया गया।

दासत्व व स्वाभिमान दो विपरीत गुण हैं। दासत्व में जन्म लिया हुआ राज्य स्वतंत्रता के स्वप्न कठिनाई से ही देख सकता है। इसीलिए जिस प्रकार यहां के शासक मुगलों, मराठों एवं अंग्रेजों की आधीनता स्वीकार करने में पीछे नहीं रहे हैं उसी प्रकार स्वतंत्रता के बाद एकीकरण कर राष्ट्रभक्ति का परिचय देने में भी राजस्थान के राजाओं में अगुआ रहे हैं। २५ मार्च, १९४८ को राजस्थान व अप्रेल १८, १९४८ को युनाइटेड राजस्थान यूनियन के निर्माण में अगुआ बनकर यहां के महाराव ने क्रमश: राज प्रमुख व उपराज प्रमुख का पद सुशोभित किया है।

प्राकृतिक व मानवीय परिस्थितियां :- मानव परिस्थितियों की उपज है। परिस्थितियां मनुष्य को आर्थिक उन्नति करने के लिये अवसर प्रदान करती हैं, और विभिन्न व्यक्ति वर्ग एवं समुदाय अपनी प्रतिभा बुद्धि, संस्कृति और ज्ञान के अनुसार उस अवसर का लाभ उठाकर विकास का मार्ग ग्रहण करते हैं। इसी प्रकार किसी उद्योग के किसी स्थान पर उद्गम विकास एवं पतन के लिये भी यहां की प्राकृतिक व

मानवीय परिस्थितियां ही उत्तरदायी होती हैं। कोटा जिले का क्षेत्रफल ४७६४ वर्गमील एवं जनसंख्या १९६१ की जनगणना के अनुसार ८ लाख ४८ हजार ३ सौ नवासी है जो क्रमशः राजस्थान के क्षेत्रफल का ३.६२ प्रतिशत व जनसंख्या का ४.२१ प्रतिशत है। यह जिला राजस्थान के दक्षिणी पूर्वी कोने में क्रोस की आकृति लिये हुये सौ मील लम्बे व सौ मील चौड़े क्षेत्र में फैला हुआ है। राजस्थान की गंगा चर्मण्य वती (चम्बल) नदी इसको पश्चिमी व उत्तर में घेरे हुये है। दक्षिण में मुकन्दरा पहाड़ी श्रेणियां हैं जो समुद्र तल से १४०० से १६०० फीट तक ऊंची हैं और उत्तर पश्चिम से प्रारम्भ होकर दक्षिण पूर्व तक चली गई हैं। भूमि का ढलाव दक्षिण से उत्तर की ओर है जो मालवा के पठार से प्रारम्भ होता है। इसके अलावा उत्तर में इन्द्रगढ़ के पास १५०० फीट ऊंची पहाड़ियां एवं पूर्वी भाग में रामगढ़ व शाहाबाद की पहाड़ियां हैं जो समुद्र तल से १५०० से १८००फीट के लगभग ऊंची हैं।

चम्बल, काली-सिन्ध, ~~बर्बन~~-व पार्वती व परवन जिले की प्रमुख नदियां हैं जो पश्चिम, दक्षिण व दक्षिण पूर्व से जिले में प्रवेश करती हैं और अनेकानेक सहायक नदियों की जल संग्रह करती हुई जिले के सुदूर उत्तर में चम्बल में मिल जाती हैं। यह जिले को चार प्राकृतिक भागों में विभक्त करती हैं और विभिन्न तहसीलों की सीमायें बनाती हैं।

जिले का उत्तरी भाग नदियों द्वारा लाई गई क्षार मिट्टी का बना हुआ है, लेकिन कोटा शहर के पास से बलुआ पत्थर मिलने लगता है जो सम्पूर्ण दक्षिणी भाग में फैला हुआ है।

नवम्बर से फरवरी तक यहां की जलवायु उत्तम होती है। मार्च से गर्मी बढ़ने लगती है जो जून में जाकर अति ज्वाजल्यमान हो जाती है। उस समय दिन में अधिकतम तापक्रम ११२ से ११५ डिग्री फै० तक पहुंच जाता है। जुलाई के प्रथमार्द्ध से वर्षा प्रारम्भ हो जाती है जो सितम्बर तक चलती रहती है। जुलाई से सित० तक जलवायु ~~अति~~- अत्यधिक मलेरियल रहती है। इसके विपरीत जनवरी में तापक्रम ४६ डिग्री फै० से ४४ डिग्री फै० रह जाता है। जिसमें पानी भी जम जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि यहां पर गर्मी अत्यधिक उष्ण व सर्दी अत्यधिक शीत होती है।

कुछ स्थानों को छोड़कर यहां पर ५० से ६० फीट गहराई पर पानी मिलता है, शेष सब जगह २५-३० फीट पर पानी मिल जाता है। इस प्रकार यहां पानी की कोई कमी नहीं है।

दक्षिण में मुकन्दरा पहाड़ी श्रेणियां दक्षिण-पश्चिम-पश्चिम, एवं उत्तर में चम्बल नदी, उत्तर पूर्व में पार्वती व कम्बाल नदी, पूर्व में शाहबाद की पहाड़ियां और दक्षिण पूर्व में पार्वतिने नदी जिले की प्राकृतिक सीमायें बनाती हैं।

इसके पश्चिम में थार का रेगिस्तान, उत्तर एवं पूर्व में गंगा सतलज का मैदान व दक्षिण में मालवे का पठार है जो यहां की जलवायु व भूमि की बनावट का निर्धारण करते हैं। सामान्य रूप से यह क्षेत्र भारत के पहाड़ी, पठारी, मैदानी व रेगीस्तानी प्रदेशों का केन्द्र बिन्दु बन गया है। जहां पश्चिम से प्रवेश करने वाला व्यक्ति एक दम आश्चर्य चकित हो जाता है और सोचता है कि क्या यह भी राजस्थान का एक भाग है?

इस प्रकार रेगीस्तानी प्रदेश, मैदानी प्रदेश, पठारी एवं पहाड़ी प्रदेशों से घिरा यह भू भाग भौतिक दृष्टिकोण से एक इकाई न रहकर विभिन्न भौतिक इकाइयों में विभक्त हो जाता है जो धरातल की बनावट, भूमि, वनस्पति, सिंचाई उद्यम आदि की दृष्टिकोण से भिन्न भिन्न स्वरूप रखती हैं।

कोटा रियासत काल में जनगणना हेतु कोटा राज्य को प्राकृतिक दृष्टिकोण से मालवा, हाड़ौती, जंगल व कोटड़ियां या जागीरें इन चार विभागों में बांटा जाता था[1] कोटा राज्य से जन्म लिया हुआ यह कोटा जिला भी इन्हीं स्थूल आधारों पर ३ प्राकृतिक विभागों में बांटा जा सकता है क्योंकि कोटड़ियों का राजनैतिक दृष्टिकोण से ही अलग महत्व था प्राकृतिक दृष्टिकोण से वे अन्य भागों का एक भाग ही थीं।

मालवा विभाग :-

इसमें मुकन्दरा पर्वत श्रेणियों के दक्षिण में बसा हुआ सम्पूर्ण प्रदेश आ जाता है जिसमें छोटी छोटी पहाड़ी श्रेणियां व उपजाऊ भूमि है। यहां की भूमि उपजाऊ व गहरी है और समुद्रतल से ऊंचाई ३२५ से ४४० मीटर तक है। दक्षिणी

१. बिलेज रजिस्टर रियासत, कोटा बाबत मर्दमशुमारी, १९३१.

पश्चिमी भाग में कृषि योग्य भूमि के साथ साथ जंगल व चट्टाने भी हैं । इसके विपरीत दक्षिणी-पूर्वी भाग में तुलनात्मक रूप से अधिक उपजाऊ एवं व्यापारिक फसलों के लिये अत्यधिक उपयुक्त काली मिट्टी है । पर कुएं खोदना कठिन होने से अब तक सिंचाई सुविधाओं की बहुत कमी थी । प्राकृतिक सौन्दर्य, लहलहाते खेत, व बसांती नदियों का बाहुल्य यहां की विशेषता है ।

जंगल विभाग :-

पार्वती नदी के पूर्व में स्थित यह प्रदेश जंगलों व हिंसक पशुओं से भरपूर होने से शिकार का सर्वोत्तम स्थल है । पश्चिम से पूर्व की ओर निरन्तर ऊंचा होने वाला यह भू क्षेत्र शाहाबाद के पास एक हजार से सौलहसौ फीट ऊंचा हो जाता है, जिसके कारण इसके भी दो भाग हैं । प्रथम भाग खेटी है । पर्याप्त पानी, अस्वास्थ्यकर जलवायु, कृषियोग्य भूमि की कमी एवं आवागमन के साधनों का अभाव यहां की प्रमुख विशेषता है । पूर्वी भाग जो अपरेटी कहलाता है पूर्ण रूपेण जंगली व पहाड़ी प्रदेश है जिसमें पानी की अत्यधिक कमी है जिसमे और ऊंचाई १६०० फीट तक है जिससे यह प्रदेश मानव निवास के लिये अनुपयुक्त है ।

हाड़ौती विभाग :-

मुकन्दरा पहाड़ी श्रेणियों के उत्तर, चम्बल नदी के पूर्व एवं पार्वतीने नदी के पश्चिम में, त्रिकोण के रूप में चम्बल पार्वती व मुकन्दरा की सीमाओं वाला यह क्षेत्र जिले का आर्थिक,सामाजिक व राजनैतिक सभी दृष्टिकोणों से सर्वाधिक समुन्नत भाग है । सम्पूर्ण प्रदेश कम ऊंचाई रखने वाला मैदानी प्रदेश है जिसमें पूर्व से पश्चिम व उत्तर से दक्षिण तक समुद्र तल से १५० से ३०० मीटर तक ऊंची भूमि विविध प्रकार के कृषि उत्पादनों में संलग्न है । वर्तमान में इसका पश्चिमी भाग राजस्थान का महान औद्योगिक क्षेत्र बन रहा है, और चर्मण्यवती से प्राप्त विद्युत गांव-गांव व नगर-नगर कोआलोकित कर रही है । कालीसिन्ध व पर्वन नदी इसके मध्य में से गुजरती हुई इसे पुन: ३ प्राकृतिक उपविभागों में विभक्त कर देती हैं ।

१. चम्बल कालीसिंध का दोआब ।

२. कालीसिंध, परवन का दोआब ।

३. कालीसिंध, परवन व पार्वती का दोआब ।

इस प्रकार सम्पूर्ण कोटा जिला जलवायु की दृष्टि से लगभग समान है,

पर भूमि की बनावट, मिट्टी, वनस्पति व नदियों की उपलब्धि की दृष्टिकोण से काफी भिन्नता रखता है। जिसके कारण विभिन्न भागों में विभिन्न प्रकार की पैदावार होती है और जनसंख्या का विभिन्न उपभागों में वितरण भी भिन्न भिन्न है। दक्षिणी पूर्वी मालवा प्रदेश, कालीसिंध-परवन का दोआव, कालीसिंध परवन व पार्वती का दोआव व चम्बल कालीसिंध के दोआव के उत्तरी भाग में कृषि प्रमुख व कुटीर उद्योग सहायक उद्यम हैं। डंगल विभाग में पशु पालन व कृषि मुख्य उद्यम हैं। चम्बल-काली सिंध दोआब के दक्षिणी भाग में कृषि के साथ साथ खनिज सम्पत्ति का शोषण भी प्रमुख उद्यम है व पशु पालन सहायक। वर्षा सम्पूर्ण भाग में ३० इंच के लगभग होती है जो अनिश्चित व अनियमित है और तापक्रम भी काफी परिवर्तनशील ४६ डिग्री फैं० से ११५ डिग्री फैं० तक रहता है। नदियों से सम्पूर्ण जिला परिपूर्ण है जो कि राजस्थान का इस दृष्टि में एक मात्र भाग है। चूना व पत्थर यहां की प्रमुख खनिज सम्पत्ति है जिनसे चम्बल-काली सिंध के दोआव का दक्षिणी भाग भरा पूरा है। वन सम्पत्ति भी काफी है परंतु अधिकतर जलाने की लकड़ी के वन हैं, बहुमूल्य लकड़ी के वनों का अभाव है।

जाति के दृष्टिकोण से यहां श्याम वर्ण जाति के लोग रहते हैं जोकि कम सभ्य व अउन्नत हैं। इसीका परिणाम है कि परम्परा से यहां का व्यापार व उद्योग बाहर के व्यापारियों एवं उद्योगपतियों के हाथ में रहा है। भूतकाल में यह अफीम उत्पादन का विशाल क्षेत्र था पर इसका अधिकतर व्यापार बाहर के व्यक्तियों के हाथ में ही था। आज भी जब भारत औद्योगीकरण के मार्ग पर अग्रसर हो रहा है, चर्मण्यवती की महती कृपा से इस भाग को भी भारत का एक बड़ा औद्योगिक केन्द्र बनने का स्वर्ण अवसर प्राप्त हुआ है। परंतु खेद है कि यहां के निवासियों का इस प्रगति में योगदान केवल अप्रशिक्षित श्रम के रूप में है।

धर्म की दृष्टि से हिन्दू, मुसलमान व जैन यहां के प्रमुख धर्म हैं। मुसलमान जो कि कुल आबादी का लगभग ७ प्रतिशत है मुख्य रूप से कस्बों में रहते हैं व जुलाहा पिंजारा, लुहारा व रंगरेज आदि कार्यों में संलग्न हो ग्रामीण व शहरी जनता की सेवा कर रहे हैं। केवल मुसलमान बोहरे ही मुख्य रूप से कुछ विशिष्ट प्रकार के व्यापारों में परम्परा से संलग्न हैं।

यातायात के साधनों में कोटा-बीना व दिल्ली-बम्बई रेल मार्ग कोटा

जिले में से गुजरते हैं । पक्की सड़कों का लगभग अभाव है, केवल कोटा-शिवपुरी व कोटा-झालावाड़ पूर्णतः पक्के सड़क मार्ग हैं । कुछ सड़कें आधी पक्की व आधी कच्ची हैं जो यातायात में बहुत अधिक बाधक हैं । गत दो वर्षों में नहरों के कारण लगभग सभी कच्चे मार्ग बिगड़ गये हैं और यातायात अत्यधिक कठिनाई पूर्ण हो गया है ।

इन सब कारणों से केवल जिले का पश्चिमी भाग ही जोकि रेल मार्ग व पक्की सड़क द्वारा सुसम्बन्धित है वर्तमान औद्योगिक अर्थव्यवस्था की ओर अग्रसर हो विकास का मार्ग ग्रहण कर रहा है । शेष भाग वही परम्परागत कृषि, पशु पालन व स्वयं निर्भर ग्राम्य जीवन के हेतु कुटीर उद्योगों में संलग्न है ।

प्रशासनिक संगठन :- प्रशासनिक दृष्टिकोण से कोटा जिला, भारतगण राज्य के १५ राज्यों में से एक राजस्थान राज्य के पांच विभागों में सबसे छोटे कोटा विभाग[1] का सबसे बड़ा व प्रमुख जिला है । यह ४ उपजिलों व १२ तहसीलों में विभक्त है, जिनका विवरण निम्न प्रकार है :-

रा ज स्था न

- अजमेर
- बीकानेर
- कोटा
  - कोटा
    - लाडपुरा (कोटा)
    - दीगोद
    - पीपल्दा
  - रामगंजमण्डी
    - रामगंज मण्डी
    - सांगोद
  - बारां
    - मांगरोल
    - बारां
    - किशनगंज
    - शाहबाद
  - छबड़ा
    - छबड़ा
    - अटरू
    - छीपाबड़ौद
- जोधपुर
- उदयपुर
- अन्य जिले
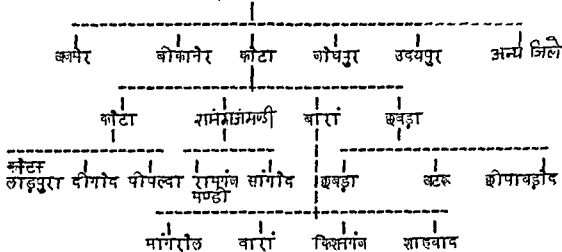
इस जिले में लगभग सभी तहसीलों व प्राकृतिक विभागों की सीमा नदियां बनाती हैं अतः तहसीलों का प्राकृतिक विभागों में वितरण क्रमबद्ध है जो निम्न प्रकार है :-

१. कोटा विभाग से तात्पर्य राजस्थान के दक्षिणी-पूर्वी भाग से है जिसमें कोटा, बून्दी व झालावाड़ जिले आ जाते हैं।

प्राकृतिक विभाग	तहसीलें
(१) हाड़ौती विभाग	
(क) चम्बल कालो सिंध का दोआब	लाडपुरा, दीगोद एवं सांगोद (पश्चिम)
(ख) कालीसिंध परवन का दोआब	सांगोद (पूर्व)
(ग) कालीसिंध परवन पार्वती दोआब	अटरू, बारां, मांगरोल एवं पीपल्दा
(२) मालवा विभाग	
(क) दक्षिण पश्चिम भाग	रामगंजमंडी
(ख) दक्षिण पूर्व भाग	छबड़ा एवं छीपाबड़ौद
(३) जंगल विभाग	
(क) तलैटी	किशनगंज
(ख) अरैरो	शाहबाद

उपरोक्त अध्ययन से ज्ञात होता है कि आय के साधनों में कृषि के पश्चात् जंगल विभाग में पशु पालन एवं लकड़ी काटना, दक्षिणी पश्चिमी मालवा व चम्बल कालो सिंध के दोआब के दक्षिणी भाग में खनिज विदोहन व पशु पालन व शेष भाग में पशु पालन व अन्य कुटीर उद्योग विद्यमान हैं। भौगोलिक विशेषता, आवागमन के साधनों के कारण कच्चा माल उपलब्धि एवं विपणन में सुविधा आदि के कारण इस क्षेत्र के लगभग सभी कस्बे वस्त्र उत्पादन के मुख्य केन्द्र हैं। इस क्षेत्र की यह भी विशेषता है कि यहां के सभी गांव नदियों के किनारे बसे हुये हैं। तदनरूप ही वस्त्र उत्पादन के समस्त केन्द्र और साथ ही मसूरिया उत्पादन केन्द्र भी नदियों के किनारे ही अवस्थित हैं। योजनाबद्ध विकास से पूर्व आवागमन के साधनों के अभाव, बाजार के सीमित होने एवं मोटे कपड़े का स्थानीय बाजार होने से मसूरिया कपड़े का उत्पादन केवल कोटा, बून्दी व कोटा के ही पास बसे हुये बुनकरों के गढ़ कैथून तक सीमित था। वर्तमान में आवागमन के साधनों के प्रसार एवं मांग में वृद्धि के कारण अन्य बुनकर केन्द्रों पर भी इसका उत्पादन होनेलगा है।

कुटीर एवं हाथकर्घा उद्योग :-

महत्व :-वर्तमान युग की औद्योगिक प्रगति साधारणतया यंत्रीकरण,वैज्ञानिकरण विवेकीकरण आदि से व्युत्पन्न पूंजी प्रधान वृहद् प्रमापीय उत्पादन की प्रमुखता से सम्बद्ध है, जो अच्छा एवं सस्ता उत्पादन कर मानव समाज की सेवा में संलग्न हैं। ऐसी स्थिति में लघु उद्योगों का अस्तित्व शंकापूर्ण दृष्टिगत होता है। किंतु इसके फलस्वरूप लघु प्रमाप उद्योगों का सर्वथा लोप नहीं हो सकता। मुख्य आंतरिक तथा बाह्य मितव्ययताओं के त्याग के बिना ही वाष्प के स्थान पर विद्युत के बढ़ते हुये प्रयोग ने उत्पादन की इकाइयों को छोटा करने की प्रवृत्ति को जन्म दिया है। पुन: प्रत्येक उन्नतिशील समाज में बहुत सी कलापूर्ण तथा विलास की सामग्रियां होती हैं जिनका प्रमाणित उत्पादन नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त सभ्यता के भौतिक उपस्करों के अनेक सुधार छोटे छोटे कारखानों को जन्म देते हैं। और इस प्रकार विशाल प्रमापीय उद्योगीकरण के काल में भी लघु प्रमाप उद्योग चलते रहते हैं। अन्तिम नये उद्योग भी जब तक वे प्रयोग रूप में होते हैं, पहले छोटे पैमाने पर ही आजमाये जाते हैं और सफल होने पर बड़े पैमाने पर संगठित किये जाते हैं। इस भांति भारत जैसे अर्द्धविकसित देशों में ही नहीं वरन् पश्चिम के अति अत्युन्नत देशों में भी वृहत प्रमाप उद्योगों के साथ साथ बहुत से लघु प्रमाप उद्योग फलते फूलते हैं। जापान व चीन की आर्थिक व्यवस्था में लघु प्रमाप व कुटीर उद्योगों का महत्वपूर्ण योग सर्व विदित है।

भारत में कुटीर उद्योग :-

भारतीय अर्थ व्यवस्था व समाज व्यवस्था में कुटीर उद्योगों का स्थान युगों पुराना है, आज भी विद्यमान है और निश्चित् रूप से भविष्य में भी बना रहेगा। प्राचीन काल से ही यहां दैनिक जीवन की सामान्य वस्तुओं के साथ साथ बहुत सी कला पूर्ण तथा विलासिता की सामग्रीयों का उत्पादन कुटीर उद्योगों के रूप में होता रहा है। भारत के शिल्पकार प्राचीनकाल से ही नाजुक तन्तुओं से कपड़ा बुनने, रंगों के मिश्रण, सुन्दर गहने बनाने, उनमें नगों की जड़ाई करने तथा अन्य कलात्मक कार्य के लिये विश्व प्रसिद्ध रहे हैं। औद्योगिक आयोग १६१८ ने ठीक ही कहा है कि जिस समय असभ्य जातियों से भरा यूरोप वर्तमान औद्यो-

गिक कारखाने पद्धति के प्राथमिक स्तर पर था, भारत, शासकों की धन सम्पदा व कलाकारों के कौशल व प्रवीणता के लिये विश्व प्रसिद्ध था। भारतीय वस्त्रों के लिये मुगलकालीन यात्री ट्रेवेनियर ने भी सत्य ही लिखा है कि भारत निर्मित वस्तुयें इतनी सुन्दर थी कि वे तुम्हारे हाथ में हैं यह ज्ञान किंचित ही होता था वह अतीव कोमलता से काते गये धागों से बुने जाते थे जो एक पौंड रूई में २५०मील लम्बे बनते थे।

प्रकृति के सभी भागों में उत्कर्ष, उत्थान, अपकर्ष और पतन का चक्र निरंतर चलता रहता है, भारत के कुटीर उद्योग जो कि हिन्दु व मुसलिम काल में उत्थान के उच्चतम शिखर पर अवस्थित थे-अंग्रेजों के प्रवेश, विशाल प्रमापीय औद्योगीकरण की तकनीक के विकास, भारतीयों पर पाश्चात्य प्रभाव, ब्रिटिश सरकार की घातक नीति, विदेशी उत्पादन से गलाकाट प्रतियोगिता और सबसे अधिक भारतीयों के मनोवैज्ञानिक परिवर्तन के फलस्वरूप इनके अपकर्ष का काल प्रारम्भ हुआ और निरंतर बढ़ता चला गया। इतना होते हुये भी भारत में कृषि उद्योग की मुख्यता व उसकी विशेषताओं, यातायात के साधनों के अविकसित होने, कुटीर उद्योगों की मौलिक विशेषताओं, कुछ उत्पादनों की कुटीर उद्योगों में ही उपयुक्तता व एकाधिकार एवं भारतीय ग्रामीण आर्थिक जीवन से अनुरूपता आदि ऐसे कारण हैं जिनके कारण आज भी कुटीर उद्योग भारतीय अर्थव्यवस्था का मुख्य अंग हैं। अनुमान लगाया गया है कि वर्तमान में लगभग २ करोड़ व्यक्ति कुटीर उद्योगों में लगे हुये हैं, जिनमें से लगभग ५० लाख व्यक्ति केवल हाथकर्घा उद्योग में हैं।[१]

वर्तमान में कुछ कुटीर उद्योग तो ऐसे हैं जो कि लुप्त प्राय: हो गये हैं और उन्हें सरकारी संरक्षण व सहायता रूपी संजीवनी की आवश्यकता है। जिससे वे पुन: जागृत हो सकें। कुछ कुटीर उद्योग ऐसे हैं जो अपनी मौलिक विशेषताओं के कारण प्रचलित आर्थिक नीति का शिकार बन ही नहीं सकते। शेष कुटीर-उद्योग ऐसे हैं जो यंत्रोत्पादित वस्तुओं से प्रतिस्पर्द्धा कर रहे हैं और जिनकी दशा त्रिशंकु जैसी है, पर पैत्रिक धन्धे को छोड़ने की अनिच्छा, फैक्ट्रियों में काम करने की कठोर दशाओं और अर्थप्रबन्धक सौदागर द्वारा बाध्य किये जाने के कारण जिन्हें नहीं छोड़ा जा रहा है।

---

१. भारत १९६३ पृष्ठ संख्या १६०.

गांधीजी द्वारा खादी व ग्रामोद्योग पर बल व विकेन्द्रित आत्मनिर्भर अर्थ व्यवस्था के विचार से कुछ कुटीर उद्योगों को विकास की दिशा मिली है। मीनाकारी व दस्तकारी आदि से सम्बन्धित उत्पादन की मांग भी भारतीय जनता के रहन सहन के स्तर में वृद्धि व पूंजीवादी देशों में विशिष्ट प्रकार की व कलापूर्ण वस्तुओं की मांग में वृद्धि के कारण बढ़ने लगी है। कुछ कुटीर उद्योग सरकारी सहायता के आधार पर ही विकास कर रहे हैं। इस प्रकार वर्तमान में भारतीय कुटीर उद्योग जो अपकर्ष की अवस्था से गुजर रहे थे कुछ सीमा तक पुनः उत्कर्ष की दिशा ग्रहण कर चुके हैं।

भारत अपने कल्याणकारी राज्य, समाजवादी लोकतंत्र, अधिकतम उत्पादन व पूर्ण रोजगार के अपने आदर्श कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन देकर व उनका उत्थान करके ही पूरा कर सकता है। कल्याणकारी राज्य की स्थापना के लिये कुटीर उद्योग धन्धे ही मुख्य आधारशिला है। वास्तव में कुटीर उद्योग भारत की सामाजिक व आर्थिक क्रांति के बीज हैं जिनके बिना रामराज्य ऐसे वृक्ष की कल्पना नहीं की जा सकती। जिसकी सुखद व शीतल छाया में भारतीय नागरिक सुख व शांन्ति की नींद सो सकें।

हाथकर्घा उद्योग :-

हाथकर्घा उद्योग एक ऐसा उद्योग है जो युगों से भारतीय किसानों के आर्थिक धनुष की दूसरी डोरी का कार्य कर रहा है व इसके साथ ही साथ कला-प्रिय देशों व विदेशी राजा महाराजा व रईसों के लिये बहुमूल्य कलापूर्ण दस्तकारी के आदर्श नमूने भी प्रस्तुत करता रहा है। कपड़ा बुनना हमारा राष्ट्रीय धन्धा व सूत कातना लाखों करोड़ों स्त्रियों का व्यवसाय रहा है। आज भी लगभग ५० लाख व्यक्ति केवल हाथकर्घा उद्योग में लगे हुये हैं जोकि समस्त संगठित उद्योगों (वृहत-प्रमाप रोपण तथा खनिज उद्योग सहित) में नियोजित व्यक्तियों के बराबर हैं। इस समय देश के विभिन्न भागों में लगभग २७.५८ लाख हस्तचालित कर्घे पंजीकृत हैं [१] जिससे अनुमान लगाया जा सकता है कि लगभग ३५ लाख हस्तचालित कर्घे भारत में हैं जिन पर लगभग १ करोड़ ५० लाख जनसंख्या निर्भर है।

१. भारतीय अर्थशास्त्र, ज्याार तथा बेरी पृष्ठ ७३.

व वर्तमान में भी हस्तकला उद्योग में कला के उत्कृष्ट नमूने विद्यमान हैं जिनमें दस्तकारी व हस्तकला का सुन्दर समन्वय है।उनमें चन्देरी व बनारस की साड़ियां भागलपुर टसर सिल्क, लखनऊ की चिकन की कढ़ाई, काश्मीर के शाल दुशाले,व कोटा का मसूरिया आदि ऐसे उत्पादन हैं जो भारत में ही नहीं विदेशों में भी कलापूर्ण वस्त्रों के उत्पादन में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं।

मसूरिया :-

वर्ष :- अत्यन्त प्राचीनकाल से, जहां तक प्रमाण मिले हैं वैदिक काल से भारत में-- में साड़ियां स्त्री वेशभूषा का व पगड़ीयां व धोतियां पुरूषों की वेशभूषा का मुख्य अंग रही हैं। विभिन्न युगों में, विभिन्न स्थानों पर, विभिन्न प्रकार की साड़ियां व पगड़ियां, विभिन्न प्रकार के आकर्षक व सुहावने ढंग से पहिनना यहां की अविनाशी परम्परा है। साड़ियां व पगड़ियां हमेशा से ही अत्यधिक महीन सूत व रेशम के धागों से बुनी जाती रही हैं जिन पर जरी के पट्टे व डोरियां व नक्काशी का काम उनकी खूबसूरती में चार चांद लगा देता है वर्तमान में भी भारत के विभिन्न भागों बनारस, मैसूर, चन्देरी, भागलपुर आदि में रेशम व जरी का प्रयोग कर नक्काशी के काम वाली विभिन्न प्रकार की साड़ियां बनाई जाती हैं। सूती साड़ियां अधिकतर मिलों की बनी मलमल पर छपाई करके बनाई जाती हैं। मिलों में भी केवल सूत, केवल रेशम या कपास व रेशम को मिलाकर बनाये धागों के वस्त्र बनाये जाते हैं। परन्तु इन सबसे आगे कोटा क्षेत्र में सूत व रेशम के अत्यधिक महीन धागों से, उनका अलग अलग अस्तित्व बनाये रखकर, आकर्षक ढंग से एक वर्गदार बुनावट डालकर, जगह जगह पर जरी का प्रयोग व नक्काशी करके साड़ियां, दुपट्टे, ओढ़ने व पगड़ियों के रूप में एक वस्त्र उत्पादित किया जाता है। जिसे मसूरिया कहा जाता है।

अर्थ :-

मसूरिया एक विशिष्ट प्रकार की वर्गदार बुनावट है जिसमें वर्गों में भी उपवर्ग बनाये जाते हैं। बड़े वर्गों को खत व छोटे वर्गों को खन कहते हैं। इसमें धागे सटे न होकर कुछ कुछ दूरी पर होते हैं और बीच बीच में समान दूरी पर एक साथ दो या चार धागे सटाकर डाल दिये जाते हैं जिससे क्रमश: छोटे व बड़े वर्ग

बन जाते हैं। एक बड़े वर्ग में ६, १२ या १६ छोटे वर्ग होते हैं। बड़े वर्ग या खतों की लम्बाई चौड़ाई २.२५ मिलो मीटर से ५ मिली मीटर तक होती है इसकी किस्म का निर्धारण वर्ग के आकार से ही होता है। जितना छोटा वर्ग होता है वस्त्र की किस्म उतनी ही ऊंची मानी जाती है।

इस तकनीक से बुने हुये वस्त्रों को मसूरिया वस्त्र क्यों कहा जाता है ? इसके सम्बन्ध में विभिन्न मत प्रचलित हैं।

१. सामान्य एवं अधिकार व्यक्तियों का विचार यह है कि खतों (उपवर्ग) का आकार मसूर की दाल के समान होने से इसे मसूरिया कहा जाता है।
२. यह भी मत प्रचलित है कि सर्व प्रथम इसको बुनने में जो रेशम काम आता था वह मैसूर से आता था। इसलिये मैसूरी रेशम से बुना जाने के कारण इसे मैसूरिया कहा जाने लगा व बाद में बिगड़कर मसूरिया हो गया।
३. कुछ व्यक्तियों का यह मत है कि भारत की परम्परा के अनुसार कोई मैसूर का बुनकर कला प्रदर्शन कर पारितोषिक पाने के उद्देश्य से कोटा में आया होगा और उसने इस प्रकार की बुनावट से निर्मित वस्त्र यहां के महाराव को भेंट किया होगा जो कि उन्हें पसन्द आ गया होगा। एतदर्थ स्वाभाविक रूप से यहां पर उस वस्त्र की मांग बढ़ गई होगी जिससे यहां के अन्य बुनकरों को भी यह कार्य सीखा दिया गया होगा और मैसूर के ~~निवासी के~~ नाम पर ही मसूरिया कहा जाने लगा। या यह भी हो सकता है कि उस व्यक्ति का नाम ही मसूरिया शब्द से मिलता जुलता रहा हो।
४. यह भी हो सकता है कि यहां के बुनकर हज करने के लिये अरब गये हों और वहां से कपासोत्पादक महान प्रदेश मिश्र की यात्रा के लिये भी चले गये हों। और वहां से ही इस वस्त्र का उत्पादन करना सीख कर आये हों क्योंकि मिश्र में ही इस प्रकार का (कपास पैदा होता है जिससे ऐसा) बारीक सूत तैयार किया जाता है जोकि इस वस्त्र के उत्पादन में काम आता है।

विश्लेषण पर द्वितीय मत तो उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि द्वितीय महायुद्ध से पूर्व तो मसूरियां वस्त्रों में रेशम का प्रयोग केवल नाम मात्र को होता था। सामान्य रूप से सूती मसूरिया ही बुना जाताथा। जहां तक प्रथम मत का प्रश्न है सामान्य व्यक्ति इससे सहमत हो सकते हैं पर मैसूर की दाल और खतों के

आकार में समानता और फिर दाल के आकार से वस्त्र की बुनाई तक्नीक का सम्बन्ध औचित्यपूर्ण दृष्टिगत नहीं होता । मेरा ऐसा मत है कि इसका सम्बन्ध किसी व्यक्ति से होना चाहिये या फिर मैसूर या मिश्र से । क्योंकि मैसूर और मिश्र में ही इस प्रकार के बारीक रेशम व सूत के धागे तैयार हो सकते हैं जिनका प्रयोग वर्तमान में इस वस्त्र के उत्पादन में हो रहा है । यह हो सकता है कि यहां का कोई व्यक्ति मैसूर या मिश्र गया हो और वहां पर इससे मिलती जुलती बुनावट बुनी जाती हो जिसके आधार पर उसने यहां पर प्रचलित किरमची व महरवात (डोरिया) में सुधार कर मसूरिया बुनना चालू किया हो । जहां तक प्रमाण मिले हैं अथर्ववेद और ऋग्वेद में भी डोरिया व चौखाना नाम के वस्त्रों का उल्लेख मिलता है । इससे स्पष्ट होता है कि इस तक्नीक में इन दोनों प्रकार की तक्नीक का समन्वय करके नई प्रकार की तक्नीक का प्रयोग किया गया है । इसमें चौकाने के वस्त्रों से वर्गाकार बुनावट और डोरिया से कुछ धागों का अलग अलग डालना और फिर कुछ कुछ अन्तर पर दोहरी डोरी डाल देना प्रकट होता है । उपरोक्त मत की पुष्टि इस कारण से भी होती है कि मसूरिया का उद्गम केवल ६०-७० वर्ष पूर्व हुआ है जिसमें प्रारम्भ से ही १०० से १२० काउन्ट का मील का बना हुआ विदेशी सूत काम आता रहा है और यह बुनाई मुख्यत: मुसलमान जुलाहों के हाथ में है जिनके लिये हज करने जाने के साथ साथ मिश्र तक पहुंच जाना व उस समय तक उपलब्ध हुई जहाज व रेल यातायात की सुविधाओं के द्वारा कुछ ही वर्षों में वापिस लौट आना असंभव प्रतीत नहीं होता ।

अन्तत: कोई भी एक ठोस एवं प्रमाणीय मत इसके लिये सर्वेक्षण के दौरान प्राप्त नहीं हो सका है ।

उद्गम एवं विकास :-

प्राथमिक आवश्यक्ताओं के लिये आत्मनिर्भरता के क्षेत्र में कोटा भी किसी अन्य प्रदेश से पीछे नहीं रहा है । भोजन के पश्चात् दूसरी प्राथमिक आवश्यक्ता वस्त्रों की होती है जिसके लिये कि अतीत से भारत में गांव गांव में चरखे व करघे चल रहे हैं । कोटा रियासत का यह क्षेत्र प्राचीन काल से अफीम व रूईउत्पादन का केन्द्र रहा है । साथ ही यहां की जनसंख्या में मुसलमान आबादी भी पर्याप्त

माना में रही है जो कि मुगल काल से भारतीय हस्तकला के इतिहास में अपना गौरवपूर्ण स्थान रखती है । १९३१ की जनगणना देखने पर ज्ञात हुआ है कि उस समय कोटा रियासत की ३०.५ प्रतिशत आबादी मुसलमान थी और कोटा रियासत में १२३९९ व्यक्ति केवल वस्त्र निर्माण में लगे हुये थे ।[1] कोटा, बारां, अन्ता, कोयला, सोसवाली, मांगरोल, दीगोद, सानपुर और सारोला रियासत के प्रमुख बुनकर केन्द्र थे । इतना ही नहीं उत्पादन भी कलापूर्ण होता था । कोटा की मलमल, किरमची, महमूदी और डोरिया अपनी बारीकी व रंगों के लिये बहुत प्रसिद्ध थे । बारां के चुनड़ी के बने हुये साफेव दुपटे अपनी बंधाई के लिये प्रसिद्ध थे । कोयला, कैथून व मांगरोल की रेजी व कोड़सुवां का रेजा प्रसिद्ध था । इस प्रकार मोटा कपड़ा तो सभी जगह बुना जाता था पर राजाओं, जागीरदारों, राज्य कर्मचारियों, सैठ साहूकारों, बड़े बड़े व्यापारियों आदि के लिये विशेष प्रकार के कीमती व यहां की जलवायु के अनुकूल कीमती वस्त्र होना भी आवश्यक था । जिनकी पूर्ति मसूरिया जैसे वस्त्रों द्वारा होती थी । चूंकि कोटा व बून्दी राज्यों की स्थापना मुगल साम्राज्यकाल में हुई है, यहां के रहनसहन के ढंग, कला, भाषा एवं परम्पराओं पर मुगल रहनसहन के ढंग, कला, भाषा व परम्पराओं का काफी प्रभाव पड़ा है । इसी प्रकार पहनाव में भी दिल्ली परम्परा के अनुसार अचकन, चूड़ीदार पायजामा, कमरबन्द व पगड़ी यहां की राजसी पोषाक प्रारम्भ से ही रही है । जिस प्रकार दिल्ली में ढाका की मलमल ७ तहें करके पहनी जाती थी उसी प्रकार स्वाभाविक है कि यहां के राजामहाराजा भी उसी प्रकार का बारीक कपड़ा पहनना पसन्द करते हैं । कोटा रियासत काल के अंतिम वर्षों में यहां की राजसी पोषाक यही थी जिसमें पगड़ी व कमरबन्द सामान्यतया मसूरिया कपड़े के बनते थे एवं गर्मी में अचकन भी मसूरिया वस्त्रों की बनाई जाती थी । बड़े बड़े घरानों की स्त्रियां व सामान्य रूप से विशेष उत्सवों पर मसूरिया के ओढ़ने पहने जाते थे ।

परंतु मसूरिया जो कि उच्च किस्म के बारीक सूत, रेशम व जरी से बनाया जाता है इसके लिये कच्चा माल लम्बे रेशे वाली रूई व रेशम का उत्पादन यहां नहीं होता और न ही कोटा में किसी प्रकार की इतनी बारीक कला के प्रमाण ही मिलते हैं । अतः निश्चित है कि इसका उत्पादन इस भाग के याता-

यात के उत्तम साधनों द्वारा देश के मुख्य व्यापारिक केन्द्रों से सम्बद्ध हो जाने पर ही हुआ होगा । इसके साथ ही भारत में इतना उच्चकोटि का सूत मिलों में भी ब्रिटिश शासन काल में नहीं बुनाया जाता था क्योंकि उससमय तो २० काउन्ट से अधिक के सूत पर ही अतिरिक्त कर लगाया जाता था और साथ ही उच्चकोटि के सूत के बुने मंहगे बारीक वस्त्रों केके प्रति अंग्रेजी सभ्यता के कारण झुकाव कम हो गया था ।

पर जब बाहर से मैन्चेस्टर की मिलों का बुना सूत आने लगा होगा, जो कि रेलों के विकास होने के कारण देश के कोने कोने में पहुंचने लगा होगा तो स्वाभाविक रूप से भारतीय राजाओं की, जो कि बहुत कुछ पुराने रंग ढंग से चल रहे थे अपनी पुरानी कला के प्रति रूचि जाग्रत हुई होगी और उन्होंने बाहर से कता हुआ सूत मंगाने की सुविधा व उत्पादन को प्रोत्साहन देकर इसके उत्पादन को बढ़ावा दिया होगा । इस प्रकार राजाओं द्वारा संरक्षण ही मुख्य रूप से इस उद्योग के उद्‌गम एवं विकास का कारण बना । इसके साथ ही १९ वीं सदी के अंत व २० वीं सदी के प्रारम्भ में जापान व चीन में औद्योगिककरण के कारण उच्च किस्म का रेशम उत्पन्न होकर भारत में आने लगा । परिणामस्वरूप यहां कताई की अपेक्षा बुनाई पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा जो अब भी चला आ रहा है।

इस प्रकार मसूरिया वस्त्रों के उत्पादन का प्रारम्भ ६०-७० वर्ष पूर्व, जबकि कोटा रेल मार्गों द्वारा देश के मुख्य व्यापारिक केन्द्रों से जुड़ा, हुआ प्रतीत होता है । उस समय तक भी कोटा में मुस्लीम प्रभाव मौजूद था और यहां के व्यापार में मुसलमान बोहरों का मुख्य हाथ था । कोटा में बोहेरे मुस्लीम काल में ही आ बसे थे । इन लोगों में मुस्लिम सभ्यता के प्रभाव के अनुसार बारीक कपड़े के प्रति रूचि थी ही जिसकी पूर्ति यहां पर काते जाने वाले सूत द्वारा होती होगी जिससे किरमची व महरबात जैसे कपड़े बुने जाते होंगे । किरमची महरबात व बाद में मसूरिया इनके द्वारा इतना पसन्द किया जाता था कि ये लोग अपने मुल्लाओं को भी यही वस्त्र भेंट किया करते थे । बोहरे लोगों को तो यह पसन्द था ही उसके साथ ही साथ राजाओं एवं उनके अन्य कर्मचारियों, बड़े बड़े व्यापारियों आदि को भी यह वस्त्र पसन्द आ गया होगा और फलत: उसे राजसी पोषाक में महत्वपूर्ण स्थान

प्राप्त हुआ । इससे पूर्व भी कोटा में पेचे बुने जाते थे जो कि राजस्थान के विभिन्न भागों, बम्बई, कलकत्ता आदि को भेजे जाते थे । प्रारम्भ में मसूरिया के भी पेचे ही बुनाये गये और परम्परानुसार बाहर भेजे जाने लगे । मारवाड़ी सेठों को भी यह वस्त्र काफी पसन्द आया फलत: और फलत: मारवाड़ में बड़े पैमाने पर ओढ़नों के रूप में इसका प्रयोग होने लगा । उस समय कोटा में बड़ी संख्या में जुलाहे व कारीगर रहते थे जो कि मसूरिया कपड़े बुनते थे । फिर भी सम्पूर्ण दृष्टि से इन वस्त्रों का बाजार सीमित ही था और केवल कोटा, कैथून व बुन्दी में ही इन वस्त्रों का उत्पादन होता था ।

वैसे सूत के साथ साथ रेशम का प्रयोग बहुत थोड़ी मात्रा में तो प्रारम्भ से ही होता था पर उसका कोई महत्व नहीं था । पहले सब व सब बारीक व मोटे सूत का प्रयोग कर बनाये जाते थे । धीरे धीरे रेशमी मसूरिया अधिक पसन्द किया जाने लगा और द्वितीय महायुद्ध काल में जबकि सूत का मिलना असम्भव हो गया सामान्य रूप से सूत के साथ साथ रेशम का प्रयोग किया जाने लगा । सूत व रेशम दोनों प्रकार के धागों से निर्मित मसूरिया वस्त्र मारवाड़ी सेठों द्वारा अत्यधिक पसन्द किये गये । फलत: इसका बाजार मारवाड़ में व जहां जहां भी मारवाड़ी सेठ रहते थे निरन्तर बढ़ता चला गया ।

आवागमन के साधनों के प्रसार व कोटा के यात्रा केन्द्र होने के बाद कोटा की एक मात्र कला होने से स्वाभाविक रूप से इसका प्रचार होने लगा । साड़ियों का प्रचलन बढ़ने पर यह वस्त्र साड़ियों के रूप में अत्यधिक उपयुक्त साबित हुआ । गत १० वर्षों में इसका बाजार निरन्तर बढ़ता चला गया और उसके साथ ही साथ इसका उत्पादन कोटा कैथून व बुन्दी की सीमा को लांघकर कोटा विभाग के विभिन्न गांवों तक पहुंच गया । मांग बढ़ने के साथ साथ ही युद्धोत्तर काल में बेरोजगार जुलाहे जो बम्बई, सूरत व अहमदाबाद की मिलों में काम करने चले गये थे वापिस लौटकर अपने पैतृक धन्धे में संलग्न हो गये । उन्होंने मिलों में प्राप्त ज्ञान व तकनीक का उपयोग कर इसमें नई नई डिजाइनें बनाना चालू किया जिससे मांग में और भी अधिक वृद्धि हुई ।

आज जबकि फैशन के बदलने के कारण निरन्तर कलापूर्ण साड़ियों की मांग बढ़ती चली जा रही है और मिलों में उनका उत्पादन बन्द है स्वाभाविक रूप से

बनारस,चन्देरी, आदि की बनी सिल्क साड़ियों के साथ साथ उच्च किस्म के सूत और रेशम से जरी के द्वारा सजाकर बनाई गई मसूरिया साड़ियों का प्रयोग भी बढ़ रहा है। परिणामस्वरूप एक ओर तो कैथुन, कोटा और बून्दी के सब बुनकर एक मात्र इसी कार्य में संलग्न हो रहे हैं और दूसरी ओर आस पास के अन्य बुनकर केन्द्रों के बुनकर भी निरंतर मोटे कपड़े की बुनाई छोड़कर इसके बुनने की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

निष्कर्षत : मसूरिया बुनकर उद्योग का विकास भारत में औद्योगिककरण के साथ साथ हुआ। युद्धोत्तर काल में विकास को प्राप्त यह उत्पादन आज जब चम्बल से प्राप्त विद्युत द्वारा किया जाने वाला औद्योगिक-करण और अणु-शक्ति गृह विश्व में कोटा को प्रसिद्ध कर रहा है मसूरिया उत्पादन भी कोटा के नाम को साथ लेकर हस्तकला के क्षेत्र में कोटा का नाम विख्यात कर रहा है। आज यह उत्पादन कोटा, कोटा जिला, राजस्थान या भारत का न रहकर अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में प्रवेश कर चुका है और आशा है शीघ्र ही भविष्य में औद्योगिक-क्रान्ति के फलस्वरूप पद दलित बुनकरों को पुन: उत्थान के मार्ग पर अग्रसर करेगा

अध्याय द्वितीय

संगठन

विकास और पतन युग की परम्परा है । अनेक संस्कृतियाँ, अनेक राष्ट्रों, अनेक अर्थ व्यवस्थाओं व अनेक उद्योगों का विश्व में विकास हुआ और उनसे पतन भी । विकास के लिये एक ढांचा बनाया जाता है पर ज्योंही कोई दूसरा प्रवाह जोर पकड़ लेता है विकास को रोक ही नहीं देता वरन् पीछे धकेल देता है । विकास एवं पतन का कारण होता है उनका संगठन एवं नियंत्रण । सुदृढ़ एवं विवेक पूर्ण संगठन विकास का कारण एवं निर्बल व अयोग्य संगठन पतन का कारण होता है और संगठन की कुशलता एवं सुदृढ़ता विवेक पूर्ण नियंत्रण पर निर्भर होती है । एतदर्थ संगठन एवं नियंत्रण किसी भी राष्ट्र, उद्योग, समाज, संस्था या अर्थ-व्यवस्था की वास्तविक आन्तरिक एवं बाह्य स्थिति का सच्चा दिग्दर्शक होता है।

अर्थ एवं महत्व :-

किसी भी संस्थान के विभिन्न घटक होते हैं । उनमें से एक घटक ऐसा भी होता है जिसका कार्य केवल विभिन्न घटकों की क्रियाओं में समन्वय करके संतुलन बनाये रखना होता है । जैसेकि वृक्ष में तना, फूल फल, पत्तो, टहनो आदि विभिन्न घटकों का समन्वय करके उनका सम्बन्ध समग्र रूप से जड़ों के साथ स्थापित करता है । इन सब घटकों के मध्य जो वैज्ञानिक एवं क्रमबद्ध अन्तरसम्बन्ध होता है जिसके कारण यह सब संतुलित रूपसे अपनी अपनी क्रियायें करते हुये पेड़ की स्थिति का बोध कराते हैं, जो एक संतुलित रूपसे क्रियाशील ढांचा है, इससंतुलित रूप से क्रियाशील ढांचे को ही संगठन कहते हैं । वे घटक जो इस संगठन को व्यवस्थित रूप से बनाये रखते हैं नियंत्रक कहलाते हैं । उद्योग में व्यवस्थापक, प्रबन्धक या साहसी राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था में सरकार एवं किसी संस्था समाज या समिति में संचालक होते हैं जो विभिन्न घटकों का विवेक एवं कुशलता से वैज्ञानिक एवं क्रमबद्ध समन्वय करके उनका सम्बन्ध बाह्य संसार के साथ स्थापित कर निश्चित सर्वमान्य उद्देश्यों की ओर संस्थान को अग्रसर करते हैं ।

जिस प्रकार वृक्ष में तने की सुदृढ़ता व स्थिति पर ही वृक्ष का आकार

मसूरिया उत्पादन में संलग्न करघों का वितरण
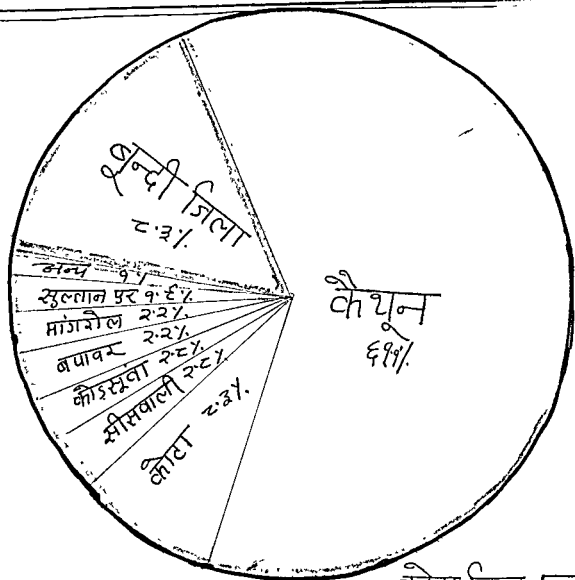
प्रकार एवं सुदृढ़ता निर्भर होती है उसी प्रकार किसी भी उद्योग में नियंत्रक की योग्यता पर ही संगठन का स्वरूप एवं सुदृढ़ता, उसमें नियोजित विभिन्न साधनों की कार्यकुशलता व योग्यता एवं उत्पादन की श्रेष्ठता व मितव्ययता निर्भर होती है। वह चाहे विद्युतीकरण यंत्रीकरण, विवेकीकरण, आधुनिकरण आदि से संचालित विशाल प्रमापीय उद्योग हो अथवा कुटिया में बैठकर साधारण उपकरणों एवं साज सज्जा से मानव श्रम द्वारा संचालित लघु या कुटीर उद्योग हो संगठन एवं नियंत्रण का महत्व कम नहीं होता है।

मसूरिया उत्पादन क्षेत्र :-

वर्तमान में कोटा क्षेत्र में मसूरिया का उत्पादन कोटा विभाग के कोटा व बून्दी जिले के विभिन्न स्थानों पर हो रहा है। जिनकी स्थिति निम्न प्रकार है :-

क्र० उत्पादनकेन्द्र	जिला	उपजिला	तहसील	प्राकृतिक विभाग
१. बून्दी	बून्दी	बून्दी	बून्दी	चम्बल कालीसिंध का दोआब
२. केशोरायपाटन	"	"	के०पाटन	" "
३. कापरेन	"	"	के०पाटन	" "
४. रार्टेडा	"	"	के०पाटन	" "
५. मण्डावरा	कोटा	कोटा	दीगोद	" "
६. कोटा	"	"	लाडपुरा	" "
७. कैथून	"	"	"	" "
८. मण्डाना	"	"	"	" "
९. कोडसुवां	"	"	दीगोद	" "
१०. मोरपा	"	"	"	" "
११. बडौद	"	"	"	" "
१२. सुल्तानपुर	"	"	"	" "
१३. सीसवाली	"	बारां	मांगरोल	कालीसिंध पार्वती का दोआब
१४. मांगरोल	"	"	"	"

क्र०	उत्पादन केन्द्र	जिला	उपजिला	तहसील	प्राकृतिक विभाग
१५,	अन्ता	कोटा	बारां	मांगरोल	कालीसिंध पार्वती का दोआब
१६,	पठायथा	"	"	"	"
१७,	बपावर	"	चैचट	सांगोद	कालीसिंध परवन पार्वती का दोआब
१८,	सांगोद	"	चैचट	"	"

इस प्रकार मसूरिया उत्पादन केवल कोटा जिले की ५ व बून्दी जिले की २ तहसीलों में और प्राकृतिक दृष्टिकोण से हाड़ौती के मध्य भाग में चम्बल, कालीसिंध व परवन पार्वती के दोआब प्रदेश में केन्द्रित है।

विद्यमान संगठन :-

मध्यकाल में अनेकों मध्यस्थों के जन्म एवं वर्तमान में पुन: सहकारिता पर राष्ट्रीय नीति के रूप में महत्व देने के कारण हमारे कुटीर उद्योगों में, मुख्य रूप से स्थानीय कच्चा माल व विपणन के न होने वाले उच्च कोटि के हाथ कर्घा उद्योगों में दो प्रकार का संगठन पाया जाता है। जिसे हम सहकारी व गैर सहकारी क्षेत्र कह सकते हैं। एतदर्थ, मसूरिया बुनकर उद्योग में भी संगठन के दोनों स्वरूप विद्यमान हैं।

(क) गैर सहकारी क्षेत्र :-

मसूरिया उत्पादन जो कि कोटा विभाग में लगभग १०००वर्ग मील के क्षेत्र में फैली हुई लगभग १५०० कुटयारों में हो रहा है कोटा नगर के कुछ व्यापारियों द्वारा नियंत्रित है। उत्पादन के लिये साधनों को उपलब्ध करना, उत्पादन कराना व उत्पादन का विपणन करना इनके कार्यों के मुख्य ३ भाग हैं। ये लोग आवश्यक उत्पादन सामग्री उपकरण एवं अन्य साज सज्जा जहां से भी उपलब्ध होती है मंगवाते हैं। इन व्यापारियों ने बुनकरों में से ही कुशल, चतुर एवं अच्छी आर्थिक स्थिति वाले बुनकरों को अपना प्रतिनिधि चुन लिया है। जिन्हें सामान्य बुनकर सेठिया कहते हैं। इस उद्योग में संलग्न सेठियों की संख्या ३१ है जिनमें से २५ कैथून में,३ कोटा में व ३ बून्दी के निवासी हैं। बून्दी वालों का काम केवल बून्दी,

केशोरायपाटन, कापरेन व रोटेदा में है, और कोटा व कैथून वाले सेठियों का काम बुन्दी को छोड़कर शेष सब स्थानों पर होता है। इसके अलावा मांगरोल में भी एक सेठिया जो पहले मोटा कपड़ा बुनवाता था अब मसूरिया बुनवाने लगा है। व्यापारी गण सेठियों को कच्चा माल व बाहर से मंगाये जाने वाले उपकरण नकद या उधार बेच देते हैं। इसके साथ ही में मजदूरी चुकाने के लिये आवश्यकतानुसार नकद रकम भी देते हैं। सेठिया आवश्यकतानुसार कच्चा माल बुनकरों को देते हैं। एक समय पर उत्पादन के प्रकार के अनुसार २४ गज,२५ गज, और ३० गज कपड़ा बुनने के लिये कच्चा माल दिया जाता है जिसे एक पाण कहते हैं। पाण के अनुसार ही मजदूरी का निर्धारण होता है। सम्पूर्ण कच्चा माल सेठियों का होता है बुनकर तो केवल अपना श्रम लगाकर कच्चे माल का रूप बदल देता है। जिससे वह पहले की अपेक्षा अधिक उपयोगी हो जाता है जिसे हम अर्थशास्त्र की भाषा में उत्पादन कहते हैं। इतना ही नहीं सेठिया जिन बुनकरों के पास करघे नहीं होते हैं उनके यहां करघे लगाते हैं, समय समय पर तकनीक सम्बन्धी जानकारी देते हैं, काम सिखाते हैं एवं समय समय पर मार्ग दर्शन करते रहते हैं और इस प्रकार प्रशिक्षक एवं तकनीकी सलाहकार का काम भी करते हैं।

कपड़ा बुन चुकने पर वापिस सेठियों के पास आ जाता है। इसके लिये कैथून में बुनकर ही स्वयं सेठियों को जाकर पहले बुना हुआ कपड़ा दे जाते हैं और आगे के लिये कच्चा माल ले जाते हैं। गांव में सेठिया लोग ही माह में एक या दो बार चक्कर लगा आते हैं और आवश्यकतानुसार कच्चा माल देकर वह बना हुआ कपड़ा लेकर वापिस आ जाते हैं। कुछ सेठिया अब धनवान हो गये हैं जो स्वयं नकद मूल्य देकर कच्चा माल बाजार से खरीदते हैं या बाहर से मंगा लेते हैं। फिर मजदूरी के आधार पर उत्पादन कराकर प्रतियोगी दरों पर वापिस व्यापारियों को बेच देते हैं। इनमें से कुछ सेठिया जिनका बाहर के व्यापारियों से सम्बन्ध स्थापित हो गया है उनको सीधा ही बुना हुआ कपड़ा भेज देते हैं। परन्तु इस प्रकार से विक्रय की मात्रा अत्यल्प है।

इसके साथ ही कुछ बुनकर ऐसे भी हैं जो नकद मूल्य देकर बाजार से कच्चा माल खरीद लाते हैं व माल तैयार करके वापिस प्रतियोगी दरों पर व्यापारियों को या सेठियों को बेच आते हैं। ऐसे बुनकर मुख्य रूपसे कोटा व कैथून में ही हैं।

बुनाई तकनीक सम्बंधि प्रशिक्षण नये बुनकर अपने सम्बंधियों या मिलने वालों के पास जाकर प्राप्त करते हैं। सभी बुनकर एक ही जाति के होने के कारण आपसी सहयोग प्राप्त करने में ज्यादा कठिनाई नहीं आती है। बाद में आकार प्रकार सम्बंधि निर्देशन समय समय पर सेठियों एवं व्यापारियों द्वारा किया जाता है।

इसप्रकार समस्त उत्पादन व्यापारियों के पास आकर एकत्रित हो जाता है जो धुलवाने के पश्चात इसे डाक द्वारा देश के विभिन्नभागों में भेज देते हैं व अपनी दुकानों पर ही बेच देते हैं। कभी कभी बाहर के व्यापारी भी आ जाते हैं जो स्वयं अपनी इच्छानुसार माल खरीद कर ले जाते हैं। मसूरिया वस्त्रों की धुलाई के लिए भी विशेषज्ञ धोबियों की आवश्यकता होती है। कोटा के केवल १० धोबी ऐसे हैं जो इनकी धुलाई करते हैं। इतना ही नहीं यह भी कहा जाता है कि इस कपड़े की वैसी धुलाई कोटा में होती है अन्य किसी स्थान पर नहीं हो सकती है। कुछ दिन पूर्व यहां के एक धोबी को बीकानेर ले जाकर वहां पर उससे धुलाई करवाने का प्रयत्न किया गया पर वह असफल रहा। यह भी यहां की जलवायु एवं पानी की विशेषता है।

गैर सहकारी क्षेत्र में सेठियों का विशेष महत्व है जो कुछ बुनकरों व व्यापारियों के मध्य एक महत्वपूर्ण कड़ी का काम करते हैं। सेठिया लोग केवल कच्चा माल उपलब्ध करने व विपणन का कार्य ही नहीं करते वरन नये बुनकरों को अपनी तरफ से करघा व अन्य उपकरण देकर व तकनीक सम्बन्धी मार्गदर्शन कर कच्चे माल की पूर्ति कर्त्ता, चल व अचल वित्त प्रबन्धक, प्रशिक्षक, मार्गदर्शक एवं विपणनकर्ता का काम भी करते हैं।

(ख) सहकारी क्षेत्र :-

वर्तमान में सरकार की अनुकूल नीति के कारण हाथकर्घा उद्योग में सहकारिता का एक क्रमबद्ध एवं पूर्ण संगठन है। अखिल भारतीय हाथकर्घा परिषद इस क्षेत्र में नियंत्रक का कार्य करती है। विदेशों से आयात किये जाने वाले कच्चे माल की पूर्ति के लिये वस्त्र आयुक्त (टेक्सटाइल कमिश्नर) एवं केन्द्रीय रेशम परिषद (सेन्ट्रल सिल्क बोर्ड) है जो क्रमश: सूत व रेशम का प्रबन्ध करते हैं। अंशपूंजी एवं उपकरण व सज्जा के लिये हाथकर्घा परिषद व कार्यशील पूंजी के लिये रिजर्व बैंक आफ इंडिया केन्द्रीय

सहकारी बैंकों के माध्यम से ऋण प्रदान करता है। विक्रय केन्द्र खोलने के लिये ऋण एवं अनुदान दोनों प्रकार की सुविधायें दी जाती हैं। विपणन के लिये राज्य स्तर पर राज्य बुनकर सहकारी संघ, राष्ट्रीय स्तर पर अखिल भारतीय हाथकर्घा वस्त्र विपणन सहकारी समिति लिमिटेड एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हाथकर्घा व हस्तकला उत्पादन निर्यात निगम लिमिटेड हैं।

मसूरिया हाथकर्घा उद्योग में प्राथमिक स्तर पर केवल मात्र एक सहकारी समिति नं० ८२७ है जो कि राजस्थान राज्य बुनकर सहकारी संघ व अखिल भारतीय हाथकर्घा वस्त्र विपणन सहकारी समिति की सदस्य है। यह सरकार द्वारा कच्चे माल कीपूर्ति व विपणन हेतु प्रदत्त सुविधाओं का उपयोग कर अपने क्षेत्र में उत्पादन, विपणन एवं वित्त प्रबन्ध का कार्य कर रही है। इसको सूत व रेशम की निश्चित मात्रा नियंत्रित मूल्यों पर खादी आयोग व केन्द्रीय रेशम परिषद के माध्यम से प्राप्त होती है। परन्तु उसकी मात्रा इसकी आवश्यकताओं की अपेक्षा कम होने से जरी, सूत एवं रेशम की शेष आवश्यकता की पूर्ति यह समिति भी स्थानीय बाजार में क्रय करके पूरा करती है। वित्त प्रबन्ध के लिये इस समिति ने ब्याज मुक्त कार्यशील पूंजी के हेतु ऋण लिया था जो कि सदस्यों में उनके अंश्यन्-शानुसार वितरित कर दिया गया था। वर्तमान में उत्पादन एवं विपणन का वित्तप्रबन्ध है-+-समिति के अध्यक्ष व मंत्री स्वयं कर रहे हैं।

यह समिति सदस्यों को कच्चा माल देती है एवं कार्यानुसार मजदूरी के आधार पर कपड़ा बुनवाती है। कपड़ा बुनवाने के लिये केवल सदस्यों तक ही सीमित नहीं रहती वरन् गैर सदस्य बुनकरों से भी यह समिति अपना कपड़ा बुनवाती है। निर्मित माल में से राज्य बुनकर सहकारी संघ लि० जयपुर, अखिल भारतीय हाथकर्घा वस्त्र विपणन सहकारी समिति लि०, अखिल भारतीय हाथ कर्घा व हस्तकला निर्यात निगम लिमिटेड, हाथकर्घा गृह दिल्ली एवं अन्य सहकारी विपणन केन्द्रों की मांग की पूर्ति कर शेष माल सीधा उपभोक्ताओं को या कोटे के व्यापारियों को बेच देती है।

शेषसब समितियां ऐसी हैं जिन्होंने अंश पूंजी एवं चल पूंजी हेतु दिये गये ऋण प्राप्त कर अपने सदस्यों में बांट दिये हैं और अब उनका काम ऋणों की किस्तों को एकत्रित करके हाथकर्घा परिषद एवं केन्द्रीय सहकारी बैंक को चुकाना मात्र रह

गया है।

इस प्रकार विभिन्न प्रकार से उत्पादन में संलग्न बुनकरों का चार मुख्य वर्गों में वर्गीकरण किया जा सकता है। जिनमें अनुमानित प्रतिशत निम्न प्रकार है:-

विभिन्न प्रकार के बुनकरों का प्रतिशत

वर्ग	प्रतिशत
१ सेठियों के लिए उत्पादन करने वाले	७५
२. स्वयं के लिए उत्पादन करने वाले	१०
३. सहकारी समिति के लिये उत्पादन करने वाले	१०
४. व्यापारियों के लिये उत्पादन करने वाले	५
	१००

सहकारिता :-

अर्थ एवं महत्व :-

भारतीय संस्कृति आदि काल से ही जब पाश्चात्य जगत सहकारिता का नाम भी नहीं जानता था विश्व बन्धुत्व, सहकारिता एवं संगठन का पाठ पढ़ाती आई है। किसी मनुष्य, किसी कुटुम्ब, किसी वर्ग, किसी जाति, किसी राष्ट्र का तब तक उत्थान नहीं हो सकता जब तक उनमें परस्पर एकता एवं संगठन न हो। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, समाज में मिलकर ही वह पूर्णतः सुखी हो सकता है। एकात्मता, विलग्नता तो इकहरे कच्चे सूत के समान है, जो किसी भी क्षण टूट सकता है। अकेला मनुष्य तो जंगल में उस वृक्ष की तरह है जो हवा के झोंकों से अकेला ही झूलता है। वर्षा, आंधी और तूफान में अकेला खड़ा रहता है। अर्थ क्मम वेद, पैप्पलाद, ५।१६।५ में लिखा है कि

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनोमा वियौष्ट,

संराधयन्त सधुराश्चरन्तः।

अन्योन्यस्मै वल्गुवदन्तोयात,

समग्रास्थ सध्रीचीनान् ।।

अर्थात् तुम सब लोग एक साथ मिलकर रहो, कभी अलग न होवो, एक

दूसरे को प्रसन्न रखकर एक साथ मिलकर भारी से भारी काम भी कर डालो। परस्पर सदा मीठे शब्द बोलो और अनेक अनुरक्त वर्गों से मिलते रहो इससे तुम श्रेष्ठता को प्राप्त करोगे।

इसी प्रकार ऋग्वेद में भी लिखा है :-

सहनावस्तु सहनौभुनक्तु
सहवीर्य करवामहे।

तेजस्विनावधीत मस्तु
मा विद्विषावहै ।।

अर्थात् आप लोग प्रत्येक कार्य एक साथ मिलकर करो, एक साथ मिलकर काम करो, इस प्रकार तुम तेज व उन्नति (यश, धन, धान्य, व्यवसाय में उन्नति) प्राप्त करोगे तथा आपस में परस्पर कभी द्वेष (शत्रुता) न करो।

साथ ही सहकारिता का स्वरूप क्या हो इसके लिये ऋग्वेद १०।१९१।४ पर लिखा है कि

समानी व: आकूती,
समाना हृदयानिव:।

समानमस्तु वो मनो,
यथाव: सुसहासति ।।

अर्थात् आप लोगों के अभिप्रायों में, विचारों में, हृदयों में भी एकता होनी चाहिये जिससे तुम्हारे संघ, समिति व समुदायकी उन्नति हो सके। इसी प्रकार यह भी लिखा है कि स

समानो मंत्रा समीति : समानी,
समान मन: सहचित्तमेषाम् (ऋग्वेद)

अर्थात् तुम्हारी समिति एक हो, तुम्हारी मंत्रणा एक हो (क्योंकि सब लोगों के एकमत न होने से कार्य नहीं हो सकता) तुम्हारे मानसिक विचार एक हों और तुम्हारा चित्त एक हो। ह

इस प्रकार का सहकारिता का दिवंगत स्वरूप भारतीय जीवन के आर्थिक सामाजिक राजनैतिक व धार्मिक सभी पहलुओं में विद्यमान था और इसीका परिणाम था कि भारत एक समृद्ध देश था व यहां के कुटीर उद्योगों से उत्पादित माल

का बाजार विश्वव्यापी था । परन्तु चिरकाल तक विदेशी शासन में जकड़े रहने तथा देश में प्रदेश, वर्ण, जाति, रूप, भाषा, लिपि, लिंग के आधार पर परस्पर संकीर्णता की दूषित मनोवृत्ति जन्य हैं के कारण आज हमारी यह पावन परम्परा नष्ट प्राय: हो गई है ।
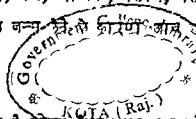
उद्गम एवं विकास :-

अर्थशास्त्र मानव जाति के दैनिक के जीवन कार्य का अध्ययन है एवं सहकारिता इस सामान्य कार्य के कुछ अंशों की पूर्ति का एक साधन है । यह आत्म-सहायता है जो कि संगठन के कारण अधिक प्रभावकारी हो जाती है । इसका आधार व्यापार व नीति शास्त्र का वह सम्बन्ध है जो हमारी वर्तमान औद्योगिक प्रणाली की आवश्यक व्यवसायिक इमानदारी से श्रेष्ठतर है । व्यवसायिक संगठन के रूप में सहकारिता का जन्म यूरोप में औद्योगिक क्रान्ति से उत्पन्न निर्धनता व आर्थिक कठिनाइयों के कारण हुआ । जिसमें विभिन्न व्यक्ति समानता के आधार पर और सामान्य आर्थिक हितों की प्राप्ति के लिये स्वेच्छा से संगठित होते थे । इसका पारिभाषिक अर्थ उत्पादन और वितरण में प्रतिस्पर्द्धा का परित्याग तथा सभी प्रकार के मध्यस्थों की जरूरत खत्म कर देना है । विभिन्न देशों में सहकारिता का प्रसार वहां की आवश्यकताओं एवं धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक परिस्थितियों के अनुसार विभिन्न रूपों में हुआ है । ब्रिटेन में भण्डार आन्दोलन के रूप में, जर्मनी व इटली में साख आन्दोलन के रूप में, डेनमार्क व स्वीडन में कृषि आन्दोलन के रूप में, रूस व फिलीस्तीन में सामूहिक कृषि आन्दोलन के रूप में एवं चीन में उत्पादन आन्दोलन के रूप में मुख्यत: सहकारिता का जन्म एवं विकास हुआ है ।

भारतीय अर्थ व्यवस्था का मुख्य आधार कृषि है हमारी राष्ट्रीय आय का लगभग ५० प्रतिशत भाग उसीसे प्राप्त होता है और हमारी ७० प्रतिशत जनता उसीके सहारे पलती है । अत: स्वाभाविक रूपसे व्यवसायिक रूपमें सहकारिता का जन्म औद्योगिक क्रान्ति से दलित निर्धन किसानों व श्रमजीवियों की आर्थिक कठि-नाइयों को दूर करने के लिये २० वीं सदी के प्रारम्भ में हुआ । द्वितीय महायुद्ध व उससे पूर्व मुख्यत: कृषि साख सहकारी समितियां ही बनी । युद्धोपरकाल में अने-अन्य क्षेत्रों में भी इनका विकास हुआ । हाथकर्घा बुनकर उद्योग में प्रथम प्रयास

१६२३ में हुआ जबकि केन्द्रीय सरकार ने बुनकरों को सहकारी संस्थायें बनाने के लिये आर्थिक सहायता प्रदान करने की घोषणा की। द्वितीय महायुद्ध काल में आयातों पर कड़े प्रतिबन्ध लगाने व निर्यात को प्रोत्साहन देने के कारण सभी औद्योगिक कम्पनियां युद्ध सम्बन्धी माल उत्पन्न करने लगी थी। इन सब कारणों से उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन बहुत कम हो गया जिसके फलस्वरूप छोटे छोटे उद्योगों को प्रोत्साहन मिला। प्रत्येक राज्य में सहकारी विभागों ने इस अवसर का लाभ प्राप्त किया और सरकारी अनुदानों की सहायता से बहुत सी औद्योगिक संस्थायें सहकारी क्षेत्र में स्थापित करने व उन्नति करने में खूब दिलचस्पी ली तथा उन्हें परामर्श तथा पथप्रदर्शन द्वारा उत्साहित किया। भारत में औद्योगिक सहकारिता का विकास मुख्यतः कुटीर उद्योगों में हुआ। यह आन्दोलन अन्य आन्दोलनों से विपरीत बुनियादी रूप से ग्रामों में उत्पन्न हुआ, फलाफूला और वहां से फिर शहरों की ओर गया। स्वतंत्रता से पूर्व सहकारिता विदेशी शासकों द्वारा ऋण-व्यवस्था के सीमित उद्देश्य से प्रारम्भ की गई जो रुकी थमी गति से चलती थी और इसके द्वारा ग्राम तथा नगरों की जनता को जो थोड़ी बहुत सहायता पहुंचाई जाती थी वह इसलिये कि शोषण और उत्पीड़न से इनकी कमर न टूट जाय। यह राष्ट्र नीति नहीं अपितु एक चाल नीति के रूप में चलती थी। इसीकाल में सूत की कमी के कारण उसके वितरण का नियंत्रण हुआ और परिणामस्वरूप सभी बुनकरों को आवश्यक रूप से सहकारी समिति के रूप में बन्धना पड़ा।

स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय संविधान में राज्य के नीति निर्देशक तत्वों एवं १६४८ की औद्योगिक नीति द्वारा कुटीर उद्योगों में सहकारिता के प्रसार पर जल दिया गया। इस काल में लगभग सभी बुनकरों को सहकारी क्षेत्र में लाने का पूर्ण प्रयत्न हुआ। विभिन्न सहकारी समितियों के कार्यों में समन्वय करने स व उनके विकास की योजना बनाने, उनके लिये सहायता का प्रबन्ध करने, सरकार को उद्योग की समस्या पर परामर्श देने आदि कार्यों के लिये सरकार द्वारा १६५२ में अखिल भारतीय हाथकर्घा परिषद स्थापित की गई। १६५३ में खादी एवं हाथकर्घा उद्योग विकास अधिनियम पास किया गया जिसके अनुसार ४ करोड़ रुपया बोर्ड को सहकारी समितियों की आर्थिक सहायता के लिये दिया गया। परिणामतः कितनी ही नई बुनकर सहकारी समितियां बनी और पुरानी सहकारी समितियों

को सदस्य संख्या बढ़ी । इस काल में समितियों की संख्या लगभग दुगनी हो गई । हाथकर्घा उत्पादन के विपणन के लिये एक केन्द्रीय विक्रय संस्था स्थापित की गई । देश व विदेश में अनेक प्रदर्शन गृह व विक्रय केन्द्र और राज्यों में राज्य बुनकर सहकारी संघ व विभिन्न स्थानों पर सहकारी क्रय विक्रय केन्द्र स्थापित किये गये ।

कोटा जिला-मैं-व्यवसायिक संगठन के रूप में सहकारिता का विकास करने में राजस्थान में अग्रणिय स्थान रखता है । भूतपूर्व कोटा रियासत द्वारा ही राजस्थान में-एक- सर्वप्रथम एक सम्पूर्ण सहकारी कानून १९१६ में भारत सरकार के सहकारी अधिनियम १९१२ के आधार पर बनाया गया । इससे पूर्व भी भरतपुर व अजमेर राज्यों में सहकारी कानून बनाये जा चुके थे पर वे अपूर्ण थे । क्योंकि भरतपुर, कोटा बीकानेर, जोधपुर, अलवर व जयपुर को छोड़कर किसी राज्य में १९४८ से पूर्व किसी प्रकार के सहकारी कानून का निर्माण नहीं हुआ । कोटा में सन् १९१७ से सहकारी बैंक कार्य कर रहा है[1] जिसकी रजिस्ट्री ६-२-१९२७ को कोटा स्टेट कोआपरेटिव बैंक लि० के नाम से १५९ समितियों तथा १३७ व्यक्तियों के प्रार्थना पत्र पर की गई थी ।[2] राजस्थान के राज्यों में यह सर्वप्रथम प्रयास था तथा राज्य सरकार द्वारा अनुदान एवं ऋण के रूप में इसे पूर्ण संरक्षण प्रदान किया गया । इसके बाद स्वतंत्रता प्राप्ति तक राजस्थान में ऐसा कोई भी संगठित सहकारी बैंक स्थापित नहीं हुआ । यही कारण था कि एकीकरण के अवसर पर कोटा राज्य में राजस्थान में भरतपुर के बाद सर्वाधिक सहकारी समितियां थीं जिनकी संख्या ६२५ थी ।[3] कोटा का केन्द्रीय सहकारी बैंक धन विश्वास व आर्थिक सुदृढ़ता का जीता जागता उदाहरण है । कार्यशील पूंजी के दृष्टिकोण से राजस्थान में इसका पांचवा स्थान है एवं निक्षेप कार्यशीलपूंजी अनुपात सर्वाधिक ७१.७ प्रतिशत है जबकि राजस्थान के सब सहकारी बैंकों का औसत केवल २८.२५ प्रतिशत है ।[4]

कोटा जिले में बुनकर उद्योग में संलग्न सहकारी समितियों की स्थापना द्वितीय महायुद्ध काल में एवं युद्धोत्तर काल में भी-हे- हुई है । प्रथम- उस समय सूत की कमी के कारण नियंत्रित मूल्यों पर सूत प्राप्त करने के उद्देश्य से एवं बाद में

---

१. सहकार संकलन पृष्ठ ११४ , प्रचार संविभाग सहकारी विभाग, राजस्थान

२. कतिपय सहकारी सुमन पृष्ठ १, डा० स्वरूपचन्द मेहता ।

३. सहकार संकलन पृष्ठ ११५, प्रचार संविभाग सहकारी विभाग, राजस्थान

४. सहकार संकलन पृष्ठ १४३.

५३-५४ से विविध प्रकार की सहायता व ऋण प्राप्त करने के उद्देश्य से बुनकर सहकारी समितियां संगठित की गई हैं।

बुनकर सहकारी समितियां कई प्रकार की हो सकती हैं। उनमें से प्रमुख स्वरूप निम्न हैं :-

स्थानिय समितियां ---

स्थानिय समितियां भी चार प्रकार की हो सकती हैं।

(१) साधन समितियां :- इनके निम्न कार्य होते हैं :-

(१) सदस्यों से प्राप्त हिस्सा पूंजी के अतिरिक्त केन्द्रीय सहकारी बैंकों से आर्थिक सहायता प्राप्त करना और अपने सदस्यों की आवश्यकताओं को पूरा करना।

(२) कच्चे माल को थोक मूल्यों पर खरीदना और उचित मूल्य पर सदस्यों में बांटना।

(३) थोक मूल्यों पर औजारों को खरीदना और उचित मूल्यों पर सदस्यों में बांटना।

(४) सदस्यों को सामान्य व यंत्रात्मक शिक्षा प्रदान करना।

(५) सदस्यों मे पारस्परिक सहायता की भावना उत्पन्न करना और उनमें बचत करने की आदत डालना।

(६) समितियों का संघों में संगठन करना।

(२) उत्पादन और विक्रय समितियां :-

ये समितियां निम्न कार्य करती हैं :-

(१) हिस्सा पूंजी के अतिरिक्त केन्द्रीय सहकारी बैंक व अन्य साधनों से आर्थिक सहायता प्राप्त करना।

(२) औजारों एवं कच्चेमाल को थोक मूल्यों पर खरीदना।

(३) सदस्यों से मजदूरी देकर कपड़ा बुनवाना।

(४) उत्पादन को बेचना व उचित मूल्य प्राप्त करना।

(५) सदस्यों को सामान्य व यंत्रात्मक शिक्षा दिलाने का प्रबंध करना।

(६) सदस्यों में पारस्परिक सहायता की भावना पैदा करना और उनमें बचत करने की आदत का विकास करना।

(७) समितियों को संघों मे संगठित करना ।

(३) स्थानीय सहकारी समितियों के संघ :-

इसके निम्न कार्य होते हैं :-

(१) विभिन्न सहकारी समितियों के कार्यों में समुच्चय करना ।

(२) उनकी वस्तुओं को बिक्री की व्यवस्था करना ।

(३) उनके लिए कच्ची सामग्री खरीदना ।

(४) निजी व सार्वजनिक संस्थाओं से ठेके प्राप्त करना ।

(५) उत्पति के उन्नत ढंगों में अनुसंधान की सुविधायें प्राप्त करना व उनकी वस्तुओं का प्रचार करना ।

(४) गृह निर्माण समितियाँ :-

इनका कार्य बुनकरों के लिए दीर्घकालिन ऋण प्राप्त करके उन्हें गृह निर्माण हेतु देना है ।

केन्द्रीय समितियाँ :-

भारत में वर्तमान में प्रचलित केन्द्रीय बुनकर या हाथ कर्घा वस्त्र सहकारी समितियां निम्न हैं :-

(१) राज्य बुनकर सहकारी संघ लि०

(२) अखिल भारतीय हाथ कर्घा वस्त्र विपणन सहकारी समिति लि०

(३) भारतीय हस्तकला व हाथकर्घा विपणन निगम

(४) क्षेत्रीय क्रय-विक्रय संघ

कोटा जिले में बुनकर सहकारी समितियां :-

मसूरिया, जो कि सूत रेशम व जरी तीन प्रकार के धागों से बुना जाता है, के उत्पादन, वितरण या विपणन के उद्देश्य से तो कोटा जिले में केवल एक सहकारी समिति की स्थापना हुई है । चूंकि कुछ वर्षों पूर्व अधिकतर जुलाहे केवल सूती वस्त्रों के निर्माण में लगे थे सूती वस्त्रों के उत्पादन व विपणन के वित्त-प्रबंध के लिए ही शेष प्राथमिक सहकारी समितियों की स्थापना हुई है । केन्द्रीय समितियों का सम्बंध तो हाथकर्घा पर बुने जाने वाले सभी प्रकार के कपड़ों से है ही, फिर भी मसूरिया उत्पादन के लिए इसे कोटा जिले में कोई विशिष्ट

केन्द्रीय समिति स्थापित नहीं हुई है ।

कोटा जिले में हाथकर्घा उद्योग में सहकारिता का इतिहास १९४५ से प्रारम्भ होता है । इस समय युद्ध के कारण सूत की कमी थी साथ ही बड़े कारखानों के सैनिक कार्यों के लिए उत्पादन में संलग्न होने से उपभोग के लिए एकदम बड़ी मांग थी, अतः जुलाहों ने सूत को नियंत्रित मूल्यों पर प्राप्त करने, ऋण सुविधायें प्राप्त करने के लिए सहकारी विभाग के प्रयत्नों एवं प्रोत्साहन से सहकारी समितियां बनाई । सर्वप्रथम बुनकर सहकारी समितियों की स्थापना कोटा जिले में बुनकरों की गढ स्थली कैथून से प्रारम्भ हुई और फिर ग्रामीण क्षेत्रों में हो अन्य वस्त्र उत्पादन केन्द्रों मांगरोल, सुल्तानपुर, बारां, छबड़ा, कोडुवां, बपावर सांगोद आदि में हुई । १९४५ से लेकर १९४७ के काल में लगभग सभी वस्त्र उत्पादन, केन्द्रों पर सहकारी समितियां बन चुकी थी ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात ४९-५० व ५०-५१ के वर्षों में पुनः सूती वस्त्र उद्योग पर संकट के बादल मंडराये और कपास के कम उत्पादन के साथ-साथ सूत की भी कमी पड़ गई । परिणामस्वरूप पुनः कुछ सहकारी समितियां स्थापित हुई । इसके पश्चात उपकर कोष से ब्याजमुक्त ऋण प्राप्ति के हेतु ५४-५५ से ५७-५८ तक कुछ सहकारी समितियां बनी । तब से नई सहकारी समितियों के बनने का काम रूका पड़ा है ।

कोटा जिले में वर्तमान में कुल ७१प्राथमिक बुनकर सहकारी समितियां हैं जिनके लगभग ७० प्रतिशत बुनकर (२५४६) सदस्य हैं । इनमें से २९ समितियों[१] के सदस्य मसूरिया बुन रहे हैं । वास्तव में केवल एक सहकारी समिति है जो मसूरिया उत्पादन के लिए वित्तप्रबंध, उत्पादन व विपणन का कार्य कर रही है । शेष सब समितियां इस प्रकार की हैं जिन्होंने सूती वस्त्र उत्पादन के नाम पर हाथ कर्घा परिषद व रिजर्व बैंक योजना के अन्तर्गत केन्द्रीय सहकारी बैंक से ऋण ले रखा है जो कि नकद रूप में ही सदस्यों में बांट दिया गया है और अब इनके सदस्य सामान्य सूती वस्त्रों का बुनना छोड़कर मसूरिया बुनने लग गये हैं ।

केवल समिति नंम्बर ८२७, कैथून है जो कच्चा माल मंगाती है, सदस्यों व गैर स सदस्य बुनकरों से मजदूरी देकर कपड़ा बुनाती है और फिर सहकारी स्रोतों द्वारा

१. इनका पूर्ण विवरण परिशिष्ट में दिया गया है ।

तत्कारी ही विक्रय करती है ।

संगठन का आलोचनात्मक अध्ययन :-

भारतीय वस्त्र उद्योग उत्कर्षकाल में जब सम्पूर्ण विश्व का बाजार था, इतना ही नहीं इसमें इतनी प्रतियोगितात्मक शक्ति थी कि औद्योगिक क्रान्ति में अग्रसर वृहत प्रमापीय उत्पादन के नेता इंग्लैंड कोमी अपने उद्योगों को प्रतिस्पर्द्धा से बचाने के लिये भारतीय वस्त्रों के आयात पर कठोर प्रतिबन्ध लगाने पड़े, एक सुसंगठित कुटीर उद्योग ही था । उस समय कच्चेमाल, उपकरण एवं सज्जा के लिये बुनकरों को मीलों और व्यापारियों की ओर न देखकर भारत के गांव गांव में व्याप्त कपास के लहलहाते खेतों, गांव के खाती और किसानों की ओर ही देखना पड़ता था । परिणामस्वरूप सबमें आपसमें सहयोग व प्रत्यक्ष सम्बन्ध के कारण मध्यस्थों के होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता उनकी जीविका भी अधिक थी व जीवनस्तर भी ऊंचा था ।

आज जबकि भारत के उच्च कोटि के हस्त निर्मित वस्त्रों का बाजार स्थानीय, क्षेत्रीय, प्रान्तीय या राष्ट्रीय न रहकर अन्तर्राष्ट्रीय हो गया है और दूसरी ओर कच्चे माल,उपकरण व साज सज्जा के लिये बुनकरों को सैंकड़ों मील दूर बड़े वृहत प्रमापीय उद्योगों की ओर देखना पड़ता है, साथ ही मध्यकाल में वृहत प्रमापीय उत्पादन से गला घोंटू प्रतियोगिता के कारण उनकी आर्थिक दशा सोचनीय है + ऐसे वर्गों का जन्म स्वाभाविक है जो उनकी सोचनीय अवस्था का लाभ उठावें । वर्तमान में सभी विकासशील हाथ कर्घा उत्पादनों की भांति मसूरिया उत्पादन में भी मध्यस्थों की एक लम्बी शृंखला है जो इस कलापूर्ण उत्पादन से प्राप्त हो रही आय के एक बड़े भाग के भागीदार हैं । पर गैर सहकारी क्षेत्र में संगठन सुदृढ़,क्रमबद्ध, एवं विवेकपूर्ण है । जिससे कच्चा माल प्राप्ति, वित्त प्रबन्ध, तकनीक सम्बन्धी शिक्षा विपणन आदि के बारे में कोई कठिनाई नहीं आती है । लेकिन सहकारी क्षेत्र में जो संगठन है वह अपर्याप्त एवं नाम मात्र का है ।

लेकिन इससे भारतीय जीवन के आधारभूत सिद्धांत आत्मनिर्भरता एवं स्वाभिमान का पूर्णत: लोप हो जाता है । कला का कर्त्ता बुनकर पूर्णत: सेठियों पर निर्भर है जो स्वयं व्यापारियों के हाथ की कठपुतली बने हुये हैं । कोटा के ५ प्रमुख

व्यापारी कभी भी संगठन करके सैकड़ों बुनकरों को बेरोजगार कर सकते हैं या सामान्य स्तर से भी नीचे स्तर पर जीवन व्यतीत करने को बाध्य कर सकते हैं। इस प्रकार की केन्द्रित नियंत्रण शक्ति का यही परिणाम है कि इस उत्कृष्टकला के कर्ता बुनकर केवल मजदूर हैं न कि एक स्वतंत्र स्वाभिमानी व स्वनिर्भर उत्पादक। परंतु यह बुनकर इन व्यापारियों के भी चिर ऋणी हैं जिनके अमूल्य सहयोग, सहायता, परिश्रम एवं प्रोत्साहन से ये बुनकर मिर्जों के अस्वास्थ्य प्रद एवं गंदे वातावरण से निकलकर पुनः अपने परम्परागत उद्योग में संलग्न हो गये हैं। साथ ही इन्हीं के कारण मोटा कपड़ा बुनना छोड़कर मसूरिया बुनने लगे हैं जिससे उनकी आय लगभग दुगनी हो गई है।

कुछ भी हो स्वाभिमान, आत्मनिर्भरता व स्वतंत्रता के बिना कला का स्थायित्व एवं निरन्तर विकास सम्भव नहीं है। आत्म सहायता ही एक मात्र मार्ग है जो बुनकरों को स्वाभिमान, आत्मनिर्भरता व स्वतंत्रता का पाठ पढ़ा सकती है जिसका कि दूसरा नाम सहकारिता है। इसीके कारण अतीत में भी भारतीय कला चर्मोत्कर्ष पर पहुंच पाई थी। सहकारिता विश्व का नियम है और जीवन का भी। सहकारिता में मानवीय चेतना, विवेक, भावना, श्रद्धा, विश्वास, सिद्धांत, निष्ठा और इन मानसिक बौद्धिक तत्वों से संचालित आचार विचार, व्यवहार क्रिया और परस्पर वर्तन(बर्ताव) का महत्व भौतिक-साधन,-सम्पत्ति-संगठन-व्यापार-व्यवसाय से कहीं अधिक है। दूसरे शब्दों में मानवीय-आत्मगत तत्व अर्थात् सहकारी चेतना, भावना-श्रद्धाविवेक, सिद्धांतनिष्ठा और उनसे निर्दिष्ट क्रिया व्यवहार वस्तुगत तत्वों जैसे पूंजी, कच्चेमाल, श्रम संगठन, कानून समितियों और सदस्यों की संख्या, व्यापार व्यवसाय से अधिक मौलिक और महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। सहकारिता की सफलता का मुख्य आधार आत्मगत तत्व हैं न कि वस्तुगत तत्व। इसके अर्थ यह भी नहीं हैं कि इसन- वस्तुगत तत्व की उपेक्षा है या उसके अस्तित्व को मान्यता नहीं। वस्तुगत तत्व तो आत्मगत तत्व की भांति ही अस्तित्व का अनिवार्य अंग हैं। केवल बात इतनी है कि सहकारिता में वस्तुगत तत्व को आत्मगत तत्वों के आधीन रहना पड़ता है। समस्त उत्पादन, वितरण, व्यापार, व्यवसाय और उद्योग को आत्मगत तत्वों के अनुरूप नियंत्रित किया जाना चाहिये तभी सहकारिता का वास्तविक उद्देश्य पूर्ण हो सकता है।

मसूरिया बुनकर- उत्पादन भारत के ऐसे कुटीर उद्योगीय उत्पादनों में से एक

है जिसके लिये कच्चा माल सैकड़ों एवं हजारों मील दूर से आता है जो स्वाभाविक रूपसे बहुत कीमती होता है और जिसका उत्पादन कार्य मीलों दूरी के क्षेत्र में फैली हुई हजारों झोंपड़ियों में निरंतर कार्यरत मानव श्रम द्वारा होता है, साथ ही उत्पादित माल का बाजार सैकड़ों व हजारों मील के क्षेत्र में देश व विदेश में फैला हुआ है और सरकार द्वारा इसके लिये किसी प्रकार के ऋण अथवा अनुदान की सुविधा नहीं है उसका नियंत्रण कोईएक श्रमिक या श्रमिकों का समूह, कोई एक व्यापारी या वर्तमान सरकार के किसी विभाग द्वारा कर सकना वर्तमान में जबकि सब ओर अधिकांश रूपमें स्वार्थी और कामचोर कार्यकर्ता दृष्टिगत होते हों हो सकना असम्भव ही प्रतीत होता है। यही कारण है कि आज भी जबकि हम योजनाबद्ध विकास के १३ वर्ष व स्वतंत्रता के १७ वर्ष गुजार चुके हैं सरकार सहकारिता एवं कुटीर व ग्रामोद्योगों के नाम पर जनता के कड़े पसीने की कमाई का करोड़ों रूपया व्यय कर चुकी है, भारतीय कुटीर उद्योगों में संलग्न श्रमिक परम्परागत रूपसे बड़े साहूकारों के शिकंजों में फंसे हुये हैं। विशेष रूपसे भारतीय गांवों व कस्बों में फैला हुआ अगिनीत प्रकार के नमूने और डिजाइनों के वस्त्र तैयार करने वाला व ३० लाख व्यक्तियों को नियोजन करने वाला व सवा करोड़ व्यक्तियों को आजीविका का साधन हाथकर्घा उद्योग, केवल जिसके विकास पर जिन सरकार के कितने ही विभाग, समितियां, कमीशन एवं परिषदें लगी हैं, स्वतंत्र भारत की सरकार द्वारा लगभग ४० करोड़ रूपया खर्च कर दिया गया है और ३४ करोड़ रूपया तीसरी योजना में व्ययकिये जाने को है—ऐसे हाथ कर्घा उद्योग में आज भी ८० प्रतिशत उत्पादन मध्यस्थों व साहूकारों की बुनकर शोषण नीति के अन्तर्गत हो रहा है।

मसूरिया उत्पादन में सहकारिता का प्रवेश नाम मात्र को है वो भी अपूर्ण है क्योंकि उसमें कच्चा माल, साज सज्जा व उपकरणों की प्राप्ति, वित्त प्रबन्ध व विपणन कार्यों में कोई सह सम्बन्ध नहीं है। सभा नं० ८२१ केवल एक मात्र प्राथमिक सहकारी समिति है, जिसकी सदस्य संख्या केवल ६० है इसके अलावा मसूरिया के लिये कोई अन्य प्राथमिक या केन्द्रीय समिति नहीं है। इसमें भी सहकारिता केवल वस्तुगत है आत्मगत नहीं, क्योंकि सदस्य और गैर सदस्य सभी बराबर मजदूरी पर इसका कपड़ा बुनते हैं, वित्त प्रबन्ध केवल अध्यक्ष व मंत्री करते हैं और वे ही लाभका अधिकतर भाग प्राप्त कर लेते हैं। प्राथमिक सहकारी समितियाँ, स्थानीय

प्रान्तीय, राष्ट्रीय व विदेशी विपणन संघों में क्रमबद्ध सम्बन्ध है पर वह केवल नाम-मात्र को है। वसका इतने बड़े उद्योग में नग्न योगदान केवल दो प्रतिशत के लगभग है। कच्चे माल की पूर्ति के लिये हाथकर्घा परिषद खान आयोग बम्बई व केन्द्रीय रेशम परिषद से सम्बन्ध स्थापित कर कच्चा माल नियंत्रित मूल्यों पर उपलब्ध करने का प्रावधान है पर उसकी शर्तें अत्यन्त कठोर, अव्यवहारिक हैं और उसको प्राप्त करने की प्रक्रिया दीर्घ एवं जटिल है जिसको ग्रामों के अशिक्षित बुनकर समझ सकना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। इसी का परिणाम है कि इतने बड़े क्षेत्र में जो केवल एक सहकारी समिति है उसे भी मांग का केवल ४० से ५० प्रतिशत ही कच्चामाल सहकारी शर्तों से प्राप्त होता है शेष मांग की पूर्ति हेतु उसे भी स्थानीय व्यापारियों की शरण लेनी पड़ती है। और अन्य सेठियों के समान ही कार्य करना पड़ता है।

अन्ततः यही कहना उचित होगा कि इस उत्पादन में जहां व्यवहारिक सहकारिता की तो अत्यधिक आवश्यकता है ही व्यवसायिक रूप में सहकारी संगठन की भी कम आवश्यकता नहीं है, पर उसका भी यहां पूर्णतः लोप ही है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि इस उत्पादन में व्यवसायिक संगठन के रूप में ही आध्यात्मिक व नैतिक आदर्शों को ध्यान में रखकर तदनरूप सम्पूर्ण प्रक्रिया का सुदृढ़ एवं विवेकपूर्ण पुर्नगठन किया जाय।

संगठन की सुदृढ़ता एवं कार्यशीलता के अभाव में हाथकर्घा परिषद, एवं राजस्थान सरकार द्वारा एवं रिजर्व बैंक योजना के अन्तर्गत केन्द्रीय सहकारी बैंकों द्वारा जो ऋण सुविधायें एवं अनुदान उपलब्ध किये जाते हैं उनका भी कोई प्रयोग नहीं किया जाता है। क्योंकि ये ऋण अब नकद न दिये जाकर कच्चे माल के रूप में ही दिये जाते हैं। आवश्यक किस्म का कच्चा माल मन्दि- उचित दर पर यदि कोई बुनकरों का क्षेत्रीय या स्थानीय संगठन हो तो वही खरीद सकता है। शीर्ष स्तर पर जहां सरकार का प्रत्यक्ष सम्बंध है व पूर्ण संरक्षण प्राप्त है संगठन सुदृढ़ एवं पूर्ण है परन्तु प्राथमिक स्तर पर संगठन का जो स्वरूप विद्यमान है उसके लिए केवल इतना कहा जा सकता है कि वह सरकारी कागजों की पूर्ति का एक बहाना मात्र है, वास्तव में उसका कार्यकरण नहीं के बराबर है। संगठन स्वचालित न होकर सहकारी विभाग के कर्मचारियों द्वारा नियंत्रित एवं संचालित है जिसका

स्पष्ट प्रमाण इस बात से मिलता है कि समितियों के सम्बंध में जानकारी व उसके पुराने हिसाब सब केवल सहकारी विभाग में ही देखे जा सकते हैं समिति के मंत्री अध्यक्ष व अन्य अधिकारियों के पास उनके सम्बंध में न कोई सूचना है न उन्हें उसकी पूर्ण जानकारी । जब कभी आवश्यकता होती है सहकारी विभाग के कर्मचारी हो मुखिया बुनकरों के पास चले जाते हैं जो फिर समस्त सदस्यों को एकत्रित कर लेते हैं और जो कुछ कार्यवाही चुनाव इत्यादि करना होता है कर लेते हैं । इसके पीछे उनका समिति के विषय में विचार करने हेतु एकत्रित होना शायद ही कभी होता हो । सामान्यतः सहकारी समितियों के जो पदाधिकारी हैं वह ही अब व्यापारियों के प्रतिनिधी जिन्हें सेठिया कहा जाता है बन चुके हैं जिससे वे स्वयं ही इस ओर कोई ध्यान नहीं देते । इस प्रकार प्राथमिक स्तर पर सहकारी समितियों का जो संगठन है वह वैसे तो मसूरिया उत्पादन से अभी तक सम्बंधित है ही नहीं लेकिन उसे इससे सम्बधित किया जा सकता है कुछ परन्तु विद्यमान रूप में ही यदि उन्हें मसूरिया बुनकर संगठन का नाम दे दिया गया तो उससे बुनकरों के कल्याण हेतु कुछ होने वाला नहीं है । जो एक समिति मसूरिया उत्पादन का काम कर रही है उसका संगठन भी वास्तव में तो सहकारिता के आधार पर पूर्ण नहीं है क्योंकि उसका संचालन बुनकरों के कल्याण के लिए न होकर उसके पदाधिकारियों को जेबें भरने के लिए हो रहा है जो कि उसका वित्त-प्रबन्ध एवं संचालन कर रहे हैं इसके पदाधिकारी भी कुछ सेठिया ही हैं जो सरकारी स्रोतों से कच्चे माल को प्राप्त करने व सहकारी स्रोतों से बेचने से होने वाले अतिरिक्त लाभ की प्राप्ति के हेतु इसका संचालन करते हैं । आश्चर्य का विषय है कि वर्तमान में जबकि इस समिति का वार्षिक उत्पादन लगभग हजार रुपये का है इसने इस हेतु कोई ऋण प्राप्त नहीं किया है और न ही इसके सम्बंध में सहकारी विभाग में कोई आंकड़े उपलब्ध हैं । वैसे तो इसका नाम जगह जगह पर दिया गया है लेकिन जब इसके सम्बंध में आंकड़े प्राप्त करने हेतु सम्बंधित रजिस्टर को सहकारी विभाग में देखा गया तो सब समितियों के बारे में आंकड़े दिये हुए थे परन्तु इस समिति के आगे यह लिखा था कि आंकड़े उपलब्ध नहीं है । केवल इस वर्ष के सम्बंध में ही नहीं वरन पिछले वर्षों के लिए भी ऐसा ही लिखा हुआ था । समिति के अध्यक्ष व मंत्री से भी कई बार मिलने पर भी टाल-मटोल के अलावा क्रय, विक्रय

विपणन, विपप्रबंध, लाभ आदि के सम्बंध में कोई सही आंकड़े उपलब्ध नहीं हो सके हैं। जब तक प्राथमिक स्तर पर संगठन सुदृढ़ नहीं हो जाता शीर्ष स्तर पर सरकार द्वारा किया जाने वाला संगठन नाम मात्र का व सरकारी धन का अपव्यय मात्र ही रह जाता है।

प्राथमिक स्तर पर सुदृढ़ एवं विवेकपूर्ण संगठन के अभाव का मुख्य कारण अज्ञान व अशिक्षा है जिसके कारण पहले तो बुनकरों को सरकार द्वारा प्रदत्त की जाने वाली सुविधाओं का पूर्ण एवं वास्तविक ज्ञान होने नहीं पाता है और यदि सहकारी विभाग के कर्मचारियों के द्वारा कुछ ज्ञान होता भी है तो फिर वास्तविक संचालन व सुविधायें उपलब्ध कराने का सम्पूर्ण भार उनके ऊपर ही आ पड़ता है। इसमें सबसे बड़ी कठिनाई यह होती है कि एक ओर तो उन अशिक्षित बुनकरों के कल्याण के गीत गाये जाते हैं पर उसके लिए सारा पत्र-व्यवहार होता है हमारे दासत्व की अमिट छाप अंग्रेजी में जिसेकके-बुनकर आज के पढ़े लिखे व्यक्ति भी ठीक प्रकार से नहीं समझ पाते तो फिर उन बेचारे बुनकरों के लिए तो उसका समझना व उसके अनुसार आगे कार्य करना बड़ा दुष्कर हो जाता है। इसप्रकार यदि बुनकर सहकारिता की ओर कदम बढ़ाते भी हैं तो उन्हें प्रारम्भ से अन्त तक दूसरों के ऊपर ही निर्भर रहना पड़ता है। अन्ततः विद्यमान स्वरूप में सहकारिता वास्तविक न होकर केवल कागजी कार्यवाही मात्र रह गई है।

सुझाव :--

एक ओर साधन हैं दूसरी ओर साधनों की मांग है और तीसरी ओर राष्ट्रीय आवश्यकता ~~है~~ परन्तु समन्वय व संगठन के अभाव में तीनों के तीन रास्ते हैं। अतः आवश्यक है कि सरकार द्वारा प्रदत्त समस्त सुविधाओं का मितव्ययता, ईमानदारी, कुशलता, एवं प्रभावी ढंग से उपयोग करने के लिए संगठन में आवश्यक परिवर्तन किये जावें।

सर्वप्रथम तो प्राथमिक सहकारी समितियों को जो सम्पूर्ण सहकारी आन्दोलन की मूल हैं सुसंगठित किया जाना चाहिए। इन्हें बहुमुखी समितियों की तरह कार्य करना चाहिए और बुनकरों के सम्पूर्ण जीवन को अपने क्षेत्र में ले

आना चाहिए। इन्हें केवल सरकार से प्राप्त ऋण व अनुदानों के सदस्यों में वितरण का माध्यम न रहकर सदस्यों की शोषणीय स्थिति को समाप्त करके उनके कल्याण का माध्यम बनना चाहिए। इनका उद्देश्य होना चाहिए बुनकरों का सामाजिक एवं आर्थिक कल्याण। इसके लिए इन्हें साख-समितियों, उत्पादन-समितियों, विपणन-समितियों एवं सामाजिक कल्याण समितियों के रूप में काम करना चाहिए।

(२) मसूरिया बुनकर सहकारी समितियों का केन्द्रीय संघ :- सम्पूर्ण प्राथमिक सहकारी समितियों का जिनके सदस्य मसूरिया उत्पादन करें एक केन्द्रीय संघ होना चाहिए। इसका प्रबन्ध किसी उच्च शिक्षा प्राप्त व अनुभवी व्यवस्थापक के द्वारा होना चाहिए। इस संघ को समग्र रूप से सदस्य समितियों के लिए कच्चे-माल, उपकरण, सज्जा आदि की व्यवस्था करनी चाहिए क्योंकि इससे इससे बाहर से कच्चा माल मंगाने या खान आयुक्त रूप से और केन्द्रीय रेशम परिषद के माध्यम से प्राप्त करने में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष कई प्रकार की मितव्ययतायें प्राप्त होंगी, और समय की बचत होगी, सरकार को विविध प्रकार से सहायता करने व प्रोत्साहन देने में सरलता रहेगी व उसका उपयोग भी अधिकतम लाभ प्राप्त करते हुए किया जा सकेगा। सज्जा एवं उपकरण बाहर से मंगाने में भी सुविधा रहेगी व कम मूल्य पर प्राप्त हो सकेंगे। प्रशिक्षण एवं विवेकीकरण करने में सुविधा रहेगी। प्रमापीकरण वश्रेणीकरण सम्भव हो सकेगा। उत्पादन प्रक्रिया व उत्पादनों में सुधार व खोज के लिए मार्ग प्रशस्त होगा और स्थानीय, राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों में उत्पादन का विक्रय सुविधापूर्ण एवं मितव्ययी हो सकेगा। क्योंकि एक समिति के पास अपने साधन व सीमित होने से वह इन सब कार्यों को इतने सुविधापूर्ण ढंग से, कुशलता व मितव्ययता के साथ नहीं कर सकती। इस संघ के हिस्से सरकार द्वारा भी खरीदे जाने चाहिए जिससे कि इसके सामान्य बुनकरों के हित में कुशलता पूर्ण संचालन के उद्देश्य का निरन्तर बनाया रखा जा सके और सरकार का ध्यान भी नियमित रूप से इस कला के विकास की ओर आकृष्ट रहे।

(३) छोटी सहकारी समितियां हों :- कोटा जिले में सहकारी विभाग द्वारा यह नीति अपनाई गई है कि एक स्थान की सब समितियों को मिलाकर एक बड़ी समिति बना दी जावे। मांगरोल में जहां पर १६ बुनकर सहकारी समितियों को मिलाकर एक कर दिया गया है इस नीति का श्रीगणेश किया है और अब वे

कैथून में भी जो कि मसूरिया उत्पादन का केन्द्रस्थल है ऐसा ही कदम उठाने का विचार कर रहे हैं। इसके पीछे वे यह दलील देते हैं कि इससे उनके नियंत्रण में सुविधा रहेगी व वह समिति प्रशिक्षित कर्मचारी रख सकेगी क्योंकि उसके पास साधन अधिक होंगे और इस तरह से ज्यादा अच्छा काम कर सकेगी। मैं मानता हूं कि इस दलील में कुछ दम है परन्तु यह दलील केवल विद्यमान स्वरूप को ध्यान में रखकर दी जारही है जो कि वर्तमान में प्रचलित है और जिसका दीर्घकाल तक बने रहना सहकारिता शब्द का दुरूपयोग मात्र ही होगा। इन अस्थायी लाभों का नतीजा शायद स्थायी नुकसान होगा। सोचने का यह तरीका, यह दृष्टिकोण लोगों में आत्म-निर्भरता, आत्म-विश्वास और एक दूसरे के साथ सहयोग करने की भावना के विकास में बाधा डालता है। इस दृष्टिकोण से ऐसी आदत को बढ़ावा मिलेगा जो बिल्कुल गलत है, पर जो देश में किसी कदर फैली हुई है। वह आदत है हर चीज के लिए सरकार का मुंह ताकने की आदत। सहकारी समिति जितनी बड़ी होती है उतना ही लोग एकदूसरे को कम जानते हैं। अन्तत: वह संस्था एक ऐसा संगठन नहीं रह जाती है जिसमें लोग एक दूसरे को भलीभांति जानते हों और एक दूसरे से सहयोग कर सकें। ऊंचे स्तर पर यदि लोग एक-दूसरे से भलीभांति परिचित न हों तो कोई अन्तर नहीं पड़ता, किन्तु गांव-स्तर पर एक दूसरे को भलीभांति जानना और मिल-जुल कर काम करना कहीं ज्यादा आसान है + जो कि सहकारिता को वास्तविक अर्थों में लाने के लिएपरमावश्यक है। बड़ी सहकारी समिति से होने वाले सभी लाभ उनका एक संघ स्थापित करके,जैसा कि ऊपर बताया गया है, प्राप्त किये जा सकते हैं।

(४))बुनकर कल्याण समिति :- मुख्य मुख्य गांवों में जहां पर बुनकरों की पर्याप्त संख्या है (कम से कम २५-३०) एक बुनकर कल्याण समिति स्थापित की जानी चाहिए। सरकार के विभिन्न विभागों द्वारा जो भावात्मक एकता लाने, सामान्य प्रशिक्षण देने, सहकारिता, बचत, चरित्र-निर्माण, अनुशासन आदि के सम्बन्ध में किये जाने वाले फिल्म-प्रदर्शन, सभायें, भाषण व अन्य कार्य उसके माध्यम से किये जाने चाहिए। इस समिति को दैनिक जीवन की आवश्यकताओं को उपयोगी प्रशिक्षण, मनोरंजन एवं स्वास्थ्य सुविधायें उपलब्ध कराने का प्रयत्न करना चाहिए। इन सब कार्यों के लिए कुछ अनुदान सरकार को देना चाहिए, कुछ अनुदान संघ द्वारा

दिया जाना चाहिए और शेष व्यय सदस्यों द्वारा ही वहन किया जाना चाहिए।

(५) केन्द्रीय बैंकों का पुनर्गठन :- केन्द्रीय सहकारी बैंक को केवल ऋण देने का माध्यम न रहकर सदस्य समितियों के कार्यों में अधिक रुचि लेनी चाहिए। सदस्यों के भौतिक व नैतिक स्तर को ऊंचा करने के लिए केन्द्रीय बैंकों को समितियों के कार्य का पथ-प्रदर्शन, पर्यवेक्षण, सदस्यों को सहकारी शिक्षा देने में सहयोग तथा सामान्यत: सहकारिता की कार्य प्रणाली के सुधार में सहायता देनी चाहिए।

इस प्रकार भौतिकता व नैतिकता का सच्चा रूप हमारे सामने आ सकेगा व अथर्वेद ऋग्वेद आदि में वर्णित सहकारिता का सच्चा रूप प्राप्त किया जा सकेगा। यहही बुनकरों के आर्थिक व सामाजिक कल्याण का मार्ग व राष्ट्रीय आवश्यकता है।

ऋग्वेद में लिखा है कि

ये न देवा न वियन्ति, नो च विद्विषते मिथ: ।
तत्कृण्मो ब्रह्मवो गृहे, संज्ञानं पुरुषेभ्य : ।। (ऋग्वेद ६० ५।१६।४)

जिसप्रकार प्रेम से देवगण एक दूसरे से पृथक नहीं होते और न ही आपस में द्वेष ही करते हैं, वही प्रेम तुम लोगों में भी हो जिससे परस्पर सुमति व सदभावना का विस्तार हो। तभी

समानी व: आकूती, समाना हृदयानिव:
समान मस्तु वो मनो, यथाव: सुसहासति ।। (ऋग्वेद १०।१९१।४)

आप लोगों के अभिप्रायों में, विचारों में, व हृदयों में एकता होगी जिससे कि तुम्हारे संघ, समुदाय व समिति की उन्नति हो सके।

अध्याय तृतीय

उत्पादन प्रक्रिया

१. परिचय:- मसूरिया वर्तमान में सूत, रेशम व जरी का मिलाजुला बनाया जाता है। इसमें अन्य सब प्रकार के हाथकर्घा उत्पादनों से भिन्न उच्च कोटि का सूत, रेशम व जरी काम में ली जाती है। भारत में शायद ही कोई ऐसा हाथकर्घा उत्पादन हो जिसमें इस प्रकार से तीनों ~~वस्तुओं~~ वस्तुओं का एक साथ उपयोग किया जाता हो। जिस प्रकार इसमें प्रयुक्त किया जाने वाला कच्चा माल सामान्य हाथकर्घा उद्योगों में प्रयुक्त किये जाने वाले कच्चे माल से भिन्न प्रकार का है, इसकी बुनावट भी सबसे भिन्न प्रकार की है जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है। चूंकि इसमें उच्च कोटि का कच्चा माल प्रयोग में आता है इसको उत्पादन प्रक्रिया में सफाई का विशेष ध्यान रखा जाता है। यह कपड़ा केवल थ्रो शटल पिट लूम पर बुना जाता है। फ्लाई शटल पिट लूम या किसी भी प्रकार के फ्रेम लूम या स्वचालित लूम पर इसे नहीं बुना जा सकता। यह इसकी प्राविधिक सम्बन्धी विशेषता है। इसमें जहां एक ओर क्रम से सूत रेशम व जरी का प्रयोग कर उनके अनुसार चौकड़ियां बना देते हैं उसके साथ ही इसमें विभिन्न प्रकार का सूत काम में लेकर पट्टा, चौकड़ी, चौखाना आदि भी बनाये जाते हैं। इतना ही नहीं इसके साथ ही साथ सूत बनाते हुये पट्टा, चौकड़ी या चौखाना डालने के साथ साथ उनके बीच बीच में फूल एवं पत्तियां भी बनाई जाती हैं। इस प्रकार यह एक अत्यन्त बारीक व कलापूर्ण काम है।

इसके आर्थिक पहलुओं का सुव्यवस्थित अध्ययन करने के लिये यह आवश्यक है कि इसकी निर्माण प्रक्रिया का भी अध्ययन किया जाय। अतः आगे बढ़ने से पूर्व पहले इसकी निर्माण प्रक्रिया का विवेचन किया गया है।

२. प्रारम्भिक क्रियायें :-

इसमें धागे को बुनाई के लिए कर्घे पर लाने से पूर्व जितनी भी प्रारम्भिक क्रियायें करनी पड़ती हैं। उन सबको हम दो भागों में बांट सकते हैं।

१, ताना के लिये धागा तैयार करना ।

२, बाना के लिये धागा तैयार करना ।

ताना से तात्पर्य लम्बाई से व बाना से तात्पर्य चौड़ाई से होता है । ताना व बाना (क्रमश: लम्बाई व चौड़ाई) में काम आने वाले धागों को तैयार करने की विधि कुछ कुछ भिन्न है । अत: हम क्रमश: इन्हें देखेंगे । सूत, रेशम व जरी को करघे पर लाने योग्य बनाने से पूर्व जिन पूर्व क्रियाओं से गुजरना पड़ता है वे भिन्न भिन्न हैं । अत: इन तीनों के सम्बन्ध में प्रारम्भिक प्रक्रिया का अध्ययन हम अलग अलग करेंगे ।

(क) सूत :-

जैसा कि पहले बताया जा चुका है इसमें ८० नं० से १८० व २०० नं० तक का सूत काम में आता है । ज्यों ज्यों वस्तु की किस्म ऊंची होती जाती है सूत का नं० भी बढ़ता जाता है । सूत का धागा तैयार करने की विधि को हम तीन भागों में बांट ~~सकते हैं~~ देते हैं :-

१, सूत पक्का करना

२, सूत रंगना

३, मांडी करना

(अ) सूत पक्का करना :- सूत १० पौंड या ५ पौंड के बंडल जिन्हें क्रमश: पूड़ा व पूड़ी कहते हैं बंधा हुआ आता है । बण्डल में सूत के मोटे मोटे पोले होते हैं । एक पोले में ५ या १० लच्छियां होती हैं जिन्हें छोरे और फोलको भी कहते हैं । छोरे की सिकुड़न मिटाने व गंदगी और रूई निकालने के लिये उसके बीच में दोनों हाथ डालकर उसे कई बार फटकते हैं । फिर उसे दोनों घुटनों में अटकाते हैं इसके बाद तीन छोरा एक हाथ में व दो दूसरे हाथ में माला की तरह लेते हैं जिसे लरियाना कहते हैं । फिर उन्हें एक दूसरे के साथ इस प्रकार गांठ देते हैं कि वे कूटकर साफ करते समय बिखरें नहीं । तदन्तर मिट्टी के तसला में पानी डालकर उन्हें भिगो देते हैं । पानी में सूत भिगोने को सूत पक्का करना कहते हैं । भिगोने के लिये पानी ~~मिट्टल-स~~ मीठा व हल्का होना चाहिये । खारा व भारी पानी अच्छा नहीं होता । पानी में सफाई लाने के लिये उसमें थोड़ा कपड़ा धोने का सोड़ा भी डाल दिया जाता है ।

२४ घंटे पानी में रखने के बाद पीलों को पानी से निकाल लेते हैं और फिर इन्हें हाथ से फचकार-फचकार कर धीरे धीरे पानी डालते हुये सुखा लगाते हैं। बाद में साफ पानी लेकर उसमें धोकर सुखा देते हैं। इस प्रकार सूत में जो गंदगी निर्माणशाला (मील) में रह जाती है वह साफ हो जाती है। अब सूत पक्का हो जाता है और रंगाई के लिये तैयार होता है।

रंगीन सूत :- मसूरिया उद्योग में अधिक मात्रा में सफेद- सफेद सूत ही काम आता है केवल साड़ियों में रंगीन सूत का प्रयोग किया जाता है। इसलिये साधारणतया रंगीन सूत ही बाहर से मंगा लिया जाता है। कोटा, कैथून व मांगरोल में एक एक व्यक्ति ऐसे हैं जो यहां पर ही रंगाई का काम भी करते हैं। रंगीन सूत को भी सादे सूत के समान ही पक्का करने के लिये भिगो दिया जाता है। पर इसे २४ घंटा न भिगोकर केवल डेढ़-दो घंटे ही भिगोया जाता है। साथ ही इसे धूप में न सुखाकर छाया में ही सुखाया जाता है।

सूत को पूरा क्यों नहीं सुखाया जाता बल्कि उसमें नमी रखी जाती है जिससे उसमें धागा न टूटे व नलियां ठीक से भरी जा सकें। इस क्रिया करने में अधिक कुशल श्रम की आवश्यकता नहीं होती अतः पुरुष या स्त्रियां कोई भी इस कार्य को आसानी से कर लेते हैं।

(ख) सूत रंगना :- जो व्यक्ति यहां पर सूत को रंगते हैं उसकी प्रक्रिया इस प्रकार है :-

सूत को रंगने के लिये यहां पर ४ प्रकार का रंग काम आता है।

१. कैलोडोन २. ब्रोनथाल ३. इण्डियन थ्रोम ४. नैफथाल। कैलोडोन व इण्डियन-थ्रोम का लाल रंग छोड़कर शेष सब रंग पक्के होते हैं। लाल रंग ब्रोन थाल व नैफथाल का पक्का होता है। कैलोडोन व इण्डियनथ्रोमन भारतीय उत्पादन हैं एवं ब्रोनथाल व नैफथाल जर्मन उत्पादन हैं। रंगने के लिये जैसा भी रंगना होता है वही रंग लेकर उसकी एक अलग कटोरी में लेई बना लेते हैं। साथ ही एक बड़े बर्तन में निश्चित अनुपात में पानी गरम करते हैं। पानी गरम हो जाने पर रंग की लेई उस पानी में डालकर लकड़ी से मिला देते हैं। इसके पश्चात् जितना सूत रंगना होता है वह उस पानी में डाल देते हैं। साथ ही हाइड्रो व कास्टिक सोडा का निश्चित प्रतिशत भी पानी में डाल दिया जाता है। उसे लकड़ी से उलटपुलट करते रहते हैं और जब सारे सूत पर बराबर रंग आ जाता है तो उसे निकालकर छाया में सुखा देते

(द) मांडी करना :- मांडी करने के लिये विभिन्न स्थानों पर भिन्न भिन्न तरीके अपनाये जाते हैं। सामान्यतया निम्न दो तरीके अधिकतर बुनकरों द्वारा अपनाये जा रहे हैं।

प्रथम :- इसमें बुनकर एक बर्तन में पानी भरकर उसे आग पर चढ़ा देते हैं फिर उसमें कोली कान्दा का रस व थोड़ी मैदा डाल देते हैं। कहीं कहीं पर जड़ कान्दे का रस भी डाला जाता है। यह मांड काफी पतली तैयार की जाती है। जब उसमें पर्याप्त चिकनाई आ जाती है तो उसमें सूत के गोले डाल देते हैं। फिर बर्तन में उसे अच्छी तरह भिगोते हैं। जब सारे सूत पर बराबर व अच्छी तरह मांड लग जाती है तो उसे निकालकर धूप में सुखा देते हैं। इसे भी पूरा नहीं सुखाया जाता है जिससे धागा न टूटे व नली बराबर भरी जावे।

द्वितीय :- इसमें सूत का ताना करने के पश्चात् उसे सज्जीकरण के हेतु बिछाकर जल में तैयार की हुई लेई को एक बुआरी से फटक फटक कर सूत को गीला करते हैं। इस प्रकार जब सारा सूत लेई के कारण गीला हो जाता है तो फिर बुश से उसे साफ करते हुये सुखा लेते हैं। इस विधि में मांड लगाने व सज्जीकरण दोनों कार्य एक साथ ही हो जाते हैं।

मांड चढ़ा देने के पश्चात् सूत को कुछ गीला ही रखकर फटक फटक कर फोलकी चरखी पर चढ़ा करके नारा, नली या बोबिन्स भर लेते हैं। एक नारा या नली के लिये एक छोरे का सूत पर्याप्त होता है। सूत उलझे नहीं इस दृष्टि से प्रत्येक छोरे में रंगीन सूत बंधा रहता है जिसे वनिका बोलते हैं। छोरे का एक सिरा लेकर नली भरना आरम्भ करते हैं। सूत टूटने पर उसमें एक प्रकार का नट लगाते हैं जिसे मुर्रियाना कहते हैं। नली में सूत बराबर से भरना आवश्यक होता है। नली को बनावट में खराबी या सूत के ज्यादा सूख जाने या बरसात के मौसम के कारण फूल जाने के कारण यदि नली बराबर नहीं भरी जाती है तो उसे ढगढोला कहते हैं। नली भर जाने पर उसे पानी में भिगो देते हैं।

अब सूत के दो भाग कर देते हैं। एक भाग को नलियां बुनाई के लिये पानी में भिगोकर रखी जाती है और शेष नलियों का ताना किया जाता है।

(स) रेशम:-

यह भी लच्छियों के रूप में ही आता है। इन लच्छियों को थोड़ा

जीला
गीला करके चरखी पर चढा दिया जाता है । गीला करने से रेशम नली में बरा. भरता है । इसके बाद चरखी चलाकर नलियां भर ली जाती हैं । लगभग आधी नलियों जो बाने में काम आने वाली होती हैं पानी में डाल दी जाती हैं और शेष नलियों से रेशम का भी ताना किया जाता है ।

(ग) जरी :-

जरी भी लच्छियों के रूप में ही आती है । लच्छियों को सीधा चरखी पर चढा कर नलियां भर ली जाती हैं । इसके लिए इससे पूर्व किसी अन्य प्रक्रिया की आवश्यकता नहीं होती है ।

सामान्यतया ताने के लिए तो रेशम, सूत व जरी जितनी आवश्यकता होती है उतनी एक ही साथ नलियों में भरकर तैयार कर ली जाती है । परन्तु बाने के लिए सूत, रेशम व जरी तीनों की नलियां आवश्यकतानुसार बुनाई के काल में ही अलग से स्त्रियां भरती रहती हैं । इससे एक और तो बुनाई के लिए कच्चा माल कर्घे पर आने में कम समय लगता है दूसरी और ताजा भरी हुई नलियों में नमी रहने से धागा भी नहीं टूटता ।

३. ताना व सज्जीकरण :-

नलियां भर चुकने के बाद सूत, रेशम,व जरी तीनों का अलग अलग ताना किया जाता है । सूत का ताना मांड लगाने से पूर्व भी किया जा सकता है और बाद में भी । मांड लगाने से पूर्व ताना करने पर मांड लगाने की दूसरी विधी अपनाई जाती है और बाद में ताना करने पर पहली । मांडी को साफ करने के लिए सूत को फैलाकर साफ की जाती है जिसे सज्जीकरण करना कहते हैं । रेशम व जरी में मांड नहीं लगाई जाती अत: उसके सज्जीकरण की आवश्यकता भी नहीं होती है ।

ताना करने के अनेक ढंग होते हैं जैसे ग्राउण्ड मिल वारपिंग, वाल वारपिंग, होरीजेन्टल मिल वारपिंग आदि । मसूरिया उत्पादन प्रक्रिया में ग्राउण्ड मिल वारपिंग पद्धति ही काम में ली जाती है । इस पद्धति में जमीन में ३ लोहे की मोटी सलाखें गाड़ दी जाती हैं जिन्हें खन्ती या सराणे कहते हैं । दो सलाखें एक तरफ व एक सलाख दूर उनसे १२।।, १३, १४गज, या जितनी भी लम्बी पाण करनी

होती है उससे आधी दूरी पर गाड़ देते हैं। सामान्यतः २४, २५, या ३० गज की पाण की जाती है। राछ के सुराखों के हिसाब से ताने में सूत के धागों की गिन्ती करके उसके हिसाब से ताना करते हैं और राछ के सुराखों के हिसाब से ही खतों की मात्रा निर्धारित हो जाती है। खन्तियों के बीच बीच में लम्बी व मोटी लकड़ियां जिन्हें सांधी कहते हैं क्रोस करते हुए लगा देते हैं ताकि धागा नीचे न सरके। खतो या सरागों को जमीन में लोहे का खूंटा गाड़कर उससे बांध देते हैं। आगे ताना करने के लिये यहां पर दो विधियां काम में ली जाती हैं।

प्रथम:- इस विधि में दो नलियों को दो लोहे की सरागों में पिरोकर सरागों को दो सकि सरकंडों में खोंस देते हैं। इस प्रकार सरकंडे में लगा हुआ नारा सूतधागा खुलने के साथ साथ घूमता जाता है। सरागों की नोक पर एक घुंडी होती है ताकि नली बाहर न निकल जाय। ताना करते समय लोहे की सरागों को पकड़कर एक खूंटे से दूसरे खूंटे तक दौड़ लगानी पड़ती है।

द्वितीय :- इस विधि में एक झाल या ढढ्ढर में एक साथ बहुत सारी अधिकतम १०० तक नलियां लगा देते हैं। प्रत्येक नली या नारी में से धागे का एक छोर निकालकर उसे हत्थे में से पास करके प्रथम खंती से बांध देते हैं। इस प्रकार जितनी नलियां ढढ्ढर में होती हैं उन सबका एक-एक छोर खती से बंधा होता है वह सारे तार हत्थे में से होकर गुजरते हैं। अब एक व्यक्ति ढढ्ढर को लेकर चलता है व दूसरा हत्थे को हाथ में लेकर घूमता है व अपनी गिनती के अनुसार सांधी में होकर धागे को बिछा देता है।

जब ताना पूरा हो जाता है तब जहां जहां सांधी रहती है वहां वहां सरई पहना दी जाती है जिसे सर पहनाना कहते हैं। सांधी के दोनों ओर एक एक सर डालकर दोनों सरों के किनारों को आपस में सूत से बांध देते हैं ताकि वे गिरे नहीं।

ताना उठाने के लिए दो आदमी चाहिए। दोनों आदमी दोनों खूंटों से ताना निकालकर दोनों ओर दो लम्बी, गोल और चिकनी लकड़ी लगाते हैं ताकि सूत मिल न जाय। इसे सिरारा कहते हैं। सिरारा लपेटते समय सरई रखकर लपेटते हैं। सरई लगाने से लपेटने में कसाव रहता है। इस प्रकार दोनों ओर से ताना लपेटने पर लुंडी तैयार हो जाती है।
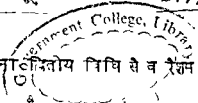
साधारणतया सूत का ताना द्वितीय विधि से व रेशम व जरी का ताना प्रथम विधि से किया जाता है।

सूत को साफ करने के लिये लुंडो को पुनः फैलाकर ब्रुश से साफ करना होता है इसे सज्जीकरण या पाण करना कहते हैं। यदि पहले मांड न दी गई हो तो सज्जीकरण करने से पूर्व बुआरी के द्वारा मांड लगाई जाती है। इसके लिये सहारे की आवश्यकता होती है अतः बांस का खंबा बनाकर उस पर बांस का टुकड़ा रखकर उसी पर ताना फैलाते हैं। बांसों को मांझा कहते हैं। ताना के दोनों किनारों पर जो खंबा होता है उसे खोबनी भी कहते हैं। यह रस्सी द्वारा खूंटे से बंधी रहती है। ताना फैलाने के बाद दो तीन आदमी तागे को छिटकाते हैं। यदि मांड न लगाई गई हो तो एक बर्तन में पतली मांड लेकर बुआरी के द्वारा उसे ताने पर छिड़कते हैं जिससे सारा सूत गीला हो जाता है। इसके बाद तुरन्त ही दो तीन व्यक्ति मिलकर ब्रुश करना चालू कर देते हैं। यदि मांड पहले लगादी गई हो तो तागा छिटकाने के पश्चात् धागे पर थोड़ा थोड़ा तेल व पानी छिड़ककर उसके बाद एक साथ दो तीन आदमी ब्रुश करने लग जाते हैं। ब्रुश लगाने का काम साधारणतया पुरुष ही करते हैं क्योंकि इसमें काफी ताकत की आवश्यकता होती है। इस कार्य के लिये सहकारिता भी बहुत आवश्यक होती है क्योंकि एक व्यक्ति ब्रुश लगाने व मांड देने का काम एक साथ आसानी से व कुशलता पूर्वक नहीं कर सकता। अतः दो तीन आदमी मिलकर ही इस काम को करते हैं। ब्रुश द्वारा साफ करने की क्रिया को धागे पर कूंचा द्वारा मांजना कहा जाता है। यह क्रिया जल्दी जल्दी करनी होती है जिससे कि धागे को नमी जाने से पूर्व उसे साफ कर दिया जाय। अन्यथा धागा सूखने पर उसके टूटने का डर रहता है। इस प्रकार मांजने से मांडी सूख जाती है। इस सम्पूर्ण क्रिया को पाण करना कहते हैं। इस काम में एक बड़े आकार का ब्रुश काम में लाया जाता है। जो कि विशेष रूप से बनाया जाता है। छोटे छोटे गांवों में जहां पर मसूरिया उत्पादन कुछ समय पूर्व ही प्रारम्भ हुआ है वहां यह ब्रुश उपलब्ध न होने के कारण उन्हें कोटा या कैथून से पाण करवाकर ले जाना पड़ता है। कोटा व कैथून में कुछ बुनकर ऐसे हैं जो केवल पाण करने का काम ही किया करते हैं।

पाण तैयार हो जाने पर सर की जगह पर बनिका (सूत) बांध देते

हैं। इससे उनकी सांधी बनी रहती है और लुंडी बनाने में भी सुविधा होती है। फिर पाई को लपेटते हैं। जिधर से पाई या पाण का मांजना आरम्भ करते हैं उधर से ही उसे लपेटना शुरू करते हैं। जब सारी पाई लपेटली जाती है तो दूसरी ओर का सिरा निकालकर सूत को ऐंठ देते हैं। इसे अंुठी करना कहते हैं। इस मुरेरे भाग को भी फिर लुंडी में घुसेड़ देते हैं।

अब ताना बिछाने के लिये सूत के धागे की लुंडी तैयार होती है। इसी प्रकार रेशम व जरी के धागों की लुंडी भी अलग अलग तैयार करली जाती है। लेकिन रेशम व जरी को मैं ताना करने के बाद सीधे लुंडी के रूप में लपेट लिया जाता है। इन्हें पानी में रखकर या छींटा देकर नम रखा जाता है।

४. बुनाई :-

(क) बय भरना व मांज करना :-

जब सब सामग्री तैयार होती है। सबसे पहले ताना बिछाना होता है। जितने सूत का मसूरिया तैयार करना होता है उसके अनुसार लुंडी तैयार होती है व पणी व राछ काम में ली जाती है। एक कार्य में एक पणी या पणी व दो राछ होती है। ~~एक पणी भरी भराई~~ जाती है अर्थात इसमें पहले से साधा धागा लगाया हुआ होता है। पणी ~~इसमें~~ हाथली में लगी हुई होती है और उसमें दोनों ओर धागे निकले रहते हैं। एक ओर के धागों को राछ में होते हुये तुर से बांध दिया जाता है। राछ दो होती हैं जिनमें क्रमसे एक धागा पहली राछ में ऊपर व उसके बाद का धागा दूसरी राछ में नीचे होकर निकाला जाता है। जिससे राछ को पगदम्बे के द्वारा ऊंचा नीचा करने पर एक मार्ग बन जाता है जिसमें से ढोटा फेंका जाता है। अब दूसरी ओर पणी में से निकले हुये धागों के साथ क्रमसे जैसा कपड़ा बुनना होता है उसके अनुसार क्रमसे सूत, रेशम व जरी की लुंडिया खोलकर उनमें से एक एक धागा लेकर मुर्री लगाते हुये उसे पणी के धागे के साथ जोड़ दिया जाता है। सूत जोड़ते समय उन धागों को जिन पर रेशम व जरी जोड़नी होती है बाकी छोड़ दिया जाता है और पूरी चौड़ाई में सूत जुड़ जाने पर फिर रेशम का धागा और बाद में जरी जोड़ी जाती है। ~~सब-सबसे~~

सब धागे पूर्ण हो जाने पर तुर को घुमाकर नये जोड़े गये धागे तुर तक बाहर निकाल लिये जाते हैं। इसके बाद पाई का कुछ भाग फैलाकर बनिता को

बाए सरई या कामड़ी पलना देते हैं । एक ओर से कामड़ी फंसाकर दूसरी ओर से डोरा बांधते हैं । इससे बुनाई के समय जो धागा टूटता है उसका पता चल जाता है । जितनी लम्बी मांजः रखनी होती है उतनी दूरी पर एक लकड़ी लगाते हैं जिसे मंजनी या पाँसार कहते हैं । मंजनी रखकर मांज को उलटते हैं और इस प्रकार मंजनी बीच में पड़ जाती है । इसे अब चपनी कहते हैं । फिर इसके ऊपर एक चपटी लकड़ी रखते हैं । चपनी में दो रस्सियां बंधी रहती हैं जिन्हें गोत कहते हैं । मांज को बांधने के लिए एक लम्बी रस्सी होती है जिसके एक सिरे पर दो रस्सियां होती हैं जिनसे चपनी का गोला बांधा जाता है । रस्सी का दूसरा सिरा करघे के सामने गड़े खूंटे, जिसे महतरा या पनोठा कहते हैं, से मुड़ता हुआ जुलाहे के पास उसको बाईं ओर गड़े एक दूसरे खूंटे से बांध दिया जाता है जिसे रसोठा कहते हैं । इस प्रकार रस्सी से मांज तना रहता है और जुलाहा आवश्यकतानुसार इसी रस्सी द्वारा जो उसके बांई ओर रसोठे तक बंधी होती है मांज को कड़ा व ढीला करता है। शेष मांज की लुंडिया करके अलग टांक देते हैं और आवश्यकता पड़ने पर फैलाते हैं ।

मांज के नीचे बय या फणी के पास करघे के समानान्तर एक लकड़ी रहती है जिसे सरगोट कहते हैं, इससे मांई कुछ ऊंची रहती है अतः बुनाई भी सुविधा के साथ होती है । बुनाई के समय भक्न-(कपड़े) की चौड़ाई बराबर रहे इसके लिये दो लकड़ियों के किनारे पर नोकोला लोहा लगाकर उसे कपड़े के दोनों किनारों में फसा देते हैं । इन लकड़ियों का दूसरा किनारा इस प्रकार बंधा रहता है कि दोनों ओर तनाव रहे ।

(ख) कपड़ा बुनना :-

जब जुलाहा कपड़ा बुनने बैठता है।जहां पर जुलाहा बैठता है वहां नीचे एक गड्ढा होता है । दोनों राछों में से दो रस्सियां आती हैं जो बीच में पावदान से जुड़ी होती हैं और फिर दोनों पावदानों के दोनों किनारों से एक एक रस्सी आती है यह रस्सी या तो लकड़ी की बनी हुई पावड़ियों से जुड़ी होती है जिस पर जुलाहे के पैर रखे होते हैं या इसके नीचे गांठ लगाकर जुलाहा इसे अपने पैर के अंगूठे व तर्जनी के मध्य फंसा लेता है ।

इन पावड़ियों या अंगूठे से बन्धी रस्सी को ऊंचा नीचा करने पर इससे एक राछ ऊपर फिर दूसरी राछ ऊपर व पहली नीचे होती रहती है । इससे

प्रत्येक बार छोटा दौड़ने के लिये एक मार्ग बन जाता है। अब बुनकर सूत, रेशम व जरी जिन जिन का भी उपयोग करना होता है उनके लिये अलग अलग छोटे रखकर उनमें अलग अलग सूत, रेशम व जरी को तुली या नली जो पहले से भरकर रखी हुई होती हैं रख देता है अब जिस्क प्रकार का कपड़ा बुनना हो उसीके अनुसार क्रमसे छोटे चलाये जाते हैं। छोटा बायें हाथ से फेंकने पर उसे दूसरी तरफ दायें हाथ से पकड़ा जाता है व बायें हाथ से हाथली को अपनी ओर ठोका जाता है। जिससे धागा अपने स्थान पर आकर जम जाता है। यह ठोका हमेशा बराबर नहीं दिया जाता। जहां पर चार धागे एक साथ डालकर खत बनाना होता है ठोका जोर से मारा जाता है व जहां पर दो धागेडालकर केवल खत बनाने होते हैं ठोका धीरे से मारा जाता है। रेशम के धागे के बाद ठोका नहीं लगाया जाता है। फिर दुबारा दायें हाथ से छोटा फेंककरबायें हाथ से पकड़ लिया जाता है और दायें हाथ से हाथला को अपनी ओर खींचते हुये ठोका जाता है। इस प्रकार बुनाई होती रहती है।

ज्यों ज्यों बुनाई होती जाती है मांज छोटी होती जाती है, और दूसरी ओर बुनकर अपने पास की खूंटे की रस्सी को ढीला करता जाता है जिससे मांज भी ढीली होकर आगे खिसकती जाती है। बुनाहा बने हुये कपड़े को उसके आगे करघे के प्रथम भाग पर एक चौपहल लकड़ी जिसे तुर कहते हैं पर लपेटता जाता है। तुर को घुमाने के लिये इसके दाहिने ओर सूराख बने होते हैं इस सूराख में एक लकड़ी डालकर जिसे गिरदानक कहते हैं उसे घुमाते हैं जिससे बुना हुआ कपड़ा तुर पर लिपट जाता है।

जब पहली बार खोली गई लुंडी समाप्त हो जाती है यानि मांज का अन्तिम भाग फणी से थोड़ा ही दूर रह जाता है तो लुंडियाँ को खोलकर मांज को वापिस उतना ही लम्बा फैला दिया जाता है।

(ग) फूल पत्ती डालना :-

इसके लिये करघे के ऊपर एक प्रकार का उपकरण जिसे डॉबी कहते हैं व जेकड़ लगाना पड़ता है। डॉबी दो प्रकार की होती है प्रथम टेटीपु व द्वितीय टेपोड़। टेटीड़ डॉबी में छेद होकर डिजाइनें खुदी होती हैं और प्रत्येक छेद में एक धागा निकलता है। जिस प्रकार की डिजाइन अपर होती है और जितने नं० की

डोबी होती है उतने ही तारों पर कोटा बड़ा करके ऊपर बुटो डिजाइन डाली जा सकती है।

लेटोज डोबी में ऊपर केवल छेद होते हैं और उनसे धागे बंधे होते हैं जो नीचे ताने से राछ के पास सम्बन्धित होते हैं। जितने लेटोज की वह डोबी होती है उतने ही तारों पर उलटपुलट कर कोई सी भी डिजाइन बनाई जा सकती है। यहां पर डिजाइन बनाना बुनकर की कुशलता पर ही पूर्णत निर्भर होता है। इस प्रकार टेपीड डोबी से अधिक से अधिक ३० तार पर व लेटोज डोबी से १०० तार पर डिजाइन बन सकती है। इससे अधिक तारों पर डिजाइन बनाने के लिये जैकड़ काम में ली जाती है।

जैकड़ के द्वारा १०० से ५०० तारों तक पर एक साथ डिजाइन डाली जा सकती है। मसूरिया उत्पादन में केवल १०० से २०० नम्बर तक की जैकड़ काम में आ सकती है। पर केवल रेशम का मसूरिया बुनने पर ५०० नम्बर तक की जैकड़ भी काम आ सकती है।

मसूरिया में वस्त्रों की मांग अधिक होने और यह काम मेहनती होने के कारण बहुत कम किया जाता है। वर्तमान में लगभग के १० घरों पर फूल पत्ती डालने का काम हो रहा है। मसूरिया वस्त्र में चूंकि एक ही खत में १४ से १८ तार होते हैं अतः डोबी काम में लेना बहुत कठिन होता है। केवल जैकड़ काम में ली जाती है जिससे कि ५-६ खतों पर एक डिजाइन बन जाती है। इतने कम खतों पर डिजाइन बना सकना अत्यधिक लगन- कलापूर्ण, बारीक व मेहनती काम है जिसे यहां के लोग वैसे ही करना पसन्द नहीं करते।

<u>५. अन्तिम क्रियायें :-</u>

मसूरिया वस्त्रों में से कुछ को उपयोग में लाने से पूर्व दो और क्रियाओं में से होकर गुजरना पड़ता है। प्रथम इनकी धुलाई होती है जिसका एक मात्र स्थान कोटा है। यहां पर लगभग १० धोबी इस प्रकार के हैं जो इसकी धुलाई कर सकते हैं + और करते हैं। ऐसा कहा जाता है कि मसूरिया की जैसी धुलाई कोटा में होती है अन्य स्थानों पर नहीं हो सकती है। इसके लिये प्रयत्न भी किया गया है और कोटा का एक धोबी बीकानेर लेजाकर वहां पर उससे मसूरिया वस्त्र धुलाने का

प्रयत्न किया गया था परन्तु वह असफल रहा है। वहां पर धुले हुये वस्त्र लुंजे लुंजे हो गये और उनमें इतनी सफाई व चिकनाई न आ सकी जितनी कोटा में धोने पर आती है। यह यहां के पानी व चलकान्दे या काले कान्दे की मांड के अन्तर सम्बन्ध का प्रतिबोधन करता है।

इनके साथ ही छपे हुये कलात्मक वस्त्र पहनने की इच्छा रखने वाले उपभोक्ताओं के लिये बम्बई, जयपुर व दिल्ली में कम- मसूरिया थानों पर छपाई का काम किया जाता है। ~~और~~ इसके पश्चात् मसूरिया कपड़े से विभिन्न प्रकार के वस्त्र व अन्य मुख्यतया ~~व विभिन्न प्रकार के वस्त्र~~ साड़ियां बनाई जाती हैं। ये दोनों क्रियायें होना आवश्यक नहीं है। बिना धुलाई व छपाई के भी रंगीन साड़ियां व सादे थानों का प्रयोग भी किया जाता है।

६. प्रशिक्षण :-

(क) आवश्यकता :-

ज्ञान के व्यावहारिक प्रयोग के लिये प्रत्येक क्षेत्र में प्रशिक्षण पूर्ण आवश्यकता है। कला के क्षेत्र में इसका महत्त्व और भी अधिक बढ़ जाता है। भारत में परम्परा से कृषि उद्योग से लेकर मीनाकारी, नक्काशी, पच्चीकारी तक का प्रशिक्षण घरों पर ही पारिवारिक व जातीय सम्बन्धों के आधार पर सामान्यतया मिलता रहा है।

मसूरिया उत्पादन एक अत्यधिक बारीक एवं पर्याप्त कलापूर्ण कार्य है। इसमें प्रारम्भिक क्रियाओं के साथ साथ ही हर बार ढोंटा फेंकते हुये व ठोकते हुये सूत व रेशम के तारों की संख्या, बुनाई की मात्रा, खतों व खानों का स्पष्ट व समान आकार का बनना आदि पर पूर्ण ध्यान रखना आवश्यक होता है। जिसके लिये अनुभव के साथ साथ पर्याप्त प्रशिक्षण भी आवश्यक है। इसके साथ ही स्पष्ट खत व खन बनाते हुये विभिन्न प्रकार कौंधीकड़ियां, तोताने, पट्टे, फूल, पत्तियां, बेलें आदि डालना तो एक ऐसा कार्य है जो बिना पूर्ण प्रशिक्षण के हो ही नहीं सकता।

(ख) उपलब्धि :-

परम्परा से चली आई पद्धति के अनुसार ही मसूरिया बुनने का प्रशिक्षण नये बुनकर अपने पूर्वजों से यदि उनके यहां बुन रहा है और यदि नहीं तो फिर अपने सम्बन्धियों, जाति-बन्धुओं व मित्रों से उनके पास उनके घर पर जाकर प्राप्त कर रहे

हैं। सबसे प्रथम कोटा में यह बुनावट निकाली गई जिसे बून्दी वालों ने कोटा लाकर सीखा। बाद में जबकि यातायात के साधनों का विकास नहीं हुआ था समय समय पर जातीय या पारिवारिक ~~कार्यक्रम~~ कार्यों के कारण ये लोग कैथून जाते रहते थे। ऐसा कहा जाता है कि लगभग 60 वर्ष पूर्व प्लेग के समय बून्दी के नजुदुल्ला नामक बुनकर ने जिसका कि कैथून ससुराल था प्लेग के समय कैथून रुक जाने पर वहां अपने ससुराल वालों को मसूरिया बुनना सिखाया। इसी प्रकार कोटा व बून्दी के अन्य बुनकरों ने समय समय पर कैथून जाकर कुछ को सिखाया कुछ में रुचि पैदा की जिन्होंने स्वयं ही कोटा जाकर इसे सीखा और कुछ को वैसे ही जानकारी दी। कैथून में यह बुनावट सर्व प्रथम इसलिये गई व वहां पर विकसित हुई क्योंकि वहां के बुनकरों का कपड़ा बुनना आयका प्रमुख साधन था सहायक नहीं। केवल यही नहीं कैथून में बुनकरों की संख्या कोटा जिले में सर्वाधिक है। इसके अलावा उनके पास केवल 9 मील दूर कोटा का बाजार था जहां से आसानी से कच्चा माल प्राप्त किया जा सकता था व निर्मित माल बेचा जा सकता था। जिले के अन्य बुनकर केन्द्रों पर वहां के बुनकर स्थानीय मांग की पर्याप्तता, बाजार से दूरी व आवागमन की कठिनाइयों के कारण इसकी बुनाई सीखने की ओर अग्रसर नहीं हुये। कैथून से उत्पादित सभी प्रकार के कपड़ों का प्रमुख बाजार पहले से ही कोटा था जहां पर बाहुल्यता से मिलों का सस्ता सस्ता कपड़ा आने पर उसका सारा बाजार छीन गया और अन्ततः वहां के बुनकर साधारण कपड़ा बुनना छोड़कर मसूरिया बुनने लगे। जिसका बाजार अपनी विशेषताओं के कारण निरंतर बढ़ रहा था।

गत दस वर्षों में जबकि विकासशील भारत में यातायात के साधनों के विकास के साथ साथ मिलों का सस्ता सस्ता कपड़ा ग्रामीण बाजारों में पहुंचा तो वहां के बुनकरों को उसकी प्रतियोगिता के कारण न्यूनतम मूल्यों पर अपना कपड़ा बेचना पड़ा। गत 2-3 वर्षों में एक ओर तो मसूरिया कपड़ों की मांग बढ़ी दूसरी और विपणन सम्बन्धी कठिनाइयों के कारण परम्परागत मोटे कपड़े का उत्पादन असम्भव हो गया तो विभिन्न गांवों के बुनकरों ने कैथून में अपने सम्बन्धियों व मित्रों के पास जाकर मसूरिया बुनने का प्रशिक्षण लिया और वहां से सीखकर वापस अपने गांवों में दूसरों को सिखाया। बढ़ती मांग के कारण व्यापारियों व सेठियों ने भी अधिक से अधिक बुनकरों को प्रशिक्षित करने की ओर रुचि ली और उनके लिये

साधन व सुविधायें उपलब्ध की । सेठियों ने नये बुनकरों को प्रारम्भिक शिक्षा देकर व कोटा से तैयार की गई पाण लेजाकर बुनने को दी और उन्हें अपना कपड़ा बुनने के लिए बांध लिया । इसके लिए सेठियों द्वारा उपकरण व सज्जा भी बुनकरों को अपनी ओर से दी गई । इस प्रकार सेठियों ने बुनकरों को विपणन व वित्त-प्रबन्ध संबधि कठिनाइयों से मुक्त करके उन्हें मसूरिया बुनना अधिक से अधिक सीखने को प्रोत्साहित किया । वर्तमान में भी इसीप्रकार से प्रशिक्षण प्राप्त किया जा रहा है । सामान्यत: जुलाहा घराने में पैदा हुए व्यक्ति को इसे सीखने में ३ से ५ माह लगते हैं ।

(ग) कठिनाइयां :-

वर्तमान में जबकि एक ओर तो संयुक्त कुटुम्बप्रणाली व जातिय प्रेम ढीला होता जा रहा है और दूसरी ओर मांग को निरन्तर बनाये रखने के लिए बदलती हुई फैशन के अनुसार विभिन्न प्रकार की डिजाइनों के वस्त्र बुनने की आवश्यकता है प्रशिक्षण की वर्तमान पद्धति पर्याप्त नहीं है । ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता है जिन्हें मिलों व विभिन्न स्थानों पर चल रही आधुनिक ढंग की बुनावटों व डिजाइनों का ज्ञान हो जिससे वे उसे ध्यान में रखकर व अपने मस्तिष्क का उपयोग करके साधारण बुनावट के वैज्ञानिक ढंग से प्रशिक्षण के साथ साथ बदलती हुई फैशन के अनुसार बदलती हुई डिजाइनों के वस्त्रों के निर्माण का प्रशिक्षण दे सके व उपयुक्त आधुनिक उपकरणों व विधियों का उपयोग बता सके। वर्तमान में बदलती हुई फैशन के व मांग के अनुसार उत्पादन करने के लिए व्यापारी ही मार्ग दर्शन करते हैं । चूंकि व्यापारी इसके व्यवहारिक प्रशिक्षण से अभिज्ञ होते हैं,और न ही उनका ज्ञान तकनीकी क्षेत्र में इतना विस्तृत ही होता है,उनके द्वारा मार्गदर्शन अपर्याप्त व कठिनाइयों से परिपूर्ण होता है । बुनकर भी बढती हुई स्वार्थपरता की भावना के कारण कलात्मक कार्य का प्रशिक्षण औरों को देना पसन्द नहीं करते । इससे भी कला को जीवित रखने व विकास करने के लिए आधुनिक ढंग से प्रशिक्षण व निरन्तर मार्ग दर्शन की आवश्यकता है जो वर्तमान में बिल्कुल भी उपलब्ध नहीं है ।

(घ) सरकारी प्रयत्न :-

कोटा जिला में हाथ कर्घा उद्योग में आधुनिक ढंग से प्रशिक्षण के

क्षेत्र में सर्वप्रथम प्रयास द्वितीय योजना काल में सन् १९५८ व १९५९ में किया गयाथय कि बारां, इटावा, मांगरोल, शाहबाद एवं कैथून में कुटीर उद्योग विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत हाथ कर्घा प्रशिक्षण केन्द्र खोले गये । केवल कैथून के प्रशिक्षण केन्द्र पर एक कर्घा मसूरिया का भी १९६२-६३ में चलाया गया जिसपर २-३ व्यक्ति प्रशिक्षण ले रहे थे । परन्तु १ अप्रेल १९६३ से ये सभी प्रशिक्षण केन्द्र समाप्त कर दिये गये हैं । वर्तमान में कोटा में आदर्श हाथ कर्घा प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित है परन्तु वहां पर मसूरिया उत्पादन के प्रशिक्षण की कोई व्यवस्था नहीं है ।

(ङ.) सुझाव :-

प्रशिक्षण की सफलता प्रशिक्षकों की योग्यता, भावना एवं विद्यार्थियों में प्रशिक्षण प्राप्त करने की इच्छा व सुविधा पर निर्भर होती है । प्रशिक्षकों का चुनाव वर्तमान बुनकरों में से जो माध्यमिक शिक्षा प्राप्त हैं ~~उनमें~~ से किया जाना चाहिए । सर्व प्रथम तो कोटा या कैथून में एक मसूरिया हाथकर्घा वस्त्र बुनाई प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित किया जाना चाहिए जिसमें प्रशिक्षण प्राप्त करने वालों के लिए अच्छे तरीके की व्यवस्था होनी चाहिए । प्रशिक्षकों की व्यवस्था करने के लिए शिक्षित, अनुभवी व बुद्धिमान बुनकरों को चुनकर बाहर प्रशिक्षण के लिए भेजा जाना चाहिए जहां वे इस प्रौद्योगिकी को ध्यान में रखकर उसके अनुसार ज्ञान का अर्जन करें । यह प्रशिक्षण केन्द्र सरकार द्वारा संचालित होने की बजाय सहकारी संघ द्वारा संचालित होना चाहिए परन्तु उसके लिए सरकार को पर्याप्त अनुदान उस संघ को देना चाहिए । विद्यार्थियों को पर्याप्त वृत्ति दी जानी चाहिए जिससे वे घर पर बुनने से प्राप्त होने वाली ~~अनिश्चित~~ आजीविका को छोड़कर प्रशिक्षण के लिए आ सकें । इस दिशा में बुनकरों, व्यापारियों और सरकार सब को आपस में मिलकर सहयोग करना चाहिए क्योंकि यह सब ही के हित में है ।

प्रशिक्षण के लिए आदर्श तरीका यह होगा कि अध्याय द्वितीय में बताये गये अनुसार आदर्श बुनकर बस्ती स्थापित की जावे और उसमें ही एक प्रशिक्षक नियुक्त कर दियाजावे जो प्रत्येक स्तर पर प्रशिक्षण दे । सरकार द्वारा स्थापित केन्द्र साधारणतया अधिक सफलता प्राप्त नहीं कर पाते हैं क्योंकि उनमें ४०-५० रुपया मासिक वृत्ति दी जाती है जो उस आय से कम होती है जिसे वे बिना प्रशिक्षण प्राप्त किये ही घर पर काम करके प्राप्त कर सकते हैं । ज्ञान एवं

संकीर्ण मनोवृत्ति के कारण वे भावी लाभ को ध्यान में न रखकर तात्कालिक लाभ पर अधिक ध्यान देते हैं।

७. उत्पादन प्रक्रिया में आने वाली कठिनाइयां :-

कठिनाइयां किसी भी कार्य की उत्कृष्टता का द्योतक हो सकती हैं। अच्छा, विशिष्ट एवं ऊंचा कार्य करने में सदा अनेक बाधायें आती हैं। मसूरिया उत्पादन कलापूर्ण, एवं असामान्य हस्तशिल्प होने के कारण इसके उत्पादनकार्य में भी अनेक कठिनाइयां आती हैं। उनमें से कुछ प्राकृतिक हैं और कुछ मानवीय।

क. मानवीय कठिनाइयां :- सर्व प्रथम कठिनाई कार्य करने के समुचित एवं उपयुक्त स्थान का अभाव रहे है। बुनकरों के बसने रहने के मकान साधारणतया कच्चे व अंधेरे हैं। बुनाई का काम रहने के मकानों के एक भाग में ही किया जाता है। इससे अंधेरा रहने से धागे को जोड़ने व बुनाई में श्रम व समय बर्बाद होता है। इसके साथ ही कच्चे व बिना जाली की छोटी-छोटी खिड़कियों वाले होने से मिट्टी उड़ने, कंकर-पत्थर गिरने, चूहे काट देने आदि के कारण काफी कठिनाई होती है। कभी कभी तो मांज टूट जाती है जिससे वह कपड़ा आंशिक या पूर्ण रूप से ही खराब हो जाता है। बीच बीच में धागा टूट जाना तो सामान्य बात होती है जिसके कारण व्यर्थ ही उसे जोड़ने में काफी समय बर्बाद हो जाता है। वर्षाकाल में तो अंधेरे के कारण इन मकानों में कार्य करना पूर्णतः असम्भव होता है। मकानों में साधारणतया एक खिड़की होती है जो कि उस स्थान पर होती है जहां बैठकर बुनकर कपड़ा बुनता है। इस खिड़की में से जो साधारणतया बाहर के रास्ते से लगभग ५-६ फीट ऊंचा ऊंची होती है कंकर, पत्थर, पक्षी या कीड़े आकर कभी भी ताने को खराब कर सकते हैं।

मकान के अलावा ताना करने एवं सज्जीकरण के लिये लम्बा चौड़ा एवं समतल मैदान चाहिये जिसका कि भूमि की उपयोगिता बढ़ने के साथ साथ निरंतर अभाव होता जा रहा है। कोटा में इस प्रकार के स्थान का अभाव अधिक खटकता है जिससे गलियों व रास्तों में ही ताना करने को बाध्य होना पड़ता है या फिर शहर से बाहर काफी दूर जाना पड़ता है।

ख. प्राकृतिक :- वर्षाकाल बाधाओं से परिपूर्ण होता है। एक ओर नलियों में सूत चिपटकर या फूलकर खराब हो जाता है दूसरी ओर ताना करने व सज्जीकरण

के लिए छायादार स्थान नहीं मिलता । यहां तक कि लगातार झड़ी के दिनों में कई दिन तक बेकार बैठे रहना पड़ता है । ग्रीष्मकाल में भी इसी प्रकार समस्या आती है क्योंकि ताना करने व सज्जीकरण के लिए बाहर कड़कड़ाती धूप का ही एक मात्र आसरा लेना होता है ।

ङ-ड ८. अन्य संबन्धित समस्यायें :-

(क) प्रकाश :-

प्रकृति के निर्मूल्य उपहार के रूप में प्राप्त सूर्य-किरणों का प्रकाश दिन में तो बुनकरों को कार्य करने के लिए सुविधा प्रदान कर देता है परन्तु रात्रि में कार्य करने के लिए उन्हें भी कृत्रिम विश्व की शरण में जाना पड़ता है । सस्ती रोशनी उपलब्ध होने पर रात्रि का समय इधर-उधर गप्पें लगाने में बर्बाद न करके उत्पादन कार्य में प्रयुक्त किया जा सकता है । रात्रि में काम दिन में मौसमी कठिनाइयों के कारण होने वाली समय की बर्बादी का स्थानापन्न भी कर सकता है । इसके साथ ही रोशनी उपलब्ध होने पर वर्षाकाल में भी उत्पादन कर सकना सम्भव हो जाता है । इतना ही नहीं अंधेरे मकानों मे काम करने से आंखें खराब होती हैं उनकी भी रक्षा की जा सकती है । इसलिये आवश्यक है कि विद्युत की सस्ती रोशनी उपलब्ध की जावे । शोचनीय आर्थिक अवस्था कोटा व कैथून में जहां विद्युत उपलब्ध है उसका उपयोग करने में बाधक सिद्ध होती है । शेष स्थानों पर अभी तक विद्युत सुविधायें उपलब्ध नहीं हो पाई हैं ।

(ख) कलापूर्ण व बारीक काम :-

सामान्यतया बुनकरों का उद्देश्य केवल आय प्राप्त करना पाया जाता है । कला के विकास के प्रति उनकी रूचि कम है । कैथून में हस्तकर्घा प्रशिक्षण केन्द्र के प्रशिक्षक द्वारा १९५९ में १० कर्घों पर डोबी व २० पर जाला का काम चालु करवाया गया था जिससे क्रमश: साड़ी की किनार पर फूलपत्ती व बूंटियां और फूलदार चौकड़ी डाली जाती थी, परन्तु वर्तमान में केवल दो कर्घों पर डोबी का और २ कर्घों पर जाले का काम हो रहा है । इसी प्रकार बुनकर अधिक खाँ का कपड़ा बहुत कम बुनते हैं । साड़ी ३०० से ३५० खत तक की बुनी जा सकती है जो अधिक मजबूत और बारीक हो सकती है परन्तु इस ओर रूचि के अभाव में ९० प्रतिशत साड़ियां केवल

२०० और २२० खत को ही बुनी जाती है। सामान्यत: बिना विशेष प्रलोभन या दबाव के बुनकर बारीक व अधिक कलापूर्ण काम करना पसन्द नहीं करते हैं।

(ग) मितव्ययता :-

इसी प्रकार उत्पादन प्रक्रिया में श्रम विभाजन और सुधरे हुये तरीके काम में लेने से काफी मितव्ययता प्राप्त की जा सकती है। परन्तु अज्ञान के कारण ऐसा नहीं हो रहा है।

(घ) रंगाई एवं रूपांकन :-

साड़ियों में रंगीन सूत काम आता है व रूपांकन का काम किया जाता है। परन्तु उपयुक्त रंगाई गृह के अभाव में रंगा हुआ सूत ही बाहर से मंगाना पड़ता है और इसी प्रकार रूपांकन केन्द्र न होने से नये नये प्रकार के रूपांकित वस्त्रों का उत्पादन बहुत कम हो रहा है। केवल कुछ व्यक्ति ऐसे हैं जो घरों पर ही साधारण ढंग से रंगाई का काम करते हैं। इसी प्रकार सहकारी विभाग के अन्तर्गत एक डिजाइनर है जिसका कार्यक्षेत्र सम्पूर्ण कोटा जिला है। विस्तृत कार्यक्षेत्र होने से वह कहीं पर भी स्थायी रूपसे ठहर कर बराबर मार्ग दर्शन करते हुये डिजाइनिंग का सम्-प्रशिक्षण नहीं दे पाता।

(ङ) छपाई :-

वर्तमान में छपे हुये मसूरिया वस्त्रों की मांग निरंतर बढ़ रही है। कोटा में उत्कृष्ट कोटि की छपाई का प्रबन्ध न होने से यहां से मसूरिया थान बाहर जाकर दिल्ली बम्बई व जयपुर में छपाई का काम होता है और फिर वहां से उपभोग के लिये विभिन्न स्थानों पर भेजे जाते हैं। इस प्रकार व्यर्थ ही मध्यस्थों की लम्बी श्रृंखला में एक बड़ी कड़ी और जुड़ जाती है। इसलिये कोटा में ही सहकारी विभाग के प्रयत्नों द्वारा सहकारी समिति के अन्तर्गत या सहकारी समितियों के संघ के अन्तर्गत उच्च कोटि की छपाई का प्रबन्ध भी किया जाना चाहिये। यदि कोटा में ही उच्च कोटि की छपाई का प्रबन्ध हो जाता है तो इससे प्राप्त मितव्ययता के कारण मसूरिया उत्पादन की मांग में और भी अभिवृद्धि होगी। गत दो वर्षों से छपे हुये वस्त्रों की मांग अधिक होने से पुन: मसूरिया थानों का उत्पादन बढ़ गया है।

६. निष्कर्ष :-

निष्कर्षतः पक्के, हवादार व प्रकाशदायक मकानों, बाहर ताना व सज्जीकरण के लिये छायादार मैदानों व प्रकाश की सुविधा के अभाव में मसूरिया उत्पादन में बुनकरों को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। इसी प्रकार ज्ञान, प्रशिक्षण, रंगाई व रूपांकन की सुविधा एवं रुचि के अभाव में के कारण अधिक बारीक व कलापूर्ण कार्य बहुत कम हो रहा है। सरकार द्वारा भी इस दिशा में कोई प्रयत्न नहीं किये गये हैं। जबकि जयपुर, जोधपुर, चित्तौड़गढ़, बाड़मेर, टोंक, सवाईमाधोपुर आदि विभिन्न हस्तकला केन्द्रों पर सम्बन्धित कलाओं के सम्बन्ध में रूपांकन, उत्पादन एवं प्रशिक्षण केन्द्र हैं, कोटा क्षेत्र में यहां की एकमात्र दस्तकारी मसूरिया से सम्बन्धित किसी भी प्रकार का उत्पादन, प्रशिक्षण, रूपांकन केन्द्र एवं रंगाई गृह नहीं है।

अतः कला के विकास के लिये आवश्यक है कि कार्य करने के समुचित एवं अनुकूल स्थान, प्रशिक्षण, रंगाई, रूपांकन एवं प्रकाश की सुविधा उपलब्ध की जाये। इसके लिये आदर्श बुनकर बस्ती में सरकारी सहायता से रूपांकन व रंगाईगृह होना अधिक उत्तम होगा। इसके अलावा कोटा में एक रूपांकन व रंगाई गृह सहकारी संघ द्वारा भी, यदि इसका निर्माण हो जाये तो चलाया जा सकता है। इसी प्रकार आदर्श बस्ती के बीच के मैदान में पेड़ लगाकर या शेड लगाकर ताना एवं सज्जीकरण के लिये आदर्श सुविधायें उपलब्ध की जा सकती हैं। आदर्श बस्ती का रंगाईगृह व रूपांकन केन्द्र बस्ती के बाहर वालों के लिये भी कार्य कर सकता है। इससे मितव्ययता के साथ साथ कला का विकास भी अवश्यम्भावी है। परंतु आवश्यकता सरकार एवं बुनकरों में सहयोग की एवं सहकारिता का मार्ग अपनाने की है।

अध्याय : चतुर्थ
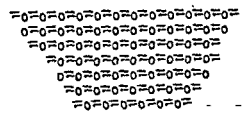
कच्चा माल, सहायक सामग्री, उपकरण एवं सज्जा

अर्थशास्त्र का चक्र उत्पादन से प्रारम्भ होकर उपभोग पर समाप्त हो जाता है। उत्पादन का अर्थ दो प्रकार से लिया जाता है। प्रथम भूमी, श्रम, पूंजी प्रबन्ध व साहस इन उत्पादन साधनों के सम्मिलित प्रयास से प्रकृतिदत्त सुविधा का उपयोग कर किसी नई वस्तु को पैदा करना और दूसरे विद्यमान वस्तु को रूप परिवर्तन कर अधिक उपयोगी बना देना। द्वितीय प्रकार के उत्पादन में मूल वस्तु कच्चामाल होतीहै जिसे उपकरण व साज सज्जा की सहायता से श्रम द्वारा रूप परिवर्तन कर इस योग्य बना दिया जाता है कि वह हमें अधिकतम संतुष्टि दे सके। मसूरिया उत्पादन भी इसी श्रेणी में आता है। इसमें सूत, रेशम, जरी व मर्सराइज्ड कच्चा माल होता है जिसे करघे व अन्य उपकरणों की सहायता से मानव श्रम इस रूप में प्रस्तुत कर देता है कि उसकी उपयोगिता कई गुनी बढ़ जाती है।

१. आवश्यक प्रकार एवं मात्रा :-

मसूरिया एक अत्यधिक महीन वस्त्र है जिसकी साड़ी का वजन न्यूनतम ८ तोला होता है। साथ ही इसे केवल थ्री शटल पिट लूम द्वारा ही बुना जा सकता है। अत: स्वाभाविक है कि इसमें विशिष्ट प्रकार का कच्चा माल, विशिष्ट प्रकार के उपकरण एवं साज सज्जा का प्रयोग हो।

(क) कच्चा माल :-

प्रारम्भ में मसूरिया केवल सूती धागों से बुना जाता था। इसके बाद साड़ियों, साफों, दुपट्टों आदि के पल्लों पर जरी का काम भी किया जाने लगा। इसके बाद धीरे धीरे थोड़ी थोड़ी मात्रा में उच्च कोटि का मसूरिया वस्त्र बुनने के लिए रेशम का प्रयोग भी होने लगा। युद्ध व युद्धोत्तर काल में उच्च कोटि के सूत के अभाव में रेशम के उपयोग को प्रोत्साहित किया जिससे सभी प्रकार के मसूरिया वस्त्रों में सूत के साथ साथ रेशम का प्रयोग भी किया जाने लगा। पहले सब मोटा व बारीक सूत काम लेकर बनाये जाते थे परन्तु रेशम काम लेना प्रारम्भ करने पर सा

रेशम व सूत काम लेकर बनाये जाने लगे। साड़ियों का प्रचलन बढ़ने पर जरी जो कि पहले केवल पल्लों पर काम आती थी चौकड़ियां, चौखाने व पट्टे सम्पूर्ण साड़ी की बुनाई में डालने के लिये काम आने लगी। जब साड़ियों के प्रचलन से मसूरिया वस्त्रों की मांग बढ़ी तो, मिलों में काम करनेके वालेके बुनकर वापिस लौटकर आने लगे और मसूरिया साड़ियों में भी उन्होंने फूल पत्ते व बेलें डालना चालू किया जिसके लिये फूला रेशम व मर्सराइज्ड का प्रयोग किया जाने लगा। इस प्रकार वर्तमान में थान में केवल सूत व रेशम, साड़ियों, पैचों और साफों में सूत रेशम व जरी तथा साड़ियों में सूत, रेशम, जरी, मर्सराइज्ड व फूला रेशम कच्चे माल के रूप में प्रयुक्त किये जाते हैं। (क) सूत :- इसमें ८० काउन्ट से २०० काउन्ट तक का सूत काम आता है। काउन्ट से तर्क होता है कि १० पौंड के एक पूढ़े में जितनी लच्छियां होती हैं व सूत उतने ही काउन्ट का कहा जाता है। २०० काउन्ट का सूत एक पौंड में १,६८,००० गज या ६० मील लम्बा होता है। इतना ऊंचा सूत वर्तमान में भी मुश्किल ही कोई सूती वस्त्र उत्पादक कारखाना प्रयुक्त करता हो, पर भारतीय वस्त्र उद्योग के लिये यह कोई विशेष बात नहीं है क्योंकि भारतीय १ पौंड रूई से २५० मील लम्बा धागा भी तैयार करते रहे जो कि वर्तमान हिसाब से लगभग ५०० काउन्ट का होना चाहिये।

किस प्रकार का सूत प्रयुक्त किया जाय यह उत्पादन की किस्म पर निर्भर होता है। जितने अधिक खत का कपड़ा तैयार किया जाता है उतने ही अधिक काउन्ट का सूत काम में लिया जाता है। साधारणतया पैचों में ८० व १०० काउन्ट का, साड़ियों में १०० व १२० काउन्ट का व थानों में १२०, १४० व १६० काउन्ट का सूत काम में लिया जाता है। वर्तमान में १८० व २०० काउन्ट का सूत बिल्कुल नहीं मिल रहा है और नहीं बुनकर इतने ऊंचे और बारीक सूत से काम करना पसन्द करते हैं अतः ३२०-३३० खत से अधिक का कपड़ा भी तैयार नहीं किया जा रहा है।

सूत, देशी व विदेशी दोनों प्रकार का आता है। देशी सूत अधिक से अधिक १२० काउन्ट का आता है। पर इसमें सफाई कम होती है इसलिये विदेशी सूत को ही अधिक पसन्द किया जाता है।

वर्तमान में चल रहे मसूरिया वस्त्रों के उत्पादन के लिये लगभग ५०,००० पौंड वार्षिक सूत की आवश्यकता है। इनके साथ ही विदेशी सूत की किस्म ऊंची रहने के लिये

समुचित मात्रा में उपलब्ध होना अति आवश्यक है ।

(ब) रेशम :-

सूत के पश्चात् दूसरा कच्चा माल रेशम होता है । मसूरिया उत्पादन में १३।१५ व २०।२२ काउन्ट का रेशम काम आता है । १३।१५ काउन्ट का रेशम अधिक महीन, साफ व उच्च किस्म का होता है । २०० से कम खत की बुनाई में साधारणतया २०।२२ काउन्ट का रेशम ही काम में लिया जाता है । २०० से २६० तक की बुनाई में ताणे में २०।२२ काउन्ट व बाणे में १३।१५ काउन्ट का रेशम काम लिया जाता है । इससे अधिक खतों की बुनाई में पूर्णत: १३।१५ काउंट का रेशम ही काम में लिया जाता है ।

साधारणतया साड़ियों में ताणे में २०।२२ काउन्ट का व बाणे में १३।१५ काउन्ट का काम आता है व थान मे १३।१५ काउन्ट का ही काम में लिया जाता है । पेचों में भी खतों के आकार के अनुसार दोनों प्रकार का रेशम काम आता है ।

रेशम भी देशी व विदेशी दोनों प्रकार का काम आता है पर विदेशी रेशम को जो जापानी होता है अधिक पसन्द किया जाता है क्योंकि यह अधिक साफ व चमकीला होता है ।

मसूरिया बुनकर उद्योग के लिये रेशम की मांग लगभग २०,००० पौंड वार्षिक है ।

(स) जरी :-

जरी कपड़े की बुनाई कढ़ाई में हस्तकला व दस्तकारी का कौशल दिखाने का एक सुन्दर माध्यम है । मसूरिया में ही नहीं वरन् अनेक प्रकार की साड़ियों एवं अन्य वस्त्रों में भी इसका प्रयोग होता है । जरी रेशम या सूत के तार पर स्वर्ण या रजत का झोल चढ़ाकर बनाईजाती है और इस प्रकार से दो प्रकार की स्वर्ण जरी व रजत जरी होती है । वस्त्रों में जरी का प्रयोग सामान्यत: पल्लों पर, किनार पर व बीच में बीजाना, चौकड़ी या पट्टा डालने में किया जाता है । वर्तमानमें कुछ बुनकर जरी के फूल व पत्ती भी डालते हैं । इसके अलावा टीसू साड़ी में जरी का प्रयोग सूत व रेशम की तरह सामान्य बुनावट में ही किया जाता है ।

मसूरिया वस्त्रों में २७००, २४०० व १४०० गजी जरी काम आती है ।

२७०० व २४०० गजी जरी रेशम पर व १४०० गजी जरी सूत पर की होती है। मसूरिया उत्पादन में सभी प्रकार की जरी काम ली जाती है पर रतन जरी केवल २७०० गजी ही काम आती है। २७००, २४०० व १४०० गजी जरी से यह तात्पर्य होता है कि इसमें प्रति तोला क्रमश: २७००, २४००,व १४०० गज लम्बा जरी का तार निकलता है। २७०० व २४०० गजी महीन व उच्च किस्म की और १४०० गजी निम्न किस्म की व मोटी होती है। ये सब प्रकार की जरी भारतीय ही होती हैं।

रतन जरी का प्रयोग मसूरिया उत्पादन में १६६२ में स्वर्ण नियंत्रण के पश्चात् प्रारम्भ हुआ था। पर इसका बुना कपड़ा अधिक आकर्षक न होने तथा इसके कुछ दिनों बाद काले पड़ जाने के कारण अब इसका प्रयोग लगभग नहीं के बराबर हो रहा है।

मसूरिया उत्पादन में जरी की वार्षिक मांग लगभग २००० पौंड है।

(द)मर्सराइज :-

मर्सराइज एक प्रकार का कृत्रिम सूती धागा होता है जिस पर रसायनिक क्रियाओं द्वारा रेशम के समान चिकनाहट व चमक पैदा कर- करदी जाती है। मसूरिया उत्पादन में इसका प्रयोग केवल साड़ियों में रेशम के स्थान पर फूल, पत्ती, बेलें आदि निकालने व चौड़ी किनार बनाने के लिये किया जाता है। यह विभिन्न रंगों में १०० व १२० काउंट का आता है जो कि मसूरिया उत्पादन में काम में लिया जाता है। यह रेशम से सस्ता व सूत से मंहगा होता है। अत: रेशम के स्थानापन्न के रूप में काम आता है।

(द) फुना रेशम :-

यह हल्की किस्म की रेशम होती है जो कि विभिन्न रंगों में आती है। इसका प्रयोग भी मर्सराइज के समान ही फूल पत्ती डालने, बेलें निकालने व साड़ियों की किनार बनाने में किया जाता है। इसका प्रयोग मसूरिया उत्पादन में केवल चार पांच वर्ष से हो रहा है। फुना रेशम पट्टा साड़ी में सामान्य बुनावट में ही इसका प्रयोग किया जाता है।

ब. सहायक सामग्री :-

उत्पादन प्रक्रिया के विभिन्न स्तरों पर कच्चे माल को साफ करने उत्पादन प्रक्रिया को सुविधापूर्ण बनाने व अन्तिम उत्पादन को आकर्षक व चमकीला

बनाने के लिये कच्चे माल के साथ साथ विभिन्न प्रकार के सहायक सामग्री का भी प्रयोग किया जाता है। मसूरिया उत्पादन में रंग, कोलो कान्दा एवं जल कान्दा, चांवल व तेल का सहायक सामग्री के रूप में प्रयोग होता है।

(१) रंग:- सूत रंगने के लिये मसूरिया उत्पादन में वैलोडोन, इण्डियन थ्रोम, नेफथाल व ब्रोन थाल चार प्रकार के रंग काम आते हैं। प्रथम दो प्रकार के रंगों के लाल रंग को छोड़कर शेष सब रंग पक्के होते हैं। और नेफथाल व ब्रोन थाल का केवल लाल रंग पक्का होता है। अतः लाल रंगने के लिये ब्रोन थाल या नेफथाल और शेष अन्य रंगों के लिये वैलोडोन या इण्डियन थ्रोम काम आता है। रंगीन सूत का प्रयोग केवल साड़ियों व डुपट्टों में किया जाता है। वैलोडोन व ब्रोनथाल भारतीय व नेफथाल व इण्डियन थ्रोम जर्मन उत्पादन हैं।

(२) जलकान्दा व कोलोकान्दा :- इनका प्रयोग लेई बनाकर सूत पर मांडी चढ़ाने के लिये किया जाता है। जब यह नहीं मिलते तो चावल की मांड द्वारा उन्हें स्थानापन्न कर लिया जाता है। इनकी मांड अधिक साफ, चिकनी व खूबसूरत होती है। यहां पर अधिकतर कोलोकान्दा ही काम में लिया जाता है।

(३) अन्य :- उपरोक्त सहायक सामग्रियों के अलावा बहुत थोड़ी मात्रा में कपड़े धोने का सोड़ा, हाइड्रो, कास्टिक सोडा, चावल की कणी व मीठा तेल काम आता है। कपड़े धोने के सोड़े का प्रयोग सूत पक्का करने में हाइड्रो व कास्टिक सोड़े का सूत रंगने में, चांवल की कणी का मांडी चढ़ाने में व तेल का प्रयोग पाण पर ब्रुश करते समय चिकनाहट बनाये रखने के लिये किया जाता है।

४. उपकरण एवं सज्जा :-

उपकरण एवं सज्जा मानव श्रम को कई गुना उत्पादक बना देते हैं और इसीलिये वृहत प्रमापीय उत्पादन में ही नहीं वरन् कुटीर उद्योगों में भी इनका अमा महत्व है। हाथ कर्घा बुनकर उद्योग में प्रमुख वस्तु कर्घा होती है जो कि विभिन्न उपकरणों को जोड़कर बनाया जाता है। हाथ कर्घे मुख्यतः निम्न पांच प्रकार के होते हैं।:-

पिटलूम :- (१) पिट - थ्रो शटल लूम

(२) पिट - फुलाई शटल लूम

फ्रेम लूम :- (३) फ्रेम - फ्लाई शटल लूम
(४) फ्रेम - फ्लाई शटल लूम विद हैन्ड वाउन्डिंग
(५) फ्रेम - फ्लाई शटल लूम विद ऑटोमैटिक वाउन्डिंग

मसूरिया उत्पादन में केवल पिट-थ्रो शटल लूम काम में आता है। इसमें जहां बुनकर बैठता है वहां एक गड्डा (पिट) होता है और बुनाई ढोटा (शटल) हाथ से इधर उधर चलाकर की जाती है। मसूरिया उत्पादन में काम आने वाले उपकरण एवं सज्जा को हम दो भागों में बांट सकते हैं :- प्रथम कर्घे पर काम आने वाले व दूसरे प्राथमिक क्रियाओं में काम आने वाले।

(क) प्राथमिक क्रियाओं में काम आने वाले :- सूत पक्का करना, मांडी चढ़ाना, रंगना, ताना करना, सज्जीकरण व नरी भरना प्राथमिक क्रियायें हैं। इनमें काम आने वाले प्रसाधन निम्न हैं, जिनका क्रमशः उपयोग निर्माण प्रक्रिया वाले अध्याय में बताया गया है।

१. सूत पक्का करना :- इसके लिए एक बर्तन की आवश्यकता होती है जो किसी धातु का अधिकतर पीतल का ही होता है।

२. मांडी चढ़ाना :- इसके लिये मांडी बनाकर पकाने के लिये एक बर्तन आवश्यक होता है जो किसी भी धातु का हो सकता है।

३. रंगाई :- रंगाई के लिए भी पीतल का बर्तन होना आवश्यक है। इसके अलावा एक मोटी लकड़ी व दो छोटी लकड़ियां भी आवश्यक होती हैं।

४. नली भरना :- इसमें नली, नरी, पुली, या गट्टक एवं चरखी दो चीजें काम आती हैं। मसूरिया उत्पादन में कारखानों में या तातों द्वारा बनाये हुये गट्टक काम न लेकर सरकी की नलियां बनाकर काम में ली जाती हैं। प्रति करघा लगभग १०० नलियां होनी चाहियें। बाने के लिए तो सामान्य रूप से सरकीकी नलियां ही काम में ली जाती हैं पर ताने के लिए कारखानों में बनी नलियां (बाबिन्स) भी काम में ले ली जाती हैं।

५. ताना करना :- मसूरिया उत्पादन में सामान्य रूप से जमीन पर ताना करने (ग्राउन्ड मिल वारपिंग) की विधि काम में ली जाती है। ताना करने के एक सेट में निम्न सामान उल्लसित मात्रा में आवश्यक होते हैं :-

नाम	मात्रा	नाम	मात्रा
१. लोहे की बड़ी - सलाखें या सरिया	३	२. खूंटे (लोहे के)	२
३. कामड़ियां	२०	४. सरई	२
५. पींजरा	१	६. हथुथा	१

६. सन्धी करण :- मांडी चढ़ाने के बाद जब पाण को फैलाकर ब्रुश से साफ किया जाता है तो निम्न उपकरणों की आवश्यकता होती है :-

१. ब्रुश या भेणयूं	१
२. सूत को रस्सी लगभग	१०० गज
३. कामड़ियां (१ फुट लम्बी)	२०

(ल) कर्घे पर काम आने वाले उपकरण :- विभिन्न प्रकार के उपकरण एवं सज्जा मिलकर कर्घा कहा जाता है । एक कर्घे पर सामान्य रूप से निम्नसामान उल्लिखित मात्रा में काम में लिया जाता है ।

नाम	मात्रा	नाम	मात्रा
१. राछ या बय	२	२. हाथळो	१
३. फणी या कंघी	१	४. तुर	१
५. बैंसरा	४	६. पौसार या तरगोट	२
७. लकड़ी के खूंटे (पनोला या मरतबा एवं रसोला)	२	८. डेरनो	१
६. लपकटो	१	१०. कामड़ियां	४
११. डंडाळो	१	१२. मैला	१
१३. ढेकळियां	४	१४. ढोटा (शटलस)	४
१५. तक भरनी	१	१६. रस्सा	२० गज (लगभग)

मसूरिया कपड़ा बुनने के लिये ३६ इंच से ८० इंच तक लम्बे तुर काम आते हैं । साधारणतया ३६ इंच व ४५ इंच पर भन्न-न पैचे व फाड़ियां या दुपट्टे बुने जाते हैं, ६० इंच और ६५ इंच पर थान और ७० इंच, ७२ इंच व ८१ इंच पर साड़ियां बुनी जाती हैं । विभिन्न प्रकार के कर्घों का प्रतिशत सामान्य रूप से निम्न प्रकार पाया गया है :-

विभिन्न प्रकार के कर्घों का प्रतिशत

कर्घों का परिमाण (साइज)	प्रतिशत
३६ इंच	१
४५ इंच	२
६० इंच	१०
६५ इंच	४
७० इंच	२
७२ इंच	८०
८१ इंच	१

कर्घे के परिमाण के आधार पर ही विभिन्न प्रकार की कंघी काम आती है। ७० व ७२ इंच के कर्घे में ६० इंच की, ६० व ६५ इंच के कर्घे में ५२ इंच व ५६इंच की व ३६ इंच व ४५ इंच के कर्घे में २५ व ३० इंच लम्बी कंघी काम आती है। अधिकतर ७२ इंच लम्बा तुर व ६० इंच लम्बी कंघी काम में ली जाती है।

२. उपलब्धि :-

क. कच्चा माल :-

मसूरिया उत्पादन में इसकी विशेषता है कि इसमें प्रयुक्त किया जाने वाला सम्पूर्ण कच्चा माल विनिर्माणि उद्योगों द्वारा पैदा किया जाता है। देशी सूत बम्बई व अहमदाबाद की मिलों में, रेशम काश्मीर, मैसूर व बैंगलोर में व जरी सूरत में निर्मित की जाती है। विदेशी, सूत जो लम्बे रेशे वाली रूई का बना होता है इटली, इंग्लैंड व अमेरिका से व रेशम जापान से आती है। मर्सराइज्ड भारतीय व विदेशी दोनों होता है और उन्हीं स्थानों से आता है जहां से सूत आता है। कृ[illegible] रेशम पूना से आती है।

कोटा क्षेत्र में मसूरिया उत्पादन में प्रयुक्त होने के लिये कच्चा माल सीधा उत्पादन गृहों से न आकर साधारणतया राष्ट्र के मुख्य व्यापारिक केन्द्रों बम्बई, कलकत्ता, अहमदाबाद, मद्रास, सूरत आदि से आता है। आवश्यक मांग का अधिकतम भाग लगभग ६५ प्रतिशत गैर सहकारी स्रोतों द्वारा पूरा किया जाता है। कोटा

के मसूरिया वस्त्रों के व्यापारी ही कच्चमाल उपरोक्त स्थानों से प्रतियोगी दरों पर अध्ययन कर मंगाते हैं। सूत व रेशम अनेक मिलों का व अनेक प्रकार का आता है इसलिये इसको प्रतियोगी दरों पर खरीदने के लिये विशेष अनुभव व ज्ञान की आवश्यकता होती है। व्यापारी कच्चे माल को विभिन्न शर्तों पर सीधा बुनकरों को या सेठियों को दे देते हैं। वर्तमान में इस प्रकार कच्चा माल देने की विभिन्न प्रचलित पद्धतियां निम्न हैं :-

१. सेठियों या बुनकरों को नकद मूल्य लेकर विक्रय।
२. बुनकरों को बुनाई के लिये मजदूरी के आधार पर देना।
३. सेठियों को बुनाई के लिए, मूल्य लगाकर इस शर्त पर देना कि निर्मित माल उन्हीं को बेचा जावेगा।
४. बुनकरों को मूल्य लगाकर इस शर्त पर विक्रय कि निर्मित माल उन्हीं को बेचा जावेगा।

इन पद्धतियों द्वारा विक्रय का अनुमानित प्रतिशत क्रमश: २०, १०, ६०व १० है।

सेठिया लोग इस प्रकार से लिये गये कच्चे माल को दो प्रकार से बुनकरों को देते हैं। प्रथम मूल्य लगाकर विक्रय और द्वितीय केवल बुनाई के लिये मजदूरी के आधार पर ~~विक्रय~~ देना। २० प्रतिशत माल ~~बेचने~~ मूल्य लगाकर दिया जाता है और अवशेष मजदूरी के आधार पर बुनाई के लिये बुनकरों को दे दिया जाता है। आजकल कुछ सेठिया जो धनवान हो गये हैं कच्चा माल सीधा मुख्य व्यापारिक-केन्द्रों से भी मंगा लेते हैं।

सहकारी क्षेत्र में केवल एक प्राथमिक सहकारी समिति (जिसका पंजीयन क्र० ८२७ है) है जो कच्चा माल सहकारी व सरकारी स्रोतों से प्राप्त करती है। इस समिति को जो कि अखिल भारतीय हाथ कर्घा वस्त्र विपणन सहकारी समिति एवं राजस्थान राज्य बुनकर सहकारी संघ लि० की सदस्य है केन्द्रीय रेशम परिषद द्वारा जापानी रेशम का कोटा दिया हुआ है और वस्त्र आयुक्त बम्बई समय समय पर विदेशों से आयात किया हुआ सूत भी नियंत्रित मूल्यों पर देते हैं। रेशम का वार्षिक कोटा ७२० किलो ग्राम है जो कि मांग का ५० प्रतिशत भी नहीं है। इसी प्रकार सूत भी मांग के अनुसार किस्म एवं मात्रा दोनों में नहीं मिल पाता है। अत: समिति

को भी अपनी कच्चे माल सम्बन्धी शेष आवश्यकता की पूर्ति बाजार में व्यापारियों से क्रय करके पूरी करनी होती है। समिति नकद विक्रय या मजदूरी के आधार पर बुनने के लिये कच्चा माल बुनकरों को दे देती है।

ख. सहायक सामग्री :-

सहायक सामग्री में लगभग सभी वस्तुयें सामान्य बाजार में मिल जाती हैं केवल कोली कान्दा एवं बल कान्दा जंगलों में पाया जाता है जिसे कुछ विशिष्ट व्यक्ति खोजकर लाते हैं और बुनकरों को बेच जाते हैं।

ग. उपकरण एवं सज्जा :-

इस श्रेणी में आने वाली वस्तुओं को उपलब्धि के दृष्टिकोण से हम पांच भागों में बांट सकते हैं :-

१. स्थानीय खाती द्वारा बनाये जाने वाले सामान,
२. बाहर से आयात किये जाने वाले
३. स्थानीय बाजार में उपलब्ध ,
४. विशिष्ट प्रकार के कारीगरों द्वारा बनाये जाने वाले
५. बुनकरों द्वारा बनाये जाने वाले।

(१) स्थानीय खाती द्वारा बनाये जाने वाले :-

चर्खे,लकड़ी के खूंटे (फनोला व रसीला), पींजरा, हत्था, तुर, तुर का खूंटा, हाथली, लड़सरी, बैसरा, पांसार, ढेलनी, कलपटी, डंडाली, फेला और ब्रुश के ऊपर का भाग खाती द्वारा बनाये जाते हैं। गांवों में यहां इनके बनाने वाले खाती नहीं हैं कोटा या कैथून से बनवाकर ले जाये जाते हैं।

(२) बाहर से आयात किये जाने वाले :-

पणी या कंघी और ढोटे (शट्लस) बनारस व चन्देरी में क्रमशः विशिष्ट प्रकार की लकड़ी व भैंस के सींग से कुटीर उद्योग के रूप में ही बनाये जाते हैं कोटा के थोक व्यापारी इन्हें मंगाते हैं जो सेठियों और बुनकरों को नकद या उधार बेच देते हैं।

(३) स्थानीय बाजार में उपलब्ध :-

सूत पक्का करने मांडी चढ़ाने व रंगने के बर्तन, लोहे की सलाकें व खूंटे, सरिल्यां, डिंगाघोड़ी, रस्सियां आदि सामान्य बाजार में उपलब्ध हो जाती हैं।

(४) विशिष्ट प्रकार के कारीगरों द्वारा बनाये जाने वाले :-

बुश व राछ विशिष्ट प्रकार के कारीगरों द्वारा बनाये जाते हैं। बुश या मैणयूं मोगदया घास की जड़ व जत के बनते हैं, जो बीकानेर की तरफ पाई जाती है जहां से इस कार्य के जाननेवाले मजदूर घास लेकर आते हैं और आवश्यकतानुसार दो सैर, ढाई सैर व तीन सैर के घास के बुश बुनकरों के घर पर ही बना देते हैं। इनकी मजदूरी = मुद्रा में एवं वस्तुओं के रूप में दोनों ही प्रकार से दी जाती है। जो कि परम्परा से बन्धी हुई है। राछ विशेष प्रकार के रेशम के सफेद मोटे धागों को विशिष्ट ढंग से दो बराबर की लकड़ियों पर गूंथ कर, जिसे भरना कहते हैं बनाई जाती है। इसके भरने वाले कोटा व कैथून में हैं जो ५० नये पैसे प्रति सैंकड़ा के हिसाब से मजदूरी के आधार पर इसे भरते हैं। कंघी के आकार व नम्बर के अनुसार ही राछ भरी जाती है।

(५) बुनकरों द्वारा बनाये जाने वाले :-

कामड़ियां, नरई, पादम्या और तक भरनी बुनकरों द्वारा ही आवश्यकतानुसार बनाली जाती हैं। कामड़ियां और सरई सरकियों की बनाई जाती है जो कि कोटा में मिलती हैं। पादम्या लकड़ी के गुट्टे या पत्थर को रस्सी में बांधकर बना लिया जाता है। तकभरनी जो कंघी में धागा पिरोने के काम आती है विशेष प्रकार की जड़ को बहुत बारीक छीलकर सुई की तरह बनाई जाती है।

सहकारी क्षेत्र से उपकरण व सज्जा उपलब्ध करने के लिये कोई प्रावधान नहीं है सहकारी समिति के लिये काम करने वाले बुनकरों को भी यह सब सामान अन्य बुनकरों की तरह ही खरीदना पड़ता है।

नये करघों पर जो कि सेठियों के प्रोत्साहन से प्रारम्भ हुये हैं राछ, हाथली, कंघी, तुर, बुश आदि मुख्य सामान सेठियों द्वारा दिये गये हैं। ऐसे करघों के मालिक सेठिया लोग हैं परंतु इन पर काम बुनकर अपने घरों में ही करते हैं।

३. सहकारिता व सरकारी योगदान :-

औद्योगीकरण, मशीनीकरण, विवेकीकरण, स्थानीयकरण, विद्युतीकरण एवं केन्द्रीयकरण के इस युग में देश की अर्थव्यवस्था एवं आदर्शों के अनुरूप दानवाकार विशाल प्रतापीय उद्योगों के समक्ष मानवाकार कुटीर उद्योगों को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये गुरु रूपी सरकार का वरद हस्त उन पर होना युग की महान

आवश्यकता है। भारत के संविधान में राज्य के नीति निर्देशक तत्वों में सरकार को सहकारिता के माध्यम से लघु एवं कुटीर उद्योगों का विकास करने का निर्देशन किया गया है एतदर्थ आज विभिन्न प्रकार की सुविधायें उपलब्ध कर सरकार इनका अस्तित्व अक्षुण्य बनाये रखने के लिये निरंतर प्रयत्नशील है।

वित्त प्रबन्ध एवं विपणन सम्बन्धी समस्याओं के साथ अनेक उद्योगों में जिनमें कच्चा माल और उपकरण या तो बाहर से आते हैं या उनकी यहां न्यूनता है पर्याप्त मात्रा में आवश्यकतानुसार प्राप्त होना भी एक बड़ी समस्या है। मसूरिया उत्पादन के लिये सूत एवं रेशम विदेशों से आता है जिसका आयात होना विदेशी-विनिमय के संक्रान्ति काल में स्वाभाविक रूप से कठिनाई से भरा पूरा है। इसी प्रकार स्वर्ण नियंत्रण के काल में इसके उपयुक्त स्वर्ण जरी प्राप्त करना भी जो कि उचित मूल्य पर प्राप्त हो सके एक कठिन समस्या है। विदेशों से आयात किया हुआ सूत व रेशम सहकारी समितियों को उपलब्ध करने के लिये सरकार द्वारा प्रावधान किया गया है। अखिल भारतीय हाथ कर्घा वस्त्र विपणन सहकारी समिति के सदस्यों को जिनका उत्पादन विदेशों में निर्यात किया जाता है केन्द्रीय सिल्क बोर्ड नियंत्रित दर पर जापानी रेशम देता है। मसूरिया उत्पादन में केवल सहकारी समिति नं०८२७ है जो कि अखिल भारतीय हाथ कर्घा वस्त्र विपणन सहकारी समिति की सदस्य है और जिसका उत्पादन विदेशों को निर्यात किया जाता है। इस समिति को ७२० किलो-ग्राम वार्षिक का जापानी रेशम का कोटा दिया गया है। इसी प्रकार नियंत्रित मूल्यों पर वस्त्र आयुक्त बम्बई द्वारा विदेशों से आयात किया गया सूत सहकारी समितियों को दिया जाता है। परंतु इस प्रकार से प्राप्त होने वाले सूत व रेशम की मात्रा कुल उद्योग की मांग का लगभग ३ प्रतिशत व सहकारी समिति की मांग का लगभग ५० प्रतिशत है। जरी उपलब्धकरने के लिये इस प्रकार का कोई प्रावधान नहीं है। एतदर्थ मसूरिया में प्रयुक्त किये जाने वाले सभी प्रकार के कच्चे माल में अधिकतर ऊंचे मूल्य देने पड़ते हैं। स्थानीय बाजार मूल्य व सहकारी समिति को प्राप्त होने वाली दर में लगभग २५ प्रतिशत का अन्तर होता है।

समिति नं० ८२७ के अलावा अन्य कोई सहकारी समिति उत्पादन के लिये कच्चे माल का प्रबन्ध नहीं करती है और न ही कोई अखिल भारतीय हस्तकर्घा वस्त्र विपणन सहकारी समिति की सदस्य ही है। अखिल भारतीय हाथ कर्घा परिषद

चल पूंजी के रूप में ऋण कच्चा माल क्रय करने और उपकरण व सज्जा क्रय करने के लिये देता है। परंतु वास्तव में उनका उपयोग इस हेतु नहीं होता। परिणामस्वरूप वर्तमान में भी लगभग ६५ प्रतिशत कर्घों पर कच्चे माल, उपकरण व सज्जा की पूर्ति व्यापारियों द्वारा की जाती है। जिससे लगभग २० प्रतिशत अधिक मूल्य लगता है। निष्कर्षत: इस क्षेत्र में जहां सरकारी योगदान व उसका उपयोग करने के लिये सहकारिता के माध्यम की बहुत बड़ी आवश्यकता है इनकी उपस्थिति केवल नाम मात्र की है।

४. कठिनाइयां :-

उचित मूल्य पर व समुचित मात्रा में उच्च कोटि का कच्चा माल प्राप्त करना मसूरिया उत्पादन के विकास में सबसे बड़ी कठिनाई है। सहकारी समिति को जिस मूल्य पर सूत व रेशम मिलता है उस मूल्य व बाजार मूल्य में काफी अंतर होता है जो निम्न तालिका से स्पष्ट है।-

नाम वस्तु मय किस्म		नियंत्रित मूल्य	बाजार मूल्य	प्रतिशत आधिक्य
रेशम (विदेशी)	१३।१५ काउन्ट:प्रति किलो	१५०)००	२००)००	३३ प्रति०
	२०।२२ काउन्ट:प्रति किलो	१४०)००	१८०)००	२८ प्रति०
सूत (विदेशी)	१०० काउन्ट : प्रति पौंड अ श्रेणी	८)५०	६)५०	१२ प्रति०
	१२० काउन्ट : प्रति पौंड ब श्रेणी	६)२५	१२)००	३० प्रति०
पुना रेशम (देशी)	१३।१५ काउन्ट:प्रति किलो	१५०)००	१७२)००	१५ प्रति०

इस प्रकार उच्च कोटि के कच्चे माल विशेष रूप से विदेशों से आयात किये जाने वाले सूत व रेशम के बाजार मूल्य व उचित मूल्य में काफी अंतर होता है। रेशम में तो लगभग एक तिहाई मूल्य अधिक लगता है। जरी तो उचित मूल्य पर प्राप्त होने का कोई प्रावधान ही नहीं है इसलिये सभी को बाजार से काफी ऊंचे मूल्यों पर लेनी पड़ती है।

स्वर्ण नियंत्रण (१९६२) के बाद एकदम जरी मिलना बंद हो गया था, उस समय तक स्वर्ण जरी ही मुख्यत: मसूरिया उत्पादन में काम में ली जाती थी।

इसके पश्चात् स्वर्ण जरी के स्थान पर रजत जरी का प्रयोग किया जाने लगा । इसमें प्रयुक्त की जाने वाली स्वर्ण जरी बनाने के लिये न्यूनतम २० कैरिट शुद्धता का स्वर्ण आवश्यक होता है जो कि स्वर्ण नियंत्रण के पश्चात् मिलना बन्द हो हो गया था। रजत जरी का प्रयोग मसूरिया उत्पादनों में बिल्कुल असफल रहा । न तो उपभोगताओं द्वारा इसे पसन्द ही किया गया और न ही दीर्घकाल तक इसके चमक वैसी की वैसी बनी रह सकी । फलत: बुनकरों द्वारा भारी मांग करने पर सूरत की जरी निर्माण फैक्ट्री को केन्द्रीय सरकार द्वारा २० से २४ कैरिट के सोने का कोटा दिया गया जिससे पुन: जरी प्राप्त होने लगी । परंतु अब इसका मूल्य बहुत बढ़ गया है स्वर्ण नियंत्रण से पूर्व २७०० गजी जरी का भाव ३)६० पैसे प्रति तोला था जो अब ५)२० पैसे प्रति तोला हो गया है और इसी प्रकार १४०० गजी स्वर्ण जरी का भाव ३) तोला था जो ४)३७ पैसे प्रति तोला हो गया है । इस प्रकार क्रमश: ४० प्रतिशत व ३५ प्रतिशत की वृद्धि जरी के मूल्यों में स्वर्ण नियंत्रण के कारण हो गई है । इतना होते हुये भी वर्तमान में जरी पर्याप्त मात्रा में नहीं मिलती है ।

भारतीय सूत अधिक से अधिक १४० काउन्ट का आता है जिसमें भी अधिकतर १०० व १२० काउन्ट का ही उपलब्ध हो पाता है जबकि उच्च कोटि के मसूरिया थानों के उत्पादन के लिये १६० से २०० काउन्ट तक का सूत आवश्यक होता है । वर्तमान में १८० व २०० काउन्ट का सूत बाजार में मिलना पूर्णत: दुर्लभ हो गया है सहकारी समिति को भी खादी आयुक्त द्वारा ८०, १०० व १२० काउन्ट का सूत ही दिया जाता है । इससे अधिक काउन्ट का सूत नहीं दिया जाता है । यह सूत भी मांग के अनुसार पर्याप्त नहीं होता है । इस प्रकार सभी प्रकार का कच्चा माल सहकारी समिति के सदस्यों एवं अन्य बुनकरों को वास्तविक एवं उचित मूल्यों से ऊंचे मूल्यों पर क्रय करना होता है जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव उत्पादन के मूल्यों पर पड़ता है और उसका प्रभाव उत्पादन की मांग एवं बाजार एवं अप्रत्यक्ष रूप से बुनकरों की मजदूरी पर भी पड़ता है । उद्योग के विकास के लिये कच्चे माल की पूर्ति का व्यवस्थित प्रबन्ध अति आवश्यक है ।

५. अनिश्चिततायें :-

मसूरिया वैसे तो एक विलासिता की वस्तु है परन्तु विदेशी विनिमय के अर्जन का एक अच्छा साधन होने से और हस्तशिल्प का उत्कृष्ट नमूना होने से यदि

इसका विकास आवश्यक है और समाजवादी समाज की स्थापना का लक्ष्य सामने है तो इसके लिये कच्चे माल की पूर्ति का समुचित प्रबन्ध करना अति आवश्यक है। नियंत्रित मूल्य पर कच्चा माल उपलब्ध होने पर या तो बुनकरों की आय २० से ३० प्रतिशत तक बढ़ सकती है या फिर उतना ही उत्पादन का मूल्य कम हो सकता है जो समग्र रूप से उत्पादन की मांग बढ़ाने में सहायक हो सकता है। उपलब्धि की कठिनाइयों के कारण ही वर्तमान में सारे उद्योग का नियंत्रण केवल ५ - ६ व्यापारियों के हाथ में केन्द्रित है, बुनकर तो केवल मजदूर मात्र रह गये हैं।

इसके लिए आवश्यक है कि प्रथम तो पर्याप्त मात्रा में उचित किस्म का सूत उचित मूल्यों पर सामान्य बाजार में उपलब्ध किया जाय या फिर सहकारी समितियों को उच्च कोटि के सूत का कोटा सदस्यों की संख्यानुसार दे दिया जाय। इसी प्रकार केन्द्रीय रेशम परिषद को भी रेशम का कोटा अधिक समितियों को देना चाहिये। सर्वोत्तम तरीका तो यह होगा कि एक ओर तो विदेशों से भारी मांग और दूसरी ओर कच्चे माल का विदेशों से आयात को देखते हुये ~~कच्चे-मजदूरतेय-हू~~ यहां एक निगम स्थापित किया जाना चाहिये जिसको कि उपरोक्त कच्चे माल का व इसके साथ साथ नियंत्रित मूल्यों पर जरी उत्पादक फैक्ट्री से जरी खरीदने का कोटा भी दिया जाना चाहिये। यह निगम नियंत्रित मूल्यों पर या तो बुनकरों को कच्चा माल बेचे या फिर सहकारी विक्रय केन्द्रों के लिये कच्चा माल देकर मजदूरी के आधार पर सहकारी समिति के माध्यम से बुनवाई का कार्य करे। इसके अलावा यदि यह सम्भव न हो सके तो अखिल भारतीय हाथ कर्घा वस्त्र विपणन सहकारी समिति एवं राजस्थान राज्य बुनकर सहकारी संघ को ही कोटा दिया जाना चाहिये जो कि सहकारी क्षेत्र में मसूरिया के सबसे बड़े ग्राहक हैं। वे यहां से कपड़ा बुनकर वापिस भेजने की शर्त पर कच्चा माल यहां की समितियों को भेज दें। यदि यहां पर भी सहकारी समितियों का संघ संगठित हो जाता है, जैसाकि पहले बताया गया है तो उन्हें अपना कच्चा माल उसी को भेजना चाहिये जो कि सदस्य समितियों के सदस्यों से बुनवाकर वापिस उन्हें भेजदें। बुनाई की मजदूरी चुकाने के लिये रिजर्व बैंक की योजना के अन्तर्गत चालू पूंजी ऋण दिया जाना चाहिये। यदि निगम स्थापित किया जाय तो उसमें राज्य का भी स्वामित्व होना चाहिये जिससे वित्त सम्बन्धी कठिनाइयां उसके सामने न आवें। इस प्रकार एक ओर तो सस्ती दर पर कच्चा माल

मिलेगा दूसरी और सहकारी समितियां कोटा से प्राप्त होने वाले कच्चे माल को बाजार में बेचकर अनुचित लाभ प्राप्त न कर सकेंगी और परिणामस्वरूप बुनकरों की आय में पर्याप्त वृद्धि होगी ।

जरी की पर्याप्त पूर्ति के लिये आवश्यक है कि जरी उत्पादन करने वाली एक फैक्ट्री और स्थापित की जावे। यह फैक्ट्री कोटा में स्थापित करना अधिक उपयुक्त हो सकता है क्योंकि यहां पर एक और तो पर्याप्त बाजार है दूसरी ओर सस्ती जल विद्युत सुविधा व औद्योगिक सम्पदा में निर्मित भवन उपलब्ध हैं । इससे जरी उचित मूल्यों पर व पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो सकना सम्भव हो सकेगा ।

निष्कर्ष :-

हस्तकर्घा उद्योग में विशिष्ट इस उद्योग में सज्जा व उपकरण बहुत कम मूल्य व सरलता से उपलब्ध होने के कारण उनके सम्बन्ध में कोई विशेष समस्या नहीं है परन्तु आवश्यक किस्म का कच्चा माल समुचित मात्रा में उपलब्ध होने की जितनी अधिक कठिनाई इस उत्पादन के सम्बन्ध में है शायद ही अन्य किसी कुटीर उद्योगीय उत्पादन के सम्बन्ध में हो । उद्योग के विकास व बुनकरों को शोषण से मुक्त करने के लिये सरकार को सहकारिता के माध्यम द्वारा उचित एवं आवश्यक किस्म का कच्चा माल पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध कराने के लिये शीघ्र ही सक्रिय कदम उठाने चाहियें । हाल ही में फरवरी ६४ के प्रथम सप्ताह में उद्योग मंत्री, राजस्थान सरकार द्वारा कैथून यात्रा के समय बुनकरों को कैथून में एक निगम स्थापित कर उसके माध्यम से कच्चा माल उपलब्ध कराने का आश्वासन दिया गया है आशा है उद्योग मंत्री का यह आश्वासन सरकारी लालफीताशाही के बावजूद भी शीघ्र ही कार्यरूप में परिणित हो बुनकरों के एवं इस हस्तकला के उत्कृष्ट नमूने के उत्थान में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे सकेगा ।
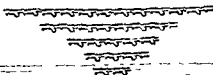
अध्याय पंचम

पूंजी, विनियोग एवं वित्त प्रबन्ध

१. वित्त प्रबन्ध का महत्व एवं स्वरूप :-

वित्त प्रबन्धन राष्ट्र के भौतिक एवं वैतिक, आन्तरिक एवं वाह्य साधनों का प्रवर्तक है। उद्योग का स्वरूप ही वित्त प्रबन्ध के प्रकार एवं मात्रा का स्वरूप निर्धारित करता है। और इसके साथ ही वित्त प्रबन्ध भी उद्योग के स्वरूप का निर्धारण करता है। इस प्रकार उद्योग और वित्त प्रबन्ध अन्तर्सम्बन्धित घटक हैं जिनका समन्वय ही अस्तित्व का मार्ग है।

वित्त प्रबन्ध का स्वरूप उद्योग के स्वरूप पर निर्भर है। मसूरिया उत्पादन के लिये कच्चा माल सैकड़ों एवं हजारों मीलों दूर-दूर देश व विदेश से आता है। उपकरण एवं सज्जा के कुछ भाग भी देश के दूरस्थ भागों से आते हैं और इसका बाजार देश के समस्त बड़े बड़े नगर व अमेरिका, इंगलैंड आदि उन्नत राष्ट्र हैं। ऐसी अवस्था में प्रत्येक चरण पर बड़ी मात्रा पर मध्यमकालीन वित्त प्रबन्ध आवश्यक है। वित्त प्रबन्ध की समुचित सुविधा के बिना न तो कच्चा माल उपकरण व सज्जा ही प्राप्त हो सकती है और न ही उत्पादन का दूरस्थ प्रदेशों में विपणन हो ही सकता है। इसके विपरित सीधा साधा परम्परागत श्री सरल पिट लूम प्रयुक्त होने से स्थायी पूंजी की आवश्यकता तुलनात्मक रूप से अन्य हाथ कर्घा उद्योगों से कम ही है।

२. आवश्यक मात्रा :-

मसूरिया उत्पादन में कच्चे माल व अन्य आवश्यक सामग्री की पूर्ति, कर्घे व अन्य आवश्यक उपकरणों की उपलब्धि व मजदूरी चुकाने के लिये पूंजी की आवश्यकता पड़ती है। मजदूरी चुकाने और कच्चा माल व अन्य सामग्री क्रय करने केलिये चल एवं कर्घे की स्थापना व अन्य उपकरण खरीदने के लिये स्थिर पूंजी की आवश्यता होती है।

क, स्थिर पूंजी :- स्थिर पूंजी की आवश्यकता ८०) रुपये से १३०) के बीच तक प्रति

इकाई आवश्यक होती है। नीचे ऐसे तीन उत्पादन समूहों के सम्बन्ध में स्थिर पूंजी की मात्रा बताई गई है जिनमें क्रमशः साड़ी, थान और पैंचे बुने जाते हैं।

स्थाई पूंजी विनियोग विवरण

नाम उपकरण	आवश्यक मात्रा	लागत (रूपयों में) साड़ी बनाने वाले वर्ग के लिए	थान बनाने वाले वर्ग के लिए	पैंचे बनाने वाले वर्ग के लिए	औसत	अनुमानित आयु (वर्ष)
१. तुर	१	१८)	१६)	१०)	१२)	२५वर्ष
२. कंघी	१	१३)५०	१२)५०	७)	११)	६माह
३. हाथडो	१	६)[illegible]	५)५०	५)	५)५०	५वर्ष
४. कनपट्टी	१ जोड़ा	१)	१)	१)	१)	२वर्ष
५. पांसार	१ जोड़ा	१)५०	१)२५	१)	१)२५	२ वर्ष
६. राछ	१ जोड़ा	१६)	१५)	१०)	१४)	६माह
७. बैंसरा	४	४)	३)७५	३)	३)५०	२वर्ष
८. लकड़ी के खूंटे	२	२)	२)	२)	२)	१०वर्ष
९. रस्सा	२० गज	६)	६)	६)	६)	५ वर्ष
१०. फैला	१	२२)	२)	२)	२)	१ वर्ष
११. कड़सरी	१	४)	४)	४)	४)	२ वर्ष
१२. ढोटा	४	१२)	१२)	१२)	१२)	५ वर्ष
१३. चरखी	१	७)	७)	७)	७)	५ वर्ष
१४. बुरा या भैणायु	१	२५)	२५)	२५)	२५)	१० वर्ष
१५. पोंजरा	१	२)५०	२)५०	२)५०	२)५०	५वर्ष
१६. ल्यूधा	१	४)५०	४)५०	४)५०	४)५०	५ वर्ष
१७. लोहे की सलाईं	५	५)	५)	५)	५)	२० वर्ष
१८. कामड़ियां	१००	५)	५)	५)	५)	१ वर्ष
१९. रस्सियां आदि		१०)	१०)	१०)	१०)	५ वर्ष
२०. अन्य विविध सामान		५)	५)	५)	५)	
		१५०)	१४५)	१२७)	१३८)	

उपरोक्त उपकरणों के अलावा जिस कर्घे पर फूल पत्ती डालने का काम भी होता है १जेकड़ या जाला लगाना पड़ता है जिसकी औसतन लागत ५०) होती है।

ये सारे उपकरण साधारणतया बुनकर बाजार से नहीं लेते हैं बल्कि कुछ खुद ही बनाते हैं। इसी कारण से कुल स्थिर पूंजी लागत १२५ रू० से २००रू० तक होने पर भी बुनकरों को नया संस्थान लगाने के लिए न्यूनतम ८०)रू० से काम चल जाता है। इसीलिए पहले इनकी स्थिर पूंजी आवश्यकता ८० से १३० रू० तक बताई गई है।

उपरोक्त मूल्य लगभग एवं अनुमानित एवं औसतन मूल्य हैं। वस्तु की किस्म के अनुसार मूल्यों में थोड़ा बहुत अन्तर हो सकता है। इतना सामान एक बिल्कुल नये कर्घे के लिए जिसके साथ ताना व सज्जीकरण का काम भी किया जावे आवश्यक होता है। जहां पर ताना व सज्जीकरण का काम नहीं किया जाता है अर्थात ताना मजदूरी देकर कोटा या कैथुन से करवा कर ले जाया जाता है केवल ५०)रू० की आवश्यकता रह जाती है। इसी प्रकार बुनाई परम्परागत धन्धा होने से भी एक साथ सारी चिजें खरीदने की आवश्यकता नहीं होती है। तुर, फणी, राछ ढोटा, हाथली और बुश मुख्य सामान हैं जिनकी लागत कुल लागत का लगभग ६० प्रतिशत होती है। एक बुनकर को जो पहले से बुनाई का काम करता आ रहा है मसूरिया उत्पादन प्रारम्भ करने के लिए ८०)रू० पर्याप्त होते हैं (स्थिर पूंजी के रूप में) क्योंकि शेष सामान जो पुराना चला आ रहा है वही काम आ जाता है।

ब. चल पूंजी :-

मसूरिया उत्पादन में चल पूंजी पर विचार प्रति कर्घे के हिसाब से किया गया है। एक कर्घे पर औसतन प्रति माह ५० गज कपड़ा बुन लिया जाता है जिसके लिए औसतन ४० तोला रेशम, ३ पोण्ड सूत और कपड़े की किस्म को अनुसार जरी की मात्रा आवश्यक होती है। बाजार मूल्य के अनुसार सूत व रेशम का मूल्य लगभग १२०) होता है। जरी व मर्सराइज्ड का प्रयोग भिन्न भिन्न प्रकार की साड़ियों में भिन्न भिन्न मात्रा में किया जाता है। औसतन सामान्य चौकड़ी की साड़ी में १० तोला जरी प्रति माह आवश्यक होती है जिसका मूल्य लगभग ५०) होता है। इस प्रकार प्रति कर्घे पर कच्चे माल

के लिए औसतन रूप से १७०)रु० चल पूंजी के रूप में आवश्यक होती है। ५० गज कपड़ा बुनने की मजदूरी भी औसतन ११०)रु० लगती है। इस प्रकार प्रति कर्घा चल पूंजी की आवश्यकता २८०) रु० होती है। क्योंकि कम से कम २ पाण के लिए वित-प्रबन्ध की व्यवस्था होनी चाहिए, जिससे कि एक पाण का माल बनते ही दूसरी पाण का काम चालु किया जा सके, और फिर उस माल को बेचकर खाली पाण के लिए कच्चा माल खरीदा जा सके।

वर्तमान में कोटा जिला में लगभग १५०० कर्घे व सम्पूर्ण कोटा क्षेत्र में लगभग १८०० कर्घे मसूरिया उत्पादन में लगे हुए हैं जिसके लिए क्रमशः ४ लाख एवं ५ लाख रूपये की चल पूंजी की आवश्यकता होती है। वर्तमान संगठन के अनुसार व्यापारी के पास कच्चा माल आने व उसका कपड़ा बुनकर आजाने और बिक जाने में औसतन दो माह लग जाते हैं। इस प्रकार मेरे अनुमान के अनुसार सम्पूर्ण मसूरिया उत्पादन के लिए कोटा क्षेत्र में १० लाख रूपये की पूंजी लगी हुई है।

३. वित्त-प्रबन्ध की प्रचलित प्रणाली :-

(क) चल वित्त-प्रबंध :-

वित्तप्रबन्ध की व्यवस्था इस बात पर निर्भर करती है कि बुनकर किस रूप में उत्पादन कर रहे हैं। मसूरिया उत्पादन में संलग्न बुनकरों में से कुछ स्वयं के लिए बुनते हैं, कुछ मध्यस्थों के लिए बुनते हैं, कुछ सहकारी समिति के लिए बुनते हैं और शेष सब सेठियों के लिए बुनते हैं। विभिन्न वर्गों में आने वाले बुनकरों का प्रतिशत निम्न प्रकार है :-

क. सेठियों के लिए बुनने वाले — ६० प्रतिशत
ख. व्यापारियों के लिए बुनने वाले — ११ प्रतिशत
ग. स्वयं के लिए बुनने वाले — १९ प्रतिशत
घ. सहकारी समिति के लिए बुनने वाले — ८ प्रतिशत

अलग अलग स्थानों पर इस प्रतिशत में काफी भिन्नता पाई जाती है कैथून में ८५ प्रतिशत सेठियों के लिए बुनने वाले, १० प्रतिशत सहकारी समिति के लिए बुनने वाले और केवल ५ प्रतिशत स्वयं के लिए बुनने वाले हैं। कोटा में अधिकतर बुनकर स्वयं के लिए व व्यापारियों के लिए बुनने वाले हैं। इसका कारण यह है कि प्रथम तो यहां के बुनकर काफी समय पूर्व से यह कार्य कर रहे हैं अतः

उनका व्यापारियों से अच्छा सम्बन्ध है दूसरे वे लोग अधिकतर पेचे बुनते ६ . . . लिए कचे माल के लिए कम पूंजी की आवश्यकता होती है । कोडसूंवा में जहां पर कैथून के बाद गत ५-६ वर्षों से मसूरिया बुना जा रहा है ४० प्रतिशत बुनकर कोटा के व्यापारियों के लिए बुन रहे हैं और शेषसब सेठियों के लिए ही बुनते हैं । इसके अलावा अन्य सब स्थानों पर मसूरिया उत्पादन गत २-३- वर्षों में ही प्रारम्भ हुआ है अतः वहां पर लगभग सभी बुनकर सेठियों के लिए ही बुनते हैं । नीचे दी गई तालिका में विभिन्न स्थानों पर मसूरिया बुन रहे कर्घों की संख्या व उनका विभिन्न वर्गों में विभाजन दिया गया है ।

<u>विभिन्न प्रकार से उत्पादन में संलग्न कर्घों की संख्या</u>

(स्थाननुसार)

उत्पादन केन्द्र	कुल कर्घों की संख्या जो मसूरिया उत्पादन में सलग्न है ।	विभिन्न वर्गों के लिए उत्पादन कर रहे कर्घे			
		व्यापारियों के लिए	सेठियों के लिए	स्वयं के लिए	सहकारी समिति के लिए
१. कैथून	११००	५०	८५०	९०	११०
२. कोटा	१५०	४०	३०	८०	--
३. कोडसूवां	५०	२०	३०	--	--
४. सीसवाली	६०	६०	--	--	--
५. बपावर	५०	--	५०	--	--
६. मांगरोल	४०	४०-	४०	--	--
७. सुल्तान पुर	३५	--	३५	--	--
८. बड़ौद	४	--	४	--	--
९. अन्ता	४	--	४	--	--
१०. मण्डावरा	३	--	३	--	--
११. अन्य स्थान (मोरपा, पलायथा व मण्डाना)	४	--	४	--	--
योग	१५००	१७०	१०५०	१७०	११०
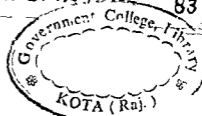
क. सेठियों के लिये उत्पादन :-

कोटा के अन्दर बड़े पैमाने पर मसूरिया उत्पादन का प्रसार होने के साथ साथ इस पद्धति का विकास हुआ है। सेठियों की वित्त सम्बन्धि आवश्यकता की पूर्ति कोटा के व्यापारी उन्हें कच्चा माल उधार देकर व कुछ नकद रकम अग्रिम देकर करते हैं। जिनके पास अपने स्वयं के पर्याप्त कोष हैं वे उनमें ही अपना वित्त प्रबंध कर अपना काम करवाते हैं। सेठिया लोग कच्चा माल व बुनाई की मजदूरी, पूर्ण या आंशिक रूप से अग्रिम देकर बुनकरों को वित्त सम्बन्धी ~~कल~~ समस्या से मुक्त कर देते हैं। इतना ही नहीं समय समय पर आवश्यकता पड़ने पर बुनकर उनसे नकद उधार भी लेलेते हैं। जिस पर यदि अल्पकालिक हो तो कोई ब्याज भी नहीं लिया जाता। इस सुविधा के बदले में बुनकर अपने सेठ से बंध जाता है जिससे वह किसी अन्य के लिये उत्पादन नहीं कर सकता। व्यापारियों से साख सुविधा प्राप्त करने के बदले में सेठिया लोग भी व्यापारियों से बंधे होते हैं। कैथून में बुनकर स्वयं आकर कच्चा माल ले जाते हैं और निर्मित माल दे जाते हैं। परन्तु अन्य गांवों में साधारणतया सेठिया लोग स्वयं जाते हैं और आगे के लिये कच्चा माल देकर निर्मित माल ले आते हैं।

ख. व्यापारियों के लिये उत्पादन :-

परम्परा से चली आई यह पद्धति कोटा व कैथून में आज भी विद्यमान है। इसमें बुनकर स्वयं व्यापारियों की दुकान पर आकर कच्चा माल और आवश्यकता हो तो अग्रिम भी ले जाते हैं। माल तैयार हो जाने पर वे स्वयं ही दुकान पर आकर दे जाते हैं और अग्रिम काटकर अपनी मजदूरी ले जाते हैं। यह पद्धति भी पूर्णतः सेठियों के माध्यम से उत्पादन वाली पद्धति की तरह ही है। इसमें भी व्यापारी बोहरे की तरह काम करते हैं क्योंकि वे बुनकरों को आवश्यकतानुसार समय समय पर अग्रिम व ऋण देते रहते हैं।

ग. स्वयं के लिये उत्पादन :-

जिस प्रकार पांचों अंगुलियां समान नहीं होती, उसी प्रकार बुनकरों की आर्थिक स्थिति भी भिन्न भिन्न है। कुछ बुनकर जिन्हें हम मध्यम श्रेणी का कह सकते हैं वे अपनी वित्त सम्बन्धी आवश्यकता की पूर्ति स्वयं के साधनों से कर लेते हैं।

साधारणतया ये नकद मूल्य देकर व्यापारियों या सेठियों से कच्चा माल खरीद लेते हैं और फिर निर्मित माल भी नाप तोल करके किसी भी व्यापारी या सेठिया को बेच आते हैं। ये पद्धति मुख्य रूप से कोटा में व अत्यल्प मात्रा में कैथुन में प्रचलित है।

घ. सहकारी समिति के लिए उत्पादन :-

आवश्यकता से बहुत ही कम मात्रा में विद्यमान यह पद्धति मुख्य रूप से कैथुन में प्रचलित है। केवल एक सहकारी समिति जिसका पंजीयन क्रमांक ८३१ है उत्पादन एवं विपणन के वित्त प्रबन्ध का कार्य कर रही है। समिति कच्चा माल सरकारी एजेन्सियों व व्यापारियों से नकद मूल्य देकर प्राप्त करती है। समिति को सूत खादी आयुक्त बम्बई से व रेशम केन्द्रीय रेशम परिषद से प्राप्त होता है। इसके लिये समिति को कुछ राशि अग्रिम के रूप में भेजनी पड़ती है और शेषराशि का भुगतान माल आने पर करना पड़ता है। इसके अलावा कच्चे माल सम्बन्धी शेष आवश्यकता की पूर्ति समिति भी व्यापारियों से नकद या उधार क्रय करके पूरा करती है। इसी प्रकार समिति का लगभग सम्पूर्ण विक्रय सहकारी विक्रय केन्द्रों द्वारा होता है जो कि देश के विभिन्न नगरों में स्थापित हैं। समिति को पहले बना माल साख के आधार पर वहां भेजना पड़ता है और फिर कुछ समय बाद उसकी राशि प्राप्त हो जाती है। परन्तु आश्चर्य का विषय है कि समिति ने चल ~~स्थिर-~~ पूंजी सम्बन्धी आवश्यकताओं ~~के लिए सम्बन्धी आवश्यकताओं~~ की पूर्ति के लिये किसी प्रकार का ऋण सरकारी एवं सहकारी स्रोतों से नहीं ले रखा है। समिति के अध्यक्ष, मंत्री एवं कोषाध्यक्ष ही अपने कोषों से वित्त प्रबन्ध करते हैं। सेठियों के समान ही समिति भी मजदूरी देकर कपड़ा बुनवाती है। अग्रिम प्रथा सहकारी समिति में भी विद्यमान है।

इस प्रकार उत्पादन के लिये चल पूंजी का वित्त प्रबन्ध विभिन्न स्रोतों से हो जाता है, परन्तु विपणन के लिये माल अन्ततः व्यापारियों के पास आकर एकत्रित होता है। कच्चा माल व उपकरण मंगाने और उत्पादन के विपणन के लिये आवश्यक सम्पूर्ण वित्त की व्यवस्था, सहकारी समिति को छोड़कर, व्यापारी ही करते हैं। मांग के आधिक्य के कारण साधारणतया विपणन में साख सुविधा देने की ~~बहुत अधिक~~ कोई आवश्यकता नहीं पड़ती है। स्थानीय विक्रय सामान्यतः नकद ही होता है।

(आ) स्थिर पूंजी प्रबन्ध :-

कर्घे व अन्य उपकरणों के लिये आवश्यक स्थिर पूंजी का वित्त प्रबन्ध नड़ले से मसूरिया बुनने वाले व्यक्तियों द्वारा स्वयं के साधनों से ही किया जाता है। गत कुछ वर्षों में कैथून व अन्य गांवों में जहां पर उत्पादन सेठियों की प्रेरणा से प्रारम्भ हुआ है वहां कर्घे व अन्य उपकरणों की व्यवस्था भी सेठियों द्वारा ही की गई है। लगभग ७५ प्रतिशत कर्घे स्वयं बुनकरों के हैं और शेष २५ प्रतिशत कर्घे सेठियों द्वारा स्थापित किये गये हैं। जहां कर्घे सेठियों के हैं कार्यशील पूंजी का प्रबन्ध भी आवश्यक रूप से उन्हीं के द्वारा किया जाता है। और इस प्रकार बुनकर उनके कठोर अंकुश में जीते हैं।

४. सरकार एवं सहकारिता :-

भारत राष्ट्र का निर्माण कुटीर उद्योगों के विकास का प्रभात लेकर आया। भारतीय संविधान के अनुच्छेद ४३ ने राज्य के नीति निर्देशक तत्वों में राज्य को ग्रामीण क्षेत्रों में सहकारिता के आधार पर कुटीर उद्योगों के विकास करने का निर्देश किया जो कि गांव के पुराने संगठित जीवन के पुनरुत्थान और उसकी शक्ति को पुन: प्रकट करने का एक मात्र सशक्त साधन है। तदनरूप औद्योगिक नीतियों में भी-बेरोजगार, आय व धन की समानता एवं पूंजी व कुशलता के प्रभावपूर्ण उपयोग को ध्यान में रखकर इनके समन्वित विकास पर जोर दिया गया। कुटीर - उद्योगों के नेता खाद्य कर्घा उद्योग से विकास कार्यक्रम प्रारम्भ हुये और बढ़ते चले गये। योजना बद्ध विकास के अन्तर्गत केन्द्रीय व राज्य सरकारों ने हाथ कर्घा व अन्य कुटीर उद्योगों को विविध प्रकार से सहायता कर विकास करने की प्रेरणा प्रदान की। फलत: वर्तमान में सहकारिता के माध्यम से हस्तकर्घा उद्योग को वित्त प्रबन्ध के सम्बन्ध में विविध सुविधायें प्राप्त हैं। उनमें से वे सुविधायें जिनका उपयोग मसूरिया उत्पादन के सम्बन्ध में हो सकता है निम्न है :-

१. अंश पूंजी के लिए अखिल भारतीय हाथ कर्घा परिषद से ऋण :-

(क) नई सहकारी समिति स्थापित करने के लिये अंश के मूल्य का ८३½ प्रतिशत प्रत्येक सदस्य को ।

(ख) क के अनुसार सदस्यों का भाग लेने पर अंश पूंजी बढ़ाने के लिये १०० प्रतिशत ऋण ।

-(ग)यह ऋण दो वार्षिक किश्तों में ४½ प्रतिशत ब्याज सहित लौटाना होता है । पहली किश्त रकम प्राप्ति के ठीक १ वर्ष बाद देनी पड़ती है ।

शीर्ष सहकारी समितियों को अंश पूंजी का ५१ प्रतिशत ऋण दिया जाता है जो ४½ प्रतिशत वार्षिक ब्याज सहित १२ से २० वार्षिक किश्तों में देय होता है ।

२. कार्यशील पूंजी के लिये ऋण :-

रिजर्व बैंक योजना के अनुसार सूती कपड़ा बुनने वाली समितियों को ३००) प्रति कर्घा व रेशमी कपड़ा बुनने वाली समितियों को ५००) प्रति कर्घा ऋण दिया जाता है । हस्तकर्घा सहकारी उद्योगशाला को ४००) प्रति कर्घा के हिसाब से ऋण दिया जाता है । यह ऋण १० वार्षिक किश्तों में जो ऋण प्राप्ति के दो वर्ष बाद से प्रारम्भ होती है ब्याज सहित चुकाना पड़ता है । शीर्ष सहकारी समितियों को दस पूंजी के ५ गुने तक ऋण दिया जाता है, जो कि ६ समान किश्तों में चुकाना होता है । प्रथम पांच वर्षों के लिये इस पर कोई ब्याज नहीं लिया जाता है ।

३. विक्रय केन्द्र खोलने के लिये सहायता :-

सहकारी समितियों को विक्रय केन्द्र खोलने पर दुकान किराया, फर्नीचर कर्मचारी एवं अन्य खर्चों की पूर्ति के लिये प्रथम वर्ष में १ लाख से नीचे आबादी वाले शहर में ४०००)रुपये, १ लाख से ~~नेनै~~ ऊपर आबादी वाले शहर में ६०००)रुपया और अन्तर्राज्यीय विक्रय केन्द्र खोलने पर १५,०००)रुपया या वास्तविक व्यय जो भी कम हो सहायता के रूप में दिया जाता है । दूसरे, तीसरे व चौथे वर्ष में क्रमश: इसका ७५ प्रतिशत, ५० प्रतिशत और २५ प्रतिशत या वास्तविक व्यय जो भी कम हो सहायता के रूप में दिया जाता है ।

उपरोक्त सहायता प्राप्त करने के लिये अधोलिखित मात्रा में विक्रय होना आवश्यक है ।यदि केन्द्र इस उल्लखित मात्रा में विक्रय न कर सकें तो वास्तविक व्यय या उसका जो अनुपात होगा उसी अनुपात में सहायता दी जाती है ।

निर्धारित अनुदान प्राप्ति के लिये आवश्यक न्यूनतम विक्रय मात्रा

	जहां पर १ लाख से कम जनसंख्या हो	जहां १ लाख से अधिक जनसंख्या हो	अन्तर्प्रान्तीय विक्रय केन्द्र
	रुपये	रुपये	रुपये
प्रथम वर्ष	१५,०००)	३६,०००)	१,००,०००)
द्वितीय वर्ष	२०,०००)	४५,०००)	१,२५,०००)
तृतीय वर्ष	३०,०००)	५५,०००)	१,५५,०००)
चतुर्थ वर्ष	३५,०००)	६५,०००)	२,००,०००)

४. उत्पादन सामग्री के लिये ऋण एवं अनुदान :-

क. ताना करने का फ्रेम या पिंजरा :- ७५ प्रतिशत अनुदान व २५ प्रतिशत ऋण

ख. कंघी :- ७५ प्रतिशत अनुदान व २५ प्रतिशत ऋण । (अधिकतम ५०) रुपया)

ग. डोबी :- ७५ प्रतिशत अनुदान व २५ प्रतिशत ऋण (अधिकतम ५०) रुपया)

घ. लोहे या बांस की हाथलो के लिये :- ७५ प्रतिशत अनुदान व २५ प्रतिशत ऋण (क्रमशः २०) व १०) अधिकतम)

ङ. राछ :- २०) प्रति जोड़ा ।

५. सामान्य सुविधा केन्द्र बनाने के लिये अनुदान :-

सहकारी समितियों को इस सम्बन्ध में निम्न कार्यों के लिये निम्न प्रकार से सहायता दी जाती है ।-

(क) काम करने के सामान्य शेड बनाने के लिये जिसमें ५० करघे आ सकें - -१०० प्रतिशत ऋण

(ख) एक रंगाई गृह व १०० करघों के लिये स्थान वाला काम करने का सामान्य शेड बनाने के लिये --- १०० प्रतिशत ऋण ।

यह ऋण प्राप्ति के एक वर्ष बाद से १० समान वार्षिक किश्तों में देय होते हैं ।

६. बुनकर बस्ती :-

बुनकर बस्ती के निर्माण के लिये सहकारी समितियों को १।३ भाग अनुदान के रूप में व २।३ भाग ऋण के रूप में दिया जाता है । इसमें प्रत्येक घर ऐसा बनाया जाना चाहिये जिसकी लागत भूमि की लागत सहित ३६००) हो ।

इससे अधिक व्यय होगा तो वह बुनकर को ही श्रम या नकद के रूप में देना होता है। यह राशि निम्न प्रकार से प्राप्त होती है :-

(क) योजना के स्वीकार हो जाने पर -- -- ------ ऋण का १।३ भाग।
(ख) नींव के स्तर तक निर्माण हो जाने पर ------- ऋण का १।३ भाग।
(ग) छत तक निर्माण हो जाने पर -------------- ऋण का १।३ भाग।
(घ) मकान के पूरे हो जाने पर -------------- अनुदान का १।३ भाग।
(ङ) खर्चे के अंकेक्षित खाते पेश कर देने पर --- अनुदान का २।३ भाग।

यह ऋण, ऋण की प्रथम किश्त देने के एक वर्ष पश्चात् से ४½ प्रतिशत वार्षिक ब्याज सहित २५ समान वार्षिक किश्तों में देय होता है।

बुनकर बस्ती के पास निम्न योजनायें स्थापित करने के लिये भी सहायता दी जाती है :-

(क) प्रयोगात्मक बुनाई केन्द्र :- स्थायी खर्च का २।३ भाग ऋण व १।३ भाग अनुदान के रूप में और प्रथम वर्ष के चालू खर्च का ५० प्रतिशत अनुदान स्वरूप दिया जाता है। यह ऋण १० समान किश्तों में चुकाना होता है।

(ख) छपाई केन्द्र :- पूंजीगत व्यय का २।३ भाग ऋण व १।३ भाग अनुदान के रूपमें दिया जाता है। यह ऋण भी १० समान किश्तों में चुकाना होता है।

(ग) रंगाई गृह :- १. रंगाई गृह के आकार के अनुसार भूमि के लिये ८००), ५००) व ३५०) का ऋण १० वर्ष के लिये।
२. निर्माण के लिये १० वर्ष का ऋण।
३. स्थायी खर्चे के लिये १०० प्रतिशत अनुदान।
४. चालू खर्चे के लिये प्रथम, द्वितीय, तृतीय व चतुर्थ वर्ष में क्रमशः १०० प्रतिशत, ७५ प्रतिशत, ५० प्रतिशत व २५ प्रतिशत अनुदान।
५. चालू पूंजी के लिये ५ वर्ष का ब्याज रहित ऋण।

उपरोक्त योजनाओं में से चालू पूंजी के लिये ऋण की व्यवस्था को छोड़कर बाकी सब योजनाओं के लिये ऋण एवं अनुदान का प्रबन्ध अखिल भारतीय हाथ कर्घा परिषद द्वारा किया जाता है। कार्यशील पूंजी के लिये ऋण रिजर्व बैंक केन्द्रीय सहकारी बैंक को सौंप देता है जिन्हें वह ऋण के रूप में कुछ ऊंची दर पर सहकारी

समितियों को दे देता है।

कार्यशील पूंजी के लिये ऋण प्राप्त करने के लिये बुनकर सहकारी समिति को निर्धारित प्रपत्र में प्रबन्धक समिति के प्रस्ताव के साथ आवेदन पत्र सम्बन्धित पंचायत समिति के उद्योग विस्तार अधिकारी या विकास अधिकारी के मार्फत सहायक पंजीयक सहकारी समितियां को भेजना पड़ता है, जो कि उन्हें केन्द्रीय सहकारी बैंक के पास भेज देता है। केन्द्रीय सहकारी बैंक के पास इस प्रकार के ऋण के वितरण के लिये रिजर्व बैंक से प्राप्त कोष होते हैं जिनमें से वह ऋण प्रदान करता है।

अन्य ऋण एवं अनुदान प्राप्त करने के लिये भी इसी प्रकार से निर्धारित प्रपत्र पर आवेदन पत्र सहायक पंजीयक के पास पहुंच जाता है। सहायक पंजीयक, (सहकारी समितियां) आवेदन पत्र को जांच करके व यह देखकर कि सब नियमितताये पूरी हो गई हैं उसे संयुक्त संचालक हाथ कर्घा राजस्थान को भेज देता है। संयुक्त संचालक ही विभिन्न योजनाओं को स्वीकृति देता है। कभी कभी पंचायत समिति द्वारा भी आवेदन पत्र अधीनस्थ उद्योग एवं सहकारिता विस्तार अधिकारी से जांच करवाकर सीधे संयुक्त संचालक को भेज दिये जाते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय संविधान के नीति निर्देशक तत्वों का अनुसरण कर प्रान्तीय व केन्द्रीय सरकारें विभिन्न प्रकार से हाथ कर्घा उद्योग विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत वित्तीय सहायता सहकारिता के माध्यम से देने को तत्पर है। परंतु महत्वपूर्ण बात यह है कि इन साधनों एवं सुविधाओं का उपयोग कहां तक हो रहा है?

मसूरिया उत्पादन में उपयोग :-

मसूरिया बुनकर उद्योग का उद्गम एवं विकास ही इस ढंग से हुआ है कि इसमें अब तक सहकारिता को काम करने का मौका ही नहीं मिला है। मसूरिया बुनकरों के नाम से अभी तक कोई सहकारी समिति नहीं बनी है। जितनी भी सहकारी समितियां स्थापित हुई हैं वे सब सूती वस्त्र उत्पादन के लिए प्रबन्ध एवं नियंत्रण के समय नियंत्रित मूल्यों पर सूत प्राप्त करने के लिये संगठित की गई थी। इसीलिये जो भी ऋण मिले हैं वे सब सूती वस्त्र उत्पादन के लिये ही दिये गये हैं। सभा नं० ८२७ को भी जो कि केवल मात्र एक समिति है जो कि मसूरिया उत्पादन में

संलग्न है, चालू पूंजी के लिये 3000) रुपया ऋण मिला था जो कि १००) रुपया प्रति सदस्य के हिसाब से उसी समय सदस्यों में बांट दिया गया था । वर्तमान में सारा वित्त प्रबन्ध समिति के अधिकारी अपने कोषों से करते हैं और विभिन्न रूपों में समिति को होने वाले लाभ का अधिकांश भाग स्वयं ले लेते हैं । किसी भी प्रकार का मसूरिया वस्त्र विक्री केन्द्र सहकारी आधार पर अभी तक नहीं खोला गया है जिससे इस हेतु सहायता प्राप्त करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता । कोटा, कैथून, मांगरोल आदि कुछ स्थानों पर सहकारी हाथ कर्घा वस्त्र क्रय विक्रय केन्द्र हैं परन्तु उन पर भी मसूरिया वस्त्रों का क्रय विक्रय नहीं होता है । इसी प्रकार मसूरिया उत्पादन हेतु उत्पादन सामग्री प्राप्त करने एवं रंगाई गृह व सामान्य सुविधा केन्द्र खोलने के लिये भी किसी प्रकार की सहायता एवं ऋण का उपयोग नहीं किया गया है ।

कोटा जिला में केवल मात्र मांगरोल में बुनकर बस्ती के निर्माण हेतु १,२०,०००) रुपया ऋण एवं ६०,०००) रुपया अनुदान के रूप में देने की स्वीकृति प्राप्त हुई है और उसमें से ऋण का २।३भाग प्राप्त भी हो चुका है । परंतु यह ऋण एवं अनुदान उसी समय मिला था जबकि वे बुनकर मोटा कपड़ा बुनते थे, वर्तमान में भी मांगरोल में लगभग ५०० बुनकर हैं उनमें से केवल ३० - ४० ही मसूरिया उत्पादन में संलग्न हैं । इसके अलावा मसूरिया उत्पादन के मुख्य केन्द्र कैथून में भी बुनकर बस्ती निर्माण हेतु ऋण एवं अनुदान दिये जाने की योजना पर विचार चल रहा था । परंतु गत वर्ष चीनी आक्रमण के समय संकटकालीन स्थिति होने से यह योजना अभी स्थगित कर दी गई है । इस प्रकार मसूरिया उत्पादन के क्षेत्र में इस प्रकार से प्राप्त होने वाले अनुदान एवं ऋणों का कोई उपयोग अभी तक नहीं किया गया है ।

अन्ततः यही कहा जा सकता है कि एक ओर जहां सरकार द्वारा हाथ-कर्घा उद्योग में वित्त प्रबन्ध के लिये विभिन्न प्रकार की सुविधायें उपलब्ध हैं मसूरिया उत्पादन में सहकारी व सरकारी क्षेत्र का अभी तक वित्त प्रबन्ध में कोई प्रत्यक्ष एवं महत्वपूर्ण योगदान नहीं हैं ।

<u>सुविधाओं के उपयोग न होने के कारण :-</u>

किसी भी साधन या सुविधा के उपयोग का विचार ही तब उठता है जबकि

पहले उसका ज्ञान हो। वास्तव में तो इन बुनकरों को इन सब सुविधाओं के बारे में कोई ज्ञान ही नहीं है। ज्ञान न होने का कारण अशिक्षा व संकुचित क्षेत्र के साथ साथ सरकार एवं सहकारी विभागों द्वारा अभी तक भी अंग्रेजी के माध्यम से उनसे सम्पर्क स्थापित करना व उन्हें बताने का प्रयत्न करना भी है। इसलिये उनकी तरफ से इनका उपयोग करने में कभी भी प्राथमिकता नहीं की जाती है। इन सुविधाओं का जो कुछ भी उपयोग होता है वह तभी होता है जबकि सहकारी विभाग या विकास विभाग से सम्बन्धित कोई व्यक्ति आकर उसके बारे में बतावे, प्रेरणा दे, प्रारम्भिक कार्य करे व समय समय पर उनका निर्देशन करता रहे।

दूसरे जिन लोगों को कुछ ज्ञान है और जो कि कुछ शिक्षित व धनिक हैं और समाज का नेतृत्व करते हैं वे लोग सेठियां हैं। जो कि इस ओर कदम ही नहीं उठाते क्योंकि इससे उनको सेठिया या मध्यस्थ के रूप में प्राप्त हो रहे भारी लाभों का अंत अवश्यम्भावी है।

इसके साथ ही यह भी अभी तक स्पष्ट नहीं हो पाया है कि मसूरिया बुनकर सहकारी समितियां किस वर्ग में रखी जावें। वर्तमान में हाथ कर्घा बुनकर, समितियों को निम्न चार वर्गों में विभाजित कर रखा है :-

१. कृत्रिमरेशम व ऊनी वस्त्र बुनकर समितियां।

२. सूती वस्त्र बुनकर समितियां।

३. औद्योगिक सहकारीतायें।

४. रेशम वस्त्र बुनकर सहकारी समितियां।

मसूरिया उत्पादन में सूत, रेशम व जरी तीनों चीजें काम आती हैं तो इसे किस श्रेणी में रक्खा जाय ऐसा अभी तक स्पष्ट निर्णय नहीं लिया गया है। यही कारण है कि अभी तक रिजर्व बैंक योजना के अन्तर्गत सम्पूर्ण जिले में केवल सूती-वस्त्र बुनकर सहकारी समितियों को सूती वस्त्र उत्पादन के नाम से ऋण दिये गये हैं।

फलस्वरूप सहकारिता का प्रारम्भ भारत में सरकार द्वारा हुआ है न कि जनता द्वारा और अब भी आन्दोलन की बागडोर सरकारी हाथों में होना बहुत बड़ा दोष है क्योंकि सहकारिता का सार अपनी सहायता आप करना है।

अन्तिम रूप में यह कहा जा सकता है कि परिस्थितियां ही इस प्रकार की हैं कि बुनकरों को मसूरिया उत्पादन के लिये सहकारी समिति स्थापित करने की

आवश्यकता ही प्रतीत नहीं होती । क्योंकि वे वित्त एवं विपणन दोनों कठिनाइयों से मुक्त हैं । सेठिया लोग व व्यापारी भी उनके लिये सब प्रकार के अल्पकालीन व दीर्घकालीन वित्त की व्यवस्था कर देते हैं एवं विपणन का कार्य भी वे ही कर देते हैं । साथ ही मसूरिया उत्पादन से जो मजदूरी वर्तमान में उन्हें प्राप्त हो रही है वह उस मजदूरी से ड्योढ़ी व दुगनी है जो उन्हें मोटा कपड़ा बुनने से प्राप्त होती थी अत: वे उससे एक हद तक संतुष्ट हैं । इन सब कारणों से ही सहकारिता के माध्यम से सरकारी वित्तीय सुविधाओं का उपयोग करने के लिये मसूरिया बुनकर उद्योग में अभी तक कोई कदम नहीं उठाये गये हैं ।

५. आलोचनात्मक अध्ययन एवं सुझाव :-

आधुनिक औद्योगिक संगठन में वित्त प्रबन्धक व नियंत्रणकर्ता भिन्न भिन्न हो सकते हैं परंतु कुटीर उद्योगों में जहां कच्चे माल व उपकरणों से लेकर विपणन तक के वित्त प्रबन्ध के लिये औरों पर निर्भर रहना पड़ता है उद्योग के वास्तविक नियंत्रणकर्ता वे व्यक्ति बन जाते हैं जो वित्त की व्यवस्था करते हैं । मसूरिया उत्पादन के सम्बन्ध में कोटा के ४ प्रमुख व्यापारी ऐसे हैं जो कुल उद्योग की उत्पादन सम्बन्धी आवश्यकता का ६० प्रतिशत वित्त प्रबन्ध करते हैं । उत्पादन के लिये वित्त प्रबन्ध के साथ ही विपणन के लिये वित्त प्रबन्ध में भी लगभग ७५ प्रतिशत भाग इन्हीं व्यापारियों का होता है । फलत: वर्तमान में मसूरिया उत्पादन व उसके साथ साथ मसूरिया बुनकर पूर्णत: इनके ऊपर ही निर्भर हो गये हैं । उत्पादन में शेष वित्त प्रबन्ध कोटा के अन्य छोटे व्यापारी सेठिया और सहकारी समिति करती है विपणन का शेष वित्त प्रबन्ध कोटा के ~~छोटे~~ अन्य छोटे व्यापारी और सहकारी समिति करती है । जैसा कि बताया गया है सहकारी समिति भी वास्तविक अर्थों में समुदाय के हितों के लिये संचालित सहकारी समिति न होकर कुछ व्यक्तियों के हित पूर्ति के लिये होती है जो कि सहकारिता शब्द का दुरुपयोग ही कहा जा सकता है। एतदर्थ उद्योग के नियंत्रण का केन्द्रीयकरण कुछ हाथों में है और केन्द्रीयकरण द्वारा शोषण का जन्म वर्तमान युग में स्वाभाविक है । ऐसी स्थिति में हो सकता है कि बढ़ती हुई मांग के समय बुनकरों का अस्वाभाविक शोषण न हो परंतु फिर भी ज्योंही व्यापारी अनुकूल स्थिति में आयें शोषण का सूत्रपात हो जाना अस्वाभाविक

नहीं है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण अभी अभी मिला है जबकि कैथुन के अलावा केट कोटा जिले के अन्य गांव में मसूरिया उत्पादन करने वाले कर्घों की मात्रा में वृद्धि व सर्दी के मौसम के कारण, मांग की मात्रा में कुछ कमी होने के कारण बुनकरों की मजदूरी उन व्यापारियों के द्वारा मिलकर एक दम २० से २५ प्रतिशत तक कम करदी गई है। पहले २५ गज बुनाई का जहां ५०)रुपया दिया जाता था अब केवल ४८)रुपया दिया जाता है। अधिक मांग के समय ग्रीष्म काल में तो बढ़ी हुई मांग का लाभ (मूल्य बढ़ाकर) व्यापारी उठा कर जाते हैं पर जहां कहीं थोड़ी सी भी अनुकूलता मिली कि बुनकरों की मजदूरी कम करने में नहीं चुके।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि कला का भविष्य इन व्यक्तियों के हाथों में सुरक्षित नहीं है। अल्प मजदूरी के कारण ऊबे हुये बुनकर कभी भी इस उद्योग को छोड़कर अन्य उद्योगों में संलग्न हो सकते हैं जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण कोटा में मिलता है। कोटा शहर में १६२१ में वस्त्र उद्योग पर ३३५४ व्यक्ति निर्निर्भे-निर्भर थे[१] जबकि वर्तमान में केवल १००-१५० कर्घे चल रहे हैं जिन पर लगभग ५०० व्यक्ति निर्भर होंगे। भविष्य में भी कोटा क्षेत्र में औद्योगिकरण इसकी प्रतिस्पर्द्धा कर उद्योग के विकास में रुकावट पैदा कर सकता है। अतः आवश्यक है कि इस हस्तकला को जीवित रखना यदि आवश्यक है और विकास करना है जो कि विदेशी मुद्रा अर्जन का अच्छा साधन हो सकता है तो आवश्यक रूप से वित्त प्रबन्ध की समुचित एवं सुलभ व्यवस्था की जानी चाहिये। जिससे बुनकर व्यापारियों के केन्द्रीत नियंत्रण से मुक्त होकर स्वतंत्र रूप से कला के विकास में रुचि लें।

आत्म सहायता या सहकारिता ही एक मात्र साधन है जो इस समस्या का उचित हल कर सकता है। परन्तु सहकारिता सरकारी कार्यालयों के पन्नों का विषय और सरकारी सुविधाओं को जैसे तैसे प्राप्त करने का माध्यम मात्र नहीं होना चाहिये। व्यवसायिक संगठन के रूप में सहकारिता से पूर्व भावात्मक सहकारिता का होना अति आवश्यक है। क्योंकि भावात्मक सहकारिता के बिना सहकारी संगठन बिना नींव का खोखला ढांचा मात्र रह जाता है जिसे सहकारी एवं विकास विभाग के कर्मचारी जैसे तैसे जीवित मात्र रखते हैं।

हमारे गांवों में भावात्मक सहकारिता पर्याप्त मात्रा में पाई जाती है

---

१. कोटा रियासत मर्दमशुमारी रजिस्टर पृष्ठ १६८।

परन्तु परिस्थितियों के चक्कर में आकर व निरंतर क्षीण होती चली जा रही है। ऐसी अवस्था में यह आवश्यक है कि हमारी लोकप्रिय सरकार आगे आवे और अज्ञान कूप में पड़े बुनकरों को संगठित कर उन्हें इतनी शक्ति दे कि वे उससे निकलकर स्वतंत्र वायु में स्वांस ले सकें। पर यह ध्यान रहे कि संगठन बनाने से पूर्व उनमें संगठित होने की भावना पैदा की जावे। अन्यथा एक आधार को छोड़कर उन्हें दूसरा आधार पकड़ना पड़ेगा।

वर्तमान में खोखले संगठन विद्यमान हैं क्योंकि उनकी स्थापना से पूर्व संगठित होने वालों में इस प्रकार संगठित होने की भावना विद्यमान नहीं थी। अब आवश्यकता इस बात की है कि पहले संगठित होने एवं पारस्परिक सहायता करने की भावना पैदा की जावे + और फिर उनका पुर्नसंगठन किया जावे। परंतु प्रश्न यह आता है कि संगठित होने की भावना कैसे पैदा की जावे ? केवल भाषण कर देने, व पोस्टर चिपका देने, फिल्में दिखा देने और विस्तृत सहकारी विभाग की स्थापना कर देने मात्र से संगठित होने की भावना पैदा नहीं हो सकती। जैसाकि पूज्य गांधीजी ने कहा है 'एक से लोक होते हैं' उसी प्रकार एक आदर्श उपस्थित करना होगा जिसमें उनके क्षेत्र में आये हुये व्यक्तियों के वास्तविक विकास एवं स्वतंत्र रूप से जीवित रह सकने की योग्यता पैदा हो सकने का व्यवहारिक एवं प्रत्यक्ष उदाहरण प्रस्तुत किया जाय। जिसका अनुकरण कर अन्यों में संगठित होने की भावना जागृत होगी। परिणामस्वरूप उनके संगठन का स्वाभाविक रूप से पुर्नगठन होगा और तब आवश्यक सहयोग सरकार का होगा। लेकिन सरकार सहयोगी के रूप में कार्य करे, नियंत्रक के रूप में नहीं ताकि अन्तत: अज्ञान कूप में पड़े व्यापारियों के द्वारा शोषण के शिकार बुनकर आत्मनिर्भर होकर कला को जीवित रखने व उसका विकास करने के लिये कृत संकल्प हो सकें। इसके अलावा हमारे दासत्व के बुये अंग्रेजी का प्रेम छोड़कर मातृभाषा हिन्दी में ही बुनकरों से सभी प्रकार से लिखित एवं मौखिक सम्बन्ध बनाये रखने का प्रयत्न करना चाहिये। जिससे कि यह अल्प-ज्ञानी व कम शिक्षित बुनकर जो कि हिन्दी में तो फिर भी कुछ समझ सकते हैं इन सुविधाओं का ज्ञान प्राप्त कर सकें उनको प्राप्त करने के तरीकों को जान सकें व उनके अनुसार कार्य कर बिना दूसरों पर निर्भर रहे स्वयं ही उन्हें प्राप्त कर अपने विकास का मार्ग निर्धारित कर सकें।

एकदम बहुत सारी सहकारी समितियां स्थापित कर देने और फिर उन्हें थोड़ा थोड़ा अनुदान एवं ऋण देने से उनमें से एक भी सुदृढ़ एवं आत्मनिर्भर नहीं हो पाती है। वर्तमान में यही नीति अपनाई जाती रही है जिसका परिणाम यह होगा कि सब अपंगुली रहेंगी और अन्त में निराश होकर सरकार को या तो प्रयत्न करना ही छोड़ना होगा या अपना मार्ग बदलना होगा। अतएव उपयुक्त यह होगा कि सरकार पहले एक या कुछ समितियां लेकर उन्हें सम्पूर्ण सुविधायें उपलब्ध कर सुदृढ़ व आत्मनिर्भर बनादे। परिणामस्वरूप उसमें आये व्यक्तियों के विकास को देखकर स्वाभाविक रूप से दूसरों में भी उसी प्रकार संगठित होने और अपनी उन्नति करने की भावना पैदा होगी, तब सरकार को चाहिये कि उन्हें प्रोत्साहन एवं सहयोग दे जिससे उनमें सहकारिता पैदा हो और फिर वे पुनर्गठित होकर तीव्र-आन्तरिक इच्छा के साथ अपने को भी उसी प्रकार संगठित कर आत्म निर्भर बनने के लिये दृढ़ संकल्प करें तभी सहकारी सहयोग से वास्तविक अर्थों में सफलता प्राप्त की जा सकेगी। अन्ततः यह आत्म सहायता का मार्ग उनके कल्याण एवं कला के विकास व संवर्द्धन का माध्यम बन सकेगा।

इतना ही नहीं जब एक दो आदर्श सहकारी समितियां बन जायेंगी तब फिर स्वाभाविक रूप से व्यापारी भी शोषणीय प्रवृत्ति को छोड़कर धीरे धीरे बुनकरों को अपना बनाये रखने के लिए उनके कल्याण में हाथ बटाने को आगे आयेंगे और इस प्रकार दोनों ओर से प्रयास होकर उद्योग में वह आदर्श व्यवस्था स्थापित हो जायेगी जो बुनकरों के स्थायी कल्याण का कारण बन कला के विकास एवं संवर्द्धन का मार्ग ग्रहण करेगी।

मसूरिया उत्पादन में संलग्न सहकारी समितियां शीघ्र ही आत्मनिर्भर हो जावें ऐसा सम्भव नहीं है क्योंकि इसके लिए कार्यशील पूंजी के रूप में बड़ी मात्रा में वित्त प्रबन्ध की आवश्यकता होती है जिसकी पूर्ति, मिलों से कठोर प्रतियोगिता के काल में जीवन निर्वाह से भी कम आय पर जीवित रहने वाले बुनकर करने को सक्षम हो जायें असम्भव ही प्रतीत होता है। अतः सरकार को आवश्यक रूप से प्रारम्भ काल में पर्याप्त, सुलभ एवं सस्ती वित्त प्रबन्ध की व्यवस्था करनी चाहिये। सरकार का उद्देश्य सहयोगी के रूप में कार्य करना- अन्ततः उन्हें आत्मनिर्भर बनाना ही होना चाहिये न कि उस पर हमेशा के लिये नियंत्रण रखना।

इन सबसे पूर्व यह आवश्यक है कि पहले मसूरिया बुनकर सहकारी समितियों के स्थान का निर्धारण कर लिया जाय । इसके लिये हाथ कर्घा परिषद व रिजर्व बैंक को मिलकर इसको सूती समिति माना जाय या रेशमी या फिर कोई अलग वर्ग बना दिया जाय इसके सम्बन्ध में निर्णय कर लेना चाहिये । तभी इसके अनुकूल ही सरकार को, बल्कि भारतीय हाथ कर्घा परिषद, राजस्थान हाथ कर्घा परिषद व केन्द्रीय सहकारी बैंक आदि को साधन सुविधायें उपलब्ध कर सकना सम्भव होगा, जो कि पूर्णतः उसके उपयुक्त होंगी ।

निष्कर्षतः वर्तमान में वित्त प्रबन्ध के व्यापारियों के हाथों में केन्द्रीयकरण के कारण बुनकरों का पूर्ण नियंत्रण उनके हाथों में है जो कि उनके शोषण व अनिश्चित भविष्य का कारण है । सहकारिता इसके लिये एक अमोघ साधन है पर इसकी सफलता तभी हो सकती है जबकि उसे बताये गये ढंग से उपयोग किया जाय । सहकारी आंदोलन में उन सारी आर्थिक व सामाजिक बुराइयों को जिनसे बुनकर आज पीड़ित हैं, दूर करने व बड़े पैमाने के उत्पादन के बहुत से लाभों को प्राप्त कर सकने का विशिष्ट गुण है । फिर भी यह नितांत निष्प्रयोजन भी नहीं है । कम से कम उस सहायता के कारण जो कि कार्यशील पूंजी के लिये ऋण के रूप में बुनकरों को मिली है उसके द्वारा वे परम्परा से चले आये महाजनों व साहूकारों के ऋण भार से [illegible] हो बहुत कुछ हद तक मुक्त हो गये हैं । साथ ही साधन व [illegible] तैयार हो चुके हैं आवश्यकता केवल उसके समुचित उपयोग की रह गई है ।

-0-0-0-0-0-0-0-0-0-0-0-
0-0-0-0-0-0-0-0-0
0-0-0-0-0-0-0
0-0-0-0-0
0-0-0
0

अध्याय - षष्टम

उत्पादन लागत एवं मुल्य उच्चावचन

१. लागत के तत्व :-

स्वरूप परिवर्तन द्वारा उत्पादन उद्योग में कच्चा माल, श्रम, साहस, एवं पूंजी उत्पादन के प्रमुख घटक होते हैं। फलत: कच्चे माल का मूल्य श्रम की मजदूरी, पूंजीपति का प्रतिफल एवं साहसी का लाभ उत्पादन लागत के मुख्य भाग होते हैं। मसूरिया उत्पादन में भी उच्च कोटि का कच्चा माल प्रयुक्त होने, पूर्ण श्रम प्रदान उत्पादन प्रक्रिया होने और कच्चे माल की पुर्ति व विपणन का कार्य दीर्घ एवं जटिल होने से इसकी लागत में कच्चे माल के मूल्य, बुनाई की मजदूरी व व्यापारियों का प्रतिफल लागत के मुख्य भाग होते हैं। लागत के घटकों का विस्तृत विवरण इस प्रकार है :-

(१) कच्चे माल की लागत :-

इसमें निम्न मुल्य शामिल होते हैं :-

क, कलकत्ता, बम्बई आदि मुख्य बाजारों में विक्रय मूल्य।

ख, वहां से यहां आने का खर्चा,।

ग, स्थानीय व्यापारियों का लाभ।

घ, अन्य मध्यस्थों का प्रतिफल।

(२) मजदूरी :- इसमें निम्न मद शामिल होते हैं :-

क, ताना, पाण करने की मजदूरी,

ख, नलियां भरनेकी मजदूरी,

ग बुनाई की मजदूरी,

घ, सज्जाएवं उपकरणों का ह्रास,

ङ० सहायक सामग्री का मूल्य।

(३) मध्यस्थों का प्रतिफल :- इसमें निम्न मदें शामिल होती हैं :-

क, यात्रा व्यय, ख, पूंजी पर ब्याज, और ग शुद्ध प्राप्ति।

(४) धुलाई

(५) व्यापारियों का लाभ

उत्पादन के स्वरूपों में एवं आकार प्रकार में अत्यधिक भिन्नता होने के कारण विभिन्न लागतों का प्रतिशत सामान्य रूपसे निश्चित नहीं किया जा सकता एक ही श्रेणी के उत्पादन में भी निम्न कारणों से लागत कम अधिक हो सकती है

१, आकार प्रकार में भिन्नता ।-

२, रूपांकन की मात्रा ।

३, कच्चे माल की किस्म । हल्के किस्म का कच्चा माल निम्न प्रकार से काम लिया जाता है, जिसका सामान्य दृष्टि से ज्ञान भी नहीं हो पाता । :-

क, सम्पूर्ण माल में हल्की किस्म का कच्चा माल काम में लेकर

ख, विदेशी के स्थान पर देशी कच्चा माल काम में लेकर

ग, ऐसा सम्पूर्ण उत्पादन में या केवल ताने में या केवल बाने में किया जा सकता है ।

४, खतों में गड़बड़ करके :-

क, १२ खन के बजाय ८ खन के खत बनाकर,

ख, एक खत ८ खन का व एक खत १२ खन का बनाकर,

ग, सूत रेशम और जरी के तारों में अलग अलग स्थानों में अलग अलग मात्रा में प्रयोग करके ।

५, जरी की मात्रा एवं किस्म ।

प्रतिनिधि उत्पादनों का लागत विवरण संलग्न तालिका में दिखाया गया है । यह लागत सामान्य एवं प्रमापित उत्पादन के सम्बन्ध में है । बाजार में ऊपर बताये गये विभिन्न तरीकों से गड़बड़ कर लागत में कमी करने का प्रयास किया जाता है । इन तालिकाओं में बताई गई लागत एक सामान्य विवरण उपस्थित करती हैं जिनके आधार पर उत्पादन का प्रमापीकरण किया जा सकता है ।

इन लागत विवरणों में हम पाते हैं कि निम्नतम किस्म के उत्पादन की लागत में मजदूरी का अनुपात सर्वाधिक होता है । सामान्यत: ५० प्रतिशत मजदूरी, ४० प्रतिशत कच्चे माल का मूल्य व १० प्रतिशत अन्य लागतें होती हैं । उत्पादन की किस्म तीनप्रकार से ऊंची होती हैं । प्रथम अधिक खतों का कपड़ा बुनकर दूसरे रूपांकन कार्यों द्वारा(नक्काशी), एवं तीसरे जरी का प्रयोग अधिक करके ।

खतों की मात्रा बढ़ाकर किस्म ऊंची करने पर सामान्यत: मजदूरी एवं कच्चे माल की लागत का अनुपात वही रहता है। केवल मजदूरी की लागत का प्रतिशत कुछ बढ़ जाता है। नक्काशी करने से किस्म ऊंची करने पर श्रम लागत का प्रतिशत बढ़ जाता है। एवं कच्चे माल की लागत का प्रतिशत कम होता जाता है। जरी का अधिक प्रयोग करके किस्म ऊंची करने पर कच्चे माल की लागत निरंतर बढ़ती चली जाती है एवं श्रम की लागत का प्रतिशत कम होता जाता है यहां तक कि स्वर्ण जरी कोश पट्टेदार में १५ प्रतिशत मजदूरी, १५ प्रतिशत अन्य लागतें और ७० प्रतिशत लागत कच्चे माल की होती है।

२. लागत को प्रभावित करने वाले घटक :-

विभिन्न कारणों से जिनका वर्णन ऊपर किया गया है, उत्पादन की लागत भिन्न भिन्न हो सकती है। ऐसे कारणों को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं। (१) प्रत्यक्ष एवं (२) अप्रत्यक्ष। प्रत्यक्ष में वे घटक हैं जिनका सभी परिस्थितियों में समान रूपसे प्रभाव पड़ता है और अप्रत्यक्ष घटक वे परिस्थितियां हैं जिनकी उपस्थिति के कारण ही लागत प्रभावित होती है।

(क) प्रत्यक्ष घटक :-

(१) खतों की मात्रा :- इसका सीधा प्रभाव कच्चे माल की मात्रा व मजदूरी पर पड़ता है। इस प्रकार खतों की मात्रा बढ़ने के साथ साथ औसतन रूपसे मूल्य वृद्धि होती चली जाती है जैसे २५० खत का थान ६०) में २६० खत का थान ६२) में, २७० खत का थान ६५) में २८० खत का ६७) में २९० खत का ७०) में एवं ३०० खत का ७३) में आता है।

(२) खतों का प्रकार :- खत तीन प्रकार के होते हैं :- (१) नौखन वाले (२) बारह खन वाले व (३) सोलह खन वाले। ९ खन वाले खत में खन ताने व बाने (लम्बाई व चौड़ाई) दोनों में प्रति खत ८ तार सूत के व ६ तार रेशम के होते हैं। अर्थात् लम्बाई व चौड़ाई दोनों में दो धारियां वाले खत डाले जाते हैं। बारह खन वाले खत में ताने में आठ तार सूत व छ तार रेशम के होते हैं परन्तु बाने में १० तार सूत के व ८ तार रेशम के होते हैं। १६ खन वाले खत में ताने व बाने दोनों में प्रति खन १० तार सूत के व ८ तार रेशम के होते हैं। इस प्रकार खतों के प्रकार

का लागत पर औसतन प्रभाव पड़ता है। इससे कच्चे माल की लागत, मजदूरी व अन्य लागतें समान प्रतिशत में बढ़ती हैं। जैसे दो सौ सत का थान १२ खत के सर्तों वाला ५०)रूपये में आता है जबकि १६ खत के सर्तों वाला ५५)रूपये में।

एक ही किस्म के उत्पादन में सर्तों में भिन्नता डालकर उत्पादन की किस्म निम्न करने का प्रयत्न किया जाता है और इस प्रकार यह धोखाबाजी के एक साधन के रूप में भी प्रयोग हो रहा है।

(३.)नक्काशी :-

साड़ियों व ओढ़नों में चौड़ी किनार के बीच में या चौकड़ीदार बुनावट होने पर चौकड़ी के बीच में जरी, पूना रेशम या मर्सराइज्ड के फूल व पती डाले जाते हैं। रेशम व मर्सराइज्ड के फूल पती डालने पर इसका मुख्य प्रभाव श्रम लागत पर पड़ता है जिससे श्रम लागत का प्रतिशत बढ़ता चला जाता है और कच्चे माल की लागत का प्रतिशत घटता जाता है। जरी के फूल पती डालने पर श्रम लागत व कच्चे माल की लागत दोनों पर प्रभाव पड़ता है परन्तु कच्चे माल की लागत का प्रतिशत बढ़ता जाता है और श्रम लागत का प्रतिशत कुछ कम होता जाता है। सूती चौकड़ी की साड़ी जहाँ २१)५० पैसे में आती है नक्काशी का काम होने पर (लगभग २०० फूल डालने पर) इसका मूल्य ३०) हो जाता है। इसी प्रकार नक्काशी की मात्रा भी मूल्य में कमीबेशी करने के लिये जिम्मेदार होती है।

(४) प्रयुक्त कच्चे माल की किस्म :-

एक ही श्रेणी के, एक ही आकार प्रकार के व उतने ही सर्तों के कपड़े का मूल्य या लागत भी भिन्न भिन्न हो सकती है। माल की किस्म में भिन्नता का प्रभाव केवल कच्चे माल की लागत पर पड़ता है। जैसे २५० सत का ४५ इंच चौड़ा, १२ खत के सर्तों वाला थान यदि १३।१५ काउन्ट का रेशम व १४० काउन्ट का सूत काम में लेकर बनाया जाने पर उसका मूल्य लगभग ६७) होगा जबकि २०।२२ काउन्ट का रेशम व १२० काउन्ट का सूत काम में लेने पर केवल ६५) ही होगा। जरी के काम में २७०० गजी के स्थान पर १४०० गजी काम लेने या १४०० गजी के स्थान पर २७०० गजी काम लेने पर लागत में परिवर्तन हो जावेगा।

(५) आकार प्रकार में भिन्नता :-

एक ही श्रेणी का उत्पादन जो कि एक ही प्रकार का हो विभिन्न आकारों

में होने पर उसका मूल्य एवं लागत भिन्न भिन्न होती है। आकार में भिन्नता के कारण लागतों में औसत परिवर्तन होता है और विभिन्न लागतों का प्रतिशत सामान्यत: वही रहता है। साड़ियां लम्बाई में ५ या ६ गज की हो सकती हैं और चौड़ाई में भी ४५ इंच, ४६ इंच, ४७ इंच, ४८ इंच की बुनी जाती हैं। इसी प्रकार अन्य उत्पादनों के आकार में भी भिन्नता होती है।

(ख) अनुत्पादक घटक :-

१. इकाईयों का प्रकार :- वास्तव में तो ये मितव्ययता के तरीके हैं जिनका उपयोग कर वृहत प्रमापीय उत्पादन के अनेक लाभ प्राप्त किये जा सकते हैं। कुटीर उद्योग और सहकारिता मिलकर ही विशाल प्रमापीय उद्योग बन जाता है। अत: वर्तमान में प्रचलित व्यक्तिगत आधार पर उत्पादन पद्धति में स्वाभाविक रूपसे अनेकों अमितव्ययताओं के कारण लागत अधिक होती है इसमें भी स्वयं के लिये उत्पादन करने पर लागत कम आ जाती है क्योंकि उन्हें प्रतियोगिता के आधार पर कच्चा माल खरीदने, प्रतियोगिता के आधार पर बेचने व मध्यस्थों के अभाव के कारण मितव्ययता प्राप्त होती है। मध्यस्थों के माध्यम से होने वाले उत्पादन में लागत सर्वाधिक होती है। जैसा कि बताया गया है कि आदर्श सहकारी बुनकर बस्ती में उत्पादन पर लागत मूल्य बहुत कम हो सकता है यदि सहकारी स्रोतों से ही कच्चा-माल मिल जाय और सहकारी आधार पर ही विक्रय हो तो विक्रय मूल्य में १८ - २० प्रतिशत तक कमी हो सकती है। इसका एक विवरण नीचे दिया गया है :-

थान का उत्पादन लागत विवरण

लम्बाई १२ गज, चौड़ाई ४५ इंच, खतों की मात्रा ३००, खत ६ सन वाले।

	प्रचलित पद्धति	सहकारी पद्धति
१. सूत १२० काउन्ट का १४ गोट	१४)००	१०)००
२. रेशम १३।१५ काउन्ट जापानी, ६ तोला	२१)२५	१५)७५
३. मजदूरी	२७)५०	२७)५०
४. धुलाई	-)५०	-)५०
५. विक्रय खर्च (प्रबन्ध खर्च सहित)	----	३)५०
६. पूंजी पर ब्याज	----	-)२५

७, मध्यस्थों का कमीशन	१)२५	----
८, व्यापारियों का लाभ	५)५०	----
कुल लागत	७०)००	५७)५०

२. २, इकाइयों का आकार :- उत्पादन इकाई का प्रकार कोई सा भी हो उसका आकार ज्यों ज्यों बढ़ता जाता है एक सीमा तक मितव्ययता भी बढ़ती चली जाती है। व्यक्ति से संयुक्त कुटुम्ब प्रणाली, संयुक्त कुटुम्ब प्रणाली से सहकारी समिति एवं सहकारी समिति से सहकारी संघ के अन्तर्गत उत्पादन होने पर स्वाभाविक रूप से श्रम विभाजन के लाभ, औसत स्थिर लागतों में कमी और ऊपरी खर्चों की औसत लागत के रूप में कुल लागत घटती चली जाती है। कुटीर उद्योग होने से इस प्रकार ५ से १० प्रतिशत तक मितव्ययता प्राप्त की जा सकती है।

३, वित्त प्रबन्ध व विपणन की सुविधायें एवं कच्चे माल की सुलभता से उपलब्धि :- इससे एक ओर तो मध्यस्थों की कमी हो जाती है दूसरी ओर उपलब्धि की लागत कम होने से कुल औसत लागत भी कम होती जाती है।

४, कोटा से उत्पादन केन्द्रों की दूरी एवं यातायात के साधन :- जो स्थान कोटा से दूर हैं वहां पर आवागमन एवं यातायात व्यय लागत जुड़ जाने से लागत बढ़ जाती है। इसका प्रभाव मुख्यतः श्रम लागत पर पड़ता है क्योंकि इन बुनकरों को भी वही मजदूरी दी जाती है जो कोटा या कैथून के बुनकरों को दी जाती है। अतः कुल लागत पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। परन्तु श्रम का प्रतिफल कम होकर आवागमन व्यय लागत बढ़ जाती है।

उपरोक्त कारणों का अध्ययन करने पर मालूम होता है कि प्रत्यक्ष घटकों के कारण उत्पादन का प्रमापीकरण एवं श्रेणीकरण का कार्य अत्यन्त दूभर हो गया है। वर्तमान में निरंतर विविध प्रकार से प्रतियोगिता में टिकने के लिये किस्म को हल्की करने का रूख पाया जाता है। अप्रत्यक्ष घटक ऐसे हैं जिनके आधार पर उत्पादन व्यवस्था में उचित परिवर्तन एवं सुविधायें उपलब्ध कर सामान्य रूप से बड़े पैमाने की उत्पत्ति के लाभ व अनेक मितव्ययतायें प्राप्त की जा सकती हैं।

३, विभिन्न स्तरों पर लागत :-

लागत गणना के रूप में यहां दो प्रतिनिधि उत्पादनों पर विभिन्न

स्तरों पर होने वाली लागत व उसका प्रतिशत दिया गया है। जैसाकि पहले बताया जा चुका है व्यवहार में २५ गजी पाण की जाती है जिसके आधार पर ही कच्चा माल दिया जाता है व मजदूरी निर्धारित होती है। इसलिये यहां पर (१) २५० सूत के ४० इंच चौड़े थान की पाण व (२) साड़ी जरी किनार २०० सूत व ४६ इंच चौड़ी की पाण पर लागत विवरण दिखाया गया है।

स्तर लागत प्रदर्शन तालिका

१. कच्चा माल (बाजार मूल्य पर)	थान की पाण		साड़ियों की पाण	
	लागत	प्रति०	लागत	प्रति०
सूत	२४)००		२२)००	
रेशम	३३)००		२६)५०	
जरी	---		२)५०	
योग	५७)००	४३.६	५४)००	४१.४
२. श्रम :-				
ताणा एवं सज्जीकरण (२ दिन)	६)००		६)००	
कर्घे में जोड़ने का (१ दिन)	४)००		४)००	
बुनाई (१२ दिन)	३६)००		३६)००	
नलियां भराई (१२ दिन)	१२)००		१२)००	
योग	५८)००	४४.६	५८)००	४४.६
कच्चे माल व श्रम पर कुल-लागत एवं कुल लागत का प्रतिशत	११५)००	८८.५	११२)००	८६.०
३. अन्य लागतें :-				
सहायक सामग्री	१)००		१)००	
सज्जा एवं उपकरणों का ह्रास	१)००		१)००	
धुलाई	१)००		२)००	
योग	३)००	२.३	४)००	३.०
४ उत्पादन लागत	११८)००	९०.८	११६)००	८९.१
४. प्रबन्ध एवं विक्रय लागत:-				
ऊपरी व्यय (मध्यस्थों का कमी०)	२)००		३)००	

विक्रय लागत (व्यापारियों का न्यूनतम लाभ)	१०)००		११)००	
योग	१२)००	६.२	१४)००	११.०
कुल योग	१३०)००	१००.००	१३०)००	१००.००
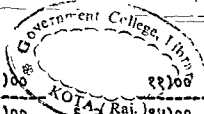
उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि कच्चा माल व श्रम ही लागत के दो मुख्य तत्व हैं। सज्जा एवं उपकरण का मूल्य कम होने से व टिकाऊ होने से उनकी लागत नाम मात्र की होती है। किस्म की उच्चता बढ़ने के साथ साथ ही कुल लागत में श्रम व कच्चे माल की लागत एवं अन्य लागतों का अनुपात लगभग उतना ही रहता है। पर यदि नरों का काम करके किस्म ऊंची की गई तो कच्चे माल की लागत का अनुपात बढ़ता जाता है और श्रम लागत का अनुपात घटता जाता है। यदि नक्काशी का काम करके किस्म ऊंची की गई तो श्रम लागत अनुपात बढ़ता जाता है और कच्चे माल कीलागत का अनुपात घटता जाता है। ऊपरी व्यय और व विक्रय लागत का कुल लागत में अनुपात सभी किस्मों में सामान्यत: ६ से १२ प्रतिशत रहता है। यह भी महत्वपूर्ण है कि थानों की अपेक्षा साड़ियों में मध्यस्थों का कमीशन। अथवा व्यापारियों का लाभ व धुलाई का मूल्यानुसार प्रतिशत अधिक होता है। क्योंकि इनके निर्धारण में मूल्य व नगों की संख्या दोनों बातों का ध्यान रखा जाता है।

<u>४. मूल्य उच्चावचन</u> :-

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में मूल्यों का निर्धारण मांग व पूर्ति की स्वतंत्र शक्तियों द्वारा होता है। मसूरिया उत्पादन भी इसका कोई अपवाद नहीं है। मांग व पूर्ति के अनुसार ही समय समय पर इसमें काम आने वाले कच्चे माल, श्रम एवं पूंजीगत सामग्री के मूल्यों में और तदनरूप उत्पादित सामग्री के मूल्यों में उच्चावचन होते रहते हैं। द्वितीय महायुद्ध काल से ही मुख्य रूपमें मसूरिया उत्पादन का प्रसार दृष्टिगोचर होता है। एतदर्थ उसी समय से मूल्य उच्चावचन का विवरण आगे दिया गया है।

द्वितीय महायुद्ध काल में इसमें प्रयुक्त किया जाने वाला कच्चा माल जो कि उच्च कोटि का होता है विदेशों से ही आयात किया जाता था। उस समय ~~पूरी - मसूरिया अधिक बनने से~~ सूत का धागा मुख्य कच्चा-माल था ~~जो कि इंगलैंड से~~ आयात

किया जाता था । रेशम की आवश्यकता कम थी जो कि जापान से आयात करके व भारत में उत्पादित रेशम काम लेकर पूरी की जाती थी । फलत: युद्ध के प्रारम्भ होते सुमे ही कच्चा माल बाजार से गायब हो गया । परन्तु उत्पादन की सीमा व बुनकरों को रोजगार की आवश्यकता होने से अनिर्धारित तौर पर सूत के मूल्य दुगने तिगुने हुये । जापान के युद्ध में प्रवेश पर रेशम की भी कमी आई और उसका मूल्य भी काफी ऊंचा हो गया । यह बढ़े हुये मूल्य युद्ध समाप्ति के बाद तक चलते रहे । फलत: १६४७-४८ में नियंत्रित मूल्यों पर सहकारी समितियों को सूत दिया जाने लगा दूसरी ओर शांतिकालीन स्थिति स्थापित हो जाने से पुन: इंगलैंड से सूत मिलने लगा और मूल्य गिरे । १६५० से अब तक सूत के मूल्य बाजार में लगभग समान हैं । रेशम के मूल्य पर भी युद्ध का प्रभाव एक दम पड़ा व मूल्य दुगने हो गये । सरकार द्वारा वितरण की उचित व्यवस्था के अभाव, विदेशों से आयात पर नियंत्रण, एवं मांग वृद्धि के कारण रेशम के मूल्य बाजार में निरंतर बढ़ते चले जा रहे हैं । जरी का मूल्य सूत, रेशम व स्वर्ण के मूल्य पर आधारित होता है । फलत: युद्धकाल में इसका मूल्य भी बढ़ा था परन्तु युद्ध के पश्चात् वापिस कम हो गया । स्वतंत्रता के बाद से स्वर्ण व रेशम के मूल्य में निरंतर वृद्धि के साथ साथ इसका मूल्य भी निरंतर बढ़ता चला जा रहा है । १६६२ में स्वर्ण नियंत्रण के कारण एक दम जरी बाजार से लोप हो गई और मूल्य दुगने तिगुने वसूल किये जाने लगे । फलत: स्वर्ण जरी का प्रयोग कम होने लगा व रजत जरी द्वारा उसे प्रतिस्थापित करने के प्रयास किये गये । पर वे असफल रहे । कुटीर उद्योगों की स्थिति पर विचार कर सरकार द्वारा सूरत की जरी निर्माण शाला को शुद्ध स्वर्ण का कोटा दिया गया । स्वाभाविक रूप से पूर्ति मांग से कम होने व मनोवैज्ञानिक प्रभाव के कारण कोटा देने के बावजूद भी इसका मूल्य स्वर्ण नियंत्रण के पूर्व के मूल्य से लगभग ५० - ६० प्रतिशत अधिक ही रहा जो अब तक चला आ रहा है ।

अन्य सामग्री का मूल्य सामान्य मूल्यस्तर के अनुसार ही निरंतर घटता-बढ़ता रहा है । श्रम मूल्य गत तीन चार वर्षों में मांग की अधिकता एवं कोटा के बुनकरों के अन्य उद्यमों में लग जाने के कारण सामान्य मूल्यस्तर की अपेक्षा अधिक बढ़ा है । परन्तु उसके परिणामस्वरूप मोटा कपड़ा बुनने से आय और मसूरिया बुनने से आय में काफी अंतर पड़ गया है जिससे बुनकरों में मसूरिया बुनना सीखने की होड़
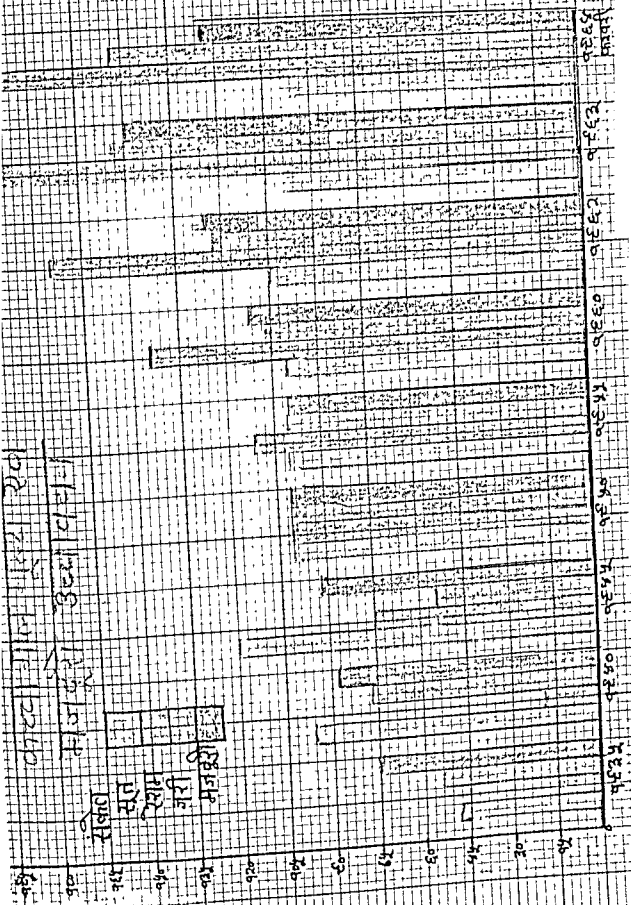
कच्चा माल मूल्य एवं
मजदूरी उच्चावचन

संकेत
सूत
रेशम
जरी
मजदूरी

१९५
१८०
१६५
१५०
१३५
१२०
१०५
९०
७५
६०
४५
३०
१५
०

१९३५ १९४० १९४५ १९५० १९५५ १९६० १९६२ १९६३ १९६४ फरवरी

लग गई है। पहले यह विस्तार कैथून में हुआ और वहां पर सारे बुनकर मोटा कपड़ा बुनना छोड़कर मसूरिया बुनने लगे। बाद में मांग के निरंतर बढ़ते रहने पर कोटा क्षेत्र के अन्य बुनकर केन्द्रों पर भी इसका प्रसार होने लगा। जब तक कैथून में इसका एकाधिकार रहा श्रम का मूल्य निरंतर बढ़ता चला गया परन्तु अब जबकि अन्य बुनाई केन्द्रों पर भी इसका प्रसार हो गया है और व्यापारियों का वहां के बुनकरों से सीधा सम्बन्ध स्थापित हो गया है श्रम का मूल्य दिसम्बर ६३ से एक दम १५ से ३० प्रतिशत तक कम कर दिया गया है। मसूरिया थान जिनकी कि वर्तमान में अधिक मांग है उनकी मजदूरी में साधारणतया १० प्रतिशत कमी की गई है। परन्तु अधिक नक्काशी वाले कामों व साड़ियों की बुनाई में काफी कमी कर दी गई है क्योंकि उनकी मांग सर्दी का मौसम होने से अभी कम हो गई है।

उपरोक्त विवरण की पुष्टि निम्न तालिका से हो जाती है :-

कच्चा माल मूल्य एवं मजदूरी उच्चावचन तालिका

वर्ष	सूत		रेशम		जरी		मजदूरी	
	मूल्य[1]	निर्देशांक	मूल्य[2]	निर्दे०	मूल्य[3]	निर्दे०	मूल्य[4]	निर्दे०
	१	२	३	४	५	६	७	८
१९३५	६)००	४८	-)१५	१५	१)७५	५४	३०)	७५
१९४०	१२)००	९६	-)२०	२०	२)५०	७७	३५)	८८
१९४२	१५)००	१२०	-)३०	३०	२)५०	७७	३६)	९०
१९४५	१५)००	१२०	-)७५	७५	१)७५	५४	३७)	९२
१९४७	१३)००	१०४	१)१२	११२	३)००	९३	३८)	९५
१९५०	१२)५०	१००	१)००	१००	३)२५	१००	४०)	१००
१९५५	१२)५०	१००	१)१२	११२	३)२५	१००	४०)	१००
१९६०	१२)५०	१००	१)४५	१४५	३)५०	१०७	४५)	११२
१९६२	१३)००	१०४	१)७५	१७५	४)००	१२३	५०)	१२५
१९६३(नव० तक)	१२)५०	१००	२)१२	२१२	५)००	१५४	६०)	१५०
दिस०६३ से	--	--	--	--	--	--	५०)	१२५

नोट :- आधार वर्ष = १९५० ।
१ प्रति पौंड, २ प्रति तोला, ३ प्रति तोला, ४ प्रति थान २०० गज ।
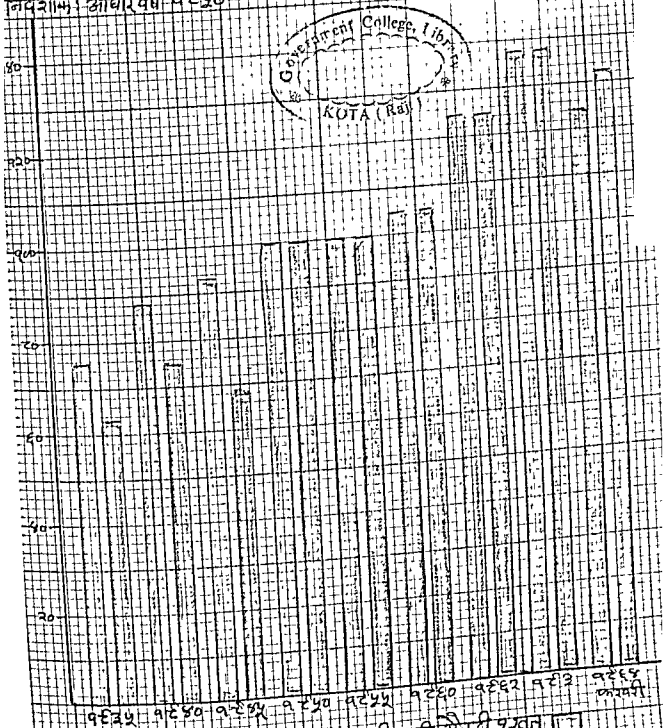
(उपरोक्त तालिका पुराने बुनकरों एवं व्यापारियों से प्राप्त सूचना के आधार पर तैयार की गई है अतः औसतन रूप से मूल्य के उतार चढ़ाव का रूख बताती है)

इस प्रकार गत चार पांच वर्षों में मांग के निरंतर बढ़ने व दूसरी ओर विदेशों से आयात पर नियंत्रण, संकटकालीन स्थिति एवं स्वर्णनियंत्रण के कारण कच्चे माल के मूल्यों एवं मजदूरी में निरंतर वृद्धि हो रही है। १९६३ का ग्रीष्मकाल अब तक के समय में सभी मूल्यों के उच्चतम स्तर का काल रहा है। इसी आधार पर औसतन रूप से सभी मसूरिया उत्पादनों के मूल्यों में वृद्धि हुई है।

नीचे कुछ चुनी हुई उत्पादित किस्मों के मूल्यों में हुये उतावच्चनों को दर्शाया गया है :-

प्रतिनिधि उत्पादन मूल्य उच्चावचन तालिका

आधार वर्ष १९५०

सन्	थान २०० सत		साड़ी जरी चौकड़ी १ सत २ तार	
	मूल्य रुपयों में	निर्देशांक	मूल्य रुपयों में	निर्देशांक
१९३५	३०)००	७५	२५)००	६३
१९४०	३५)००	८८	३०)००	७५
१९४२	३६)००	९०	३१)००	७८
१९४५	३७)००	९३	२७)००	६८
१९४७	३८)००	९५	३५)००	८८
१९५०	४०)००	१००	४०)००	१००
१९५५	४०)००	१००	४०)००	१००
१९६०	४२)००	१०५	४२)००	१०५
१९६२	५०)००	१२५	५०)००	१२५
१९६३	५५)००	१३८	५५)००	१३८
१९६४ जनवरी	५०)००	१२५	५३)००	१३३

इससे स्पष्ट होता है कि मसूरिया उत्पादनों का मूल्य निरन्तर बढ़ता

चढ़ा जा रहा है। १९५० से १९६० का काल सामान्यतः स्थिर मूल्यों का काल रहा है। परन्तु १९६० से पुनः मूल्यों में निरंतर वृद्धि हो रही है। इस वृद्धि के मुख्य कारण बाजार का निरंतर विस्तार, विदेशी विनिमय संकट के कारण आयात पर कठोर नियंत्रण एवं स्वर्ण नियंत्रण है। दिसम्बर ६३ से मजदूरी में कमी के कारण उत्पादनों के मूल्यों में भी कुछ कमी आई है। मजदूरी में कमी का कारण मसूरिया उत्पादन का अनेकों गांवों में विस्तार होने से बुनकरों की संख्या में वृद्धि और शीतकाल होने से मांग में कमी है।

५. सरकार एवं सहकारिता :-

विदेशी विनिमय संकट की इस घड़ी में स्वाभाविक है कि विदेशों से आयात पर प्रतिबंध लगाया जाय फिर भी माल तो आता ही है, + प्र चाहे वह किसी भी स्रोत से प्राप्त हो। यह सरकारी निति की बड़ी असफलता है कि केवल स्वर्ण नियंत्रण के नाम पर बुनकरों को कच्चे माल का २० - २५ प्रतिशत अधिक मूल्य देना पड़ता है। लागत का यह भाग न तो बुनकरों को प्राप्त होता है जो निश-दिन संलग्न हो सर्दी, गर्मी वर्षा की परवाह किये बिना उत्पादन कार्य में निरन्तर संलग्न हो रहे हैं। और न ही यह निर्मित माल की उत्पादन लागत कम करके विदेशों में निर्यात करके विदेशी मुद्रा अर्जन का साधन ही बन पाता है। चाहे सीमित मात्रा में ही कच्चा माल बाहर से आयात किया जाय परन्तु उसकी वितरण व्यवस्था इस प्रकार की होनी चाहिये कि नियंत्रण के नाम पर कोई भी अनुचित लाभ न प्राप्त कर सके। इसके लिये सरकार को चाहिये कि बड़ी मात्रा में जो माल काले बाजार में चला जाता है उसे रोककर सीधा बुनकरों तक पहुंचाने का प्रबन्ध करे। यह बड़े आश्चर्य की बात दृष्टिगत होती है कि सारे उद्योग में केवल मात्र एक सहकारी समिति है, जिसका कि उत्पादन विदेशों में भी बड़ी मात्रा में निर्यात हो रहा है। उसे भी उसकी मांग के अनुसार सूत एवं रेशम वस्त्र आयुक्त एवं केन्द्रीय रेशम परिषद से प्राप्त नहीं होता है। जरी के बारे में तो प्राप्त होने का कोई प्रबन्ध है ही नहीं। सरकार द्वारा जरी उत्पादन के लिये नियंत्रित मूल्यों पर निर्माणशाला को स्वर्ण का कोटा देने पर भी बुनकरों को जरी आज भी लगभग उन्हीं मूल्यों पर प्राप्त हो रही है जो स्वर्ण नियंत्रण के एक दम बाद हो गये थे।

स्वर्ण नियंत्रण के नाम पर बुनकरों को जरी का ५०-६० प्रतिशत मूल्य अधिक देना पड़ रहा है।

इस प्रकार यह बड़ी विडम्बना है कि विदेशी विनिमय एवं स्वर्ण नियंत्रण होने पर भी सूत, रेशम एवं जरी (देशी एवं विदेशी) आवश्यकतानुसार मिलते हैं। परन्तु केवल नियंत्रण के नाम पर लागत का एक बड़ा भाग उन व्यक्तियों की जेबों में पहुंच जाता है जिनकी उसके लिये कोई उपयोगिता नहीं है। सरकार द्वारा कच्चे माल की उपलब्धि की सुव्यवस्था आसानी से या तो बुनकरों की आय २०-२५ प्रतिशत बढ़ा सकती है या उत्पादन का मूल्य कम करके विदेशी विनिमय के अर्जन को प्रोत्साहन दे सकती है। कम से कम उत्पादन के उस भाग के लिये जो विदेशों में निर्यात हो रहा है ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिये कि उसके लिये आवश्यक सम्पूर्ण कच्चा माल उचित मूल्यों पर मिल सके। ताकि उससे या तो उत्पादन की किस्म ऊंची की जाय या विद्यमान किस्म के मूल्यों में कमी कर निर्यात को प्रोत्साहित किया जाय या फिर बुनकरों की आय बढ़ाई जावे।

उत्पादन लागत को कम करने में सरकार का योगदान परमावश्यक है। जिसे सरकार सहकारिता के माध्यम से सुविधापूर्वक कार्यरूप में परिणित कर सकती है। वर्तमान में कुल मांग का केवल २ या ३ प्रतिशत और वह भी सरकारी अधिकारियों की इच्छानुसार किस्म का दे देना कोई महत्व नहीं रखता और वह भी ऐसी समिति द्वारा प्राप्त किया जा सकता है जो कि वास्तव में सहकारी समिति है ही नहीं केवल सहकारिता के नाम पर सरकार द्वारा उपलब्ध किये गये साधनों को प्राप्त करने का एक अच्छा साधन मात्र है। सहकारिता के माध्यम से उठाये गये विभिन्न कदमों की असफलता देखते हुये यही उचित प्रतीत होता है कि आयात किये जाने वाले कच्चे-माल को आयात करने का लाइसेंस व नियंत्रित मूल्यों पर जरी मंगाने का लाइसेंस मसूरिया उत्पादक संघ को दिया जाय। यदि हो सके तो इसमें व्यापारी भी भागीदार बन सकते हैं जिससे उनकी कुशलता ज्ञान एवं शक्ति का सदुपयोग किया जा सके। संघ को इस बात की छूट हो कि वह निश्चित की गई विदेशी मुद्रा से इस उत्पादन के लिये आवश्यक किस्म का माल आयात कर सके। इसके अनुसार ही सहकारी समितियों को अन्तर्गत करघों की संख्यानुसार सहायक पंजीयक, सहकारी समितियां द्वारा या सहकारी समितियों के संघ के संचालकों द्वारा परमिट दिया जाय।

हाल ही में रिजर्व बैंक द्वारा केन्द्रीय सहकारी बैंक द्वारा मसूरिया उत्पादन के लिये कार्यशील पूंजी हेतु ऋण देने पर गारन्टी योजना लागु करने की जो स्वीकृति मिली है उसके अनुसार आशा है कोटा केन्द्रीय सहकारी बैंक जिसके पास अपने पर्याप्त कोष हैं मसूरिया उत्पादक सहकारी समितियों को ऋण दे सकेगा। यह ऋण नकद रूप में सहकारी समितियों को न दिया जाकर सहकारी समितियों के संघ के पास सहकारी समिति के नाम में जमा करा दिया जाना चाहिये जहां से सहकारी समितियां आवश्यकतानुसार मात्रा एवं मूल्य का कच्चा माल उस राशि का प्राप्त कर सकें और मजदूरी चुकाने के लिये आवश्यक नकद राशि भी प्राप्त करलें। और बाद में निर्मितमाल के मूल्य का भुगतान सहकारी समिति को न किया जाकर सीधा केन्द्रीय सहकारी बैंक को कर दिया जाय।

इसके साथ ही इस बात के लिये भी प्रयत्न किये जाने चाहियें कि भारत में ही उच्च कोटि का सूत व रेशम तैयार किया जाय जिससे एक और तो विदेशी मुद्रा की बचत हो दूसरी ओर पर्याप्त मात्रा में तथा उच्च कोटि का उत्पादन करके सस्ते मूल्यों पर विदेशों में निर्यात कर विदेशी विनिमय का अर्जन किया जाय। साथ ही स्थानीय बाजार का विस्तार हो जिससे अनेकों बेरोजगार बुनकरों को रोजगार मिल सके। कोटा में एक जरी उत्पादक लघु उद्योग स्थापित किया जाना चाहिये, जिससे स्वर्णजरी की कमी पूरी हो सके और इस उत्पादन के हेतु कम मूल्यों पर मिल सके। जिससे इसके मूल्यों में या बुनकरों की आय में पर्याप्त कमी या वृद्धि हो।

6. निष्कर्ष :-

मसूरिया उत्पादन की लागत में कच्चा माल और श्रम दो प्रमुख घटक हैं। कच्चे माल के सम्बन्ध में बड़ी कठिनाइयां एवं अमितव्ययतायें हैं जो उत्पादन लागत को २० से ४० प्रतिशत तक बढ़ा देती हैं। इनकी जिम्मेदारी वास्तव में सरकारकी अज्ञान पूर्ण एवं असफल नीतियाँ एवं सहकारी विभाग की अक्रियाशीलता है। यदि इन कठिनाइयों एवं अमितव्ययताओं को कम किया जा सके तो उत्पादन लागत १५ से ४० प्रतिशत तक कम हो सकती है। विपणन में होने वाली अमितव्ययता की मात्रा कच्चा माल प्राप्त करने में होने वाली अमितव्ययता की अपेक्षा कम अधिक है। बुनकरों को पर्याप्त मात्रा उपलब्ध है आवश्यकता उनके समुचित प्रशिक्षण की है। इस प्रकार प्रभावपूर्ण सरकारी कदम एवं सहकारिता का माध्यम ही एक मात्र हल है।

=o=o=o=o=o=o=o=o=o=o=

अध्याय-सप्तम्

वि प ण न

१ मांग का क्षेत्र एवं स्वरूप :-

किसी वस्तु विशेष की किसी क्षेत्र विशेष में या किसी वर्ग विशेष में किसी समय विशेष पर मांग वहां की प्राकृतिक परिस्थिति, रीति रिवाज, फैशन, परम्परा, राजनैतिक स्थिति एवं आर्थिक स्थिति पर निर्भर होती है । तदनुसार ही भारत में अतित काल से ग्रीष्म जलवायु, सादे वस्त्रों का पहनाव, कला की ओर रुचि, राजाओं द्वारा संरक्षण एवं समृद्धता के फलस्वरूप महीन, कुशलता से बुने हुये एवं कलापूर्ण वस्त्रों का उत्पादन होता रहा है ।

पगड़ी, धोती और साड़ी जहां तक प्रमाण मिले हैं प्रागैतिहासिक युग से भारतीय वेशभूषा का अभिन्न अंग रहे हैं । प्रागैतिहासिक युग में इनका स्वरूप पूर्णतः भिन्न था ।[१] उस समय यह कपास से काते कपड़े से न बनकर अन्य किन्हीं वस्तुओं के भिन्न रूपों में बनते थे ऐसा अनुमान किया जाता है । वैदिक काल में वस्त्रों में कपास के प्रयोग के स्पष्ट प्रमाण वेदों में मिलते हैं और साथ ही पगड़ी या उष्णीय व धोती का और पर्दे के विभिन्न अंगों का कई जगह उल्लेख मिलता है ।[२] वैदिक साहित्य में कपास का सर्व प्रथम उल्लेख आश्वलायन गृह्य सूत्र में आया है ।[३] महाजान पद युग में (६४२ ई०पू० से ३२० ई०पू०) महापरि निर्वाण सूत्र के टीकाकार विहित कपास पर टीका करते हुये लिखते हैं कि "बुद्ध का मृत शरीर बनारस के बने कपड़े में लपेटा गया था और वह इतना महीन और गंठकर बुना गया था कि तेल तक नहीं सोख सकता था ।" इस काल में पगड़ी, धोती, दुपट्टा और साड़ी साधारण लोगों की वेशभूषा हो चुकी थी ।[४] इसी प्रकार मौर्यकाल में (ई०पू० तीसरी सदी से पहली सदी तक) भी भारत में बुनाई के साथ नक्काशी भी करघे पर ही बुन ली जाती थी जिसे तीलीकार पद्धति कहा जाता था ।[५] उस समय सूत और रेशम मिलाकर भी

---

१. प्राचीन भारतीय वेषभूषा - डा० मोतीचन्द्र पृष्ठ ३ नं० २ वही पृष्ठ १५, नं० ३ वही पृष्ठ नं० २६, ४. वही पृष्ठ १७, ५. वही पृष्ठ ५१ ।

कपड़ा बुना जाता था जिसे दुकूल या व्यामिश्रान कहा गया है। यह कपड़ा रंग बिरंगे सूतों से भी बुना जाता था (वर्णान्तरासंसृष्ट) उस समय कपड़ों के नाम उनके उत्पत्ति स्थान के आधार पर होते थे जैसे मथुरा का बना माथुर, कलिंग देश का कलिंगक, काशि का काशीक, बंगाल का वांगक, वत्सदेश का वात्सक, महिषदेश का महिषक आदि।[1] भारतीयों के वस्त्र सुनहरे काम वाले व रत्न जटित भी होते थे।[2] शुंगयुग में (ई०पू० दूसरी सदी) कामदार, फालरदार, लंगोतरा, गरारीदार लहरदार आदि विभिन्न प्रकार के अलंकार युक्त, वस्त्र जिन पर फूल पत्तियां बनी होती थी ऐसे साफे व लहरदार, चुन्नदार, आभूषण युक्त, पानाकार आदि पगड़ियां विभिन्न भागों में प्रचलित थी।[3] इसी प्रकार स्त्री वेशभूषा में बुट्टीदार साड़ी, सादी साड़ी, चौड़े किनारे जिनपर चौफुलिया औरसहरेसा की बेलें वाली साड़ी कामदार ओढ़नी, चुन्नदार करोने की साड़ी और चारखाने दार ओढ़नी प्रचलित थी।[4] सातवाहन युग (ई०पू०प्रथम शताब्दी)में प्रायः सभी पुरुष विभिन्न प्रकार की पगड़ियां व धोतियां पहनते थे।[5] जो कि अलग अलग स्थानों पर अलग अलग प्रकार से बांधी जाती थी। स्त्रियां साड़ियां व सिर पर ओढ़नी पहनती थी। कुषाण युग(ई० पहली शताब्दी से तीसरी शताब्दी के प्रारम्भ तक) में सूती कपड़ों का चलन बहुत हो गया था व विभिन्न स्थानों पर[6] बारीक सूत की मलमल, बनती थी और काफी परिमाण में निर्यात होती थी। रोम, भारतीय मलमल का मुख्य बाजार था। वहां अच्छी मलमल को "वेंटस टेक्सटाइलिस"(हवा की तरह कपड़े) और नेबुला कहा जाता था।[7] साधारणतः लोग धोती और दुपट्टा पहनते थे व राजा, मंत्री, कंचुक सेठ आदि पगड़ियां भी पहनते थे।[8] तामिल स्त्रियां उस समय ऐड़ी तक पहुंचती साड़ी पहनती थी। उसके लिए कनक सभाई, तामिल एट्टीन हंड्रेड इयर्स एगो पृ०११० पर लिखा है, कि

"चार वनितायें केवल जांघों के मध्य तक पहुंचती साड़ी पहनती थी जिसका पोत इतना महीन होता था कि शरीर नंगा देख पड़ता था।"[9]

---

१. वही पृष्ठ ५६, २. वही पृष्ठ ६१, ३. वही पृष्ठ ६६, ४. वही पृष्ठ ७१-७२, ५. वही पृष्ठ ७७, ६. वही पृष्ठ ६४, ७ वही पृष्ठ ६४, ८. वही पृष्ठ १०२, ९. वही पृष्ठ १०३।

गंधार में स्त्रियां सारे शरीर को ढकने वाली साड़ी पहनती थी । उस समय यूनानी तथा विदेशी स्त्रियां राजा के अंगरक्षक का काम करती थी । यवनियां घुटनों के ऊपर तक पहुंचता कंचुक व कमर बंद युक्त चुन्नटदार घाघरा पहनती थी । मथुरा में रईस लोग प्रायः कामदार चादरें जिन पर सोने के बुनाकार शीर्ष पट्ट लगे होते थे पहनते थे । विदेशी ईरानी शासक प्रायः टोपियां पहनते थे । मथुरा में स्त्रियां प्रायः ऐड़ी तक पहुंचती साड़ियां और दोनों कन्धों को ढकती हुई नीचे लटकने वाले दुपट्टे पहनती थी ।[1] मध्यकालीन उत्तर और पश्चिम भारत में स्त्रियां प्रायः लहंगा पहनती थी । आचारांग में फालिग नामक वस्त्र का वर्णन आता है जिसके लिये लिखा है "फलिग पगाणनिभा फलिगा बण्हा" यह स्फटिक के समान स्वच्छ और पारदर्शी था ।[2] गुप्तकाल में मथुरा की धोतियां प्रसिद्ध थी । नानाधाम चित्रों में राजकुमार गौतम की कंचुक की धोती और दुपट्टा भी रंगीन महीन और मुलायम थे और किनारों पर सुनहरा काम था, यह बताया गया है । इस युग में कपड़े का इतना गहरा व्यापार था कि बहुत से व्यापारी केवल एक ही किस्म के कपड़े रखते थे ।[3]

इस प्रकार प्राचीन काल में हमारे देश की जलवायु के अनुसार ही अधिकतर नरम और हल्के रहते हैं धोती, दुपट्टा, चादरें, चादर, और साड़ी जलवायु और स्वास्थ्य का पहनावे थे । इसीलिये अधिकतर भारतीय सिले कपड़े नहीं पहनते थे । साधारणतया पुरुष धोती, दुपट्टे और चादरें व स्त्रियां साड़ियां व कहीं कहीं दुपट्टे भी पहनती थी । लेकिन वे बिना सिले कपड़े ही ऐसे कलात्मक ढंग से पहने जाते थे कि जिससे पहनने वाले के सौन्दर्य में अभिवृद्धि होती थी और कपड़े भी बड़े सुहावने लगते थे ।

गुप्त युग में भारतीय संस्कृति का ईरानी, अफगानी, और चीनी संस्कृतियों के साथ व्यापारिक व धार्मिक सम्बन्ध स्थापित हुआ । इसके साथ ही संस्कृति के अन्य पक्षों के समान ही वेशभूषा पर भी प्रभाव पड़े बिना नहीं रहा । बाद में यवनों के आक्रमण हुये व यवन साम्राज्य की स्थापना हुई । चूंकि ये लोग ठंडे मुल्कों से आये थे अतः इनकी वेशभूषा तदनुकूल थी और सिले व ऊन से बने वस्त्रों का उपयो

१. वही पृष्ठ १२२, २. वही पृष्ठ १५०,
३. वही पृष्ठ १३ ।

प्रमुख स्थान था । शासकों की नकल करने की परम्परा के अनुसार भारतीयों ने भी
उनकी वेशभूषा अचकन, कोट, कुर्ते, चुड़ीदार पायजामे, घाघरे, ओढ़ने आदि का
प्रयोग प्रारम्भ किया । जहां जहां मुसलिम प्रभाव अधिक रहा यह प्रभाव बढ़ता चला
गया । अंग्रेजों के शासन काल में उनसे प्रभावित हो उनकी वेशभूषा को अपनाने का
प्रचलन चला परंतु यह वेशभूषा भारतीय जलवायु के अनुकूल न होने के कारण उनके
राज्य काल में एक वर्ग विशेष तक सीमित रही ।

भारतीय संस्कृति की धरोहर के रूप में आज भी भारतीय बुनकर अधिकतर
धोती, साड़ी, दुपट्टा, चद्दर, पगड़ी आदि के लिये ही कपड़ा बुनते हैं । मुसलिम
काल में भी शरीर को सजाने के लिये उपयुक्त बाह्य वस्त्र पगड़ी, दुपट्टा, ओढ़नी
आदि के लिये महीन वस्त्र जिनमें मलमल, चौखाना, और डोरिया प्रमुख थे प्रचलित
रहे । जैसा कि पहले अध्याय में बताया गया है मसूरिया बनावट का उद्गम डोरिया
और चौखाना दोनों बुनावटों के समन्वय से है । यह भी प्रारम्भ से ही अत्यधिक
महीन सूत से बुना जाता रहा है । मुसलमानों में नीचे सम्पूर्ण बदन को ढकने वाला
मोटा वस्त्र पहनकर ऊपर से कलापूर्ण बारीक वस्त्र पहनना प्रारम्भ से ही बड़े घरानों
की परम्परा रही है । अतः चौखाना, डोरिया व नक्काशी की हुई मलमल के वस्त्र
ऊपर से ओढ़ने के लिये पहले से प्रयुक्त किये जाते रहे होंगे । कोटा चूंकि प्रारम्भ से
ही मुसलिम प्रभाव में रहा था अतएव यहां भी वह परम्परा विद्यमान थी । यहां
एक ओर तो चौखाना व डोरिया बुने जाते थे जो ओढ़ने व दुपट्टे के काम आते थे
दूसरी ओर उसी प्रकार के महीन सूत की पगड़ियां व साफे बुने जाते थे । यह सब
उत्पादन प्रारम्भ से ही मारवाड़ के व बम्बई के बाजारों में जाता रहा है । मार-
वाड़ी व बोहरों में एक साथ दो ओढ़ने, ओढ़ने की परम्परा के कारण ऊपर के
ओढ़नों व मारवाड़ियों में पगड़ी वेशभूषा का मुख्य भाग होने से पगड़ी के रूप में
इनका प्रयोग होता रहा है । उच्च कोटि के साफों का उपयोग प्रारम्भ से ही
राज्य घरानों मंत्री, महाजन, साहूकार आदि में विशेष उत्सवोंपर होता रहा है
अतः मसूरिया बुनावट के प्रारम्भ होने पर इससे बुने वस्त्रों का सर्वप्रथम प्रयोग ओढ़नों
व दुपट्टों के रूपमें किया जाने लगा । बाद में पेचों के रूप में भी इसका उपयोग हुआ।
जरी व नक्काशी के लिये जैसा कि बताया गया है यह प्राचीन काल से भारतीय पसंद
रही है । फलतः उच्च किस्म के सूत व रेशम के वस्त्रों में जरी का प्रयोग भारतीय

परम्परा रही है ।

प्रारम्भ में मसूरिया उत्पादनों के प्रमुख ग्राहक देश के विभिन्न भागों में व्यापत मारवाड़ी व बोहरा लोग थे । जहां जहां भी मारवाड़ी थे मसूरिया वस्त्र मंगाया करते थे । बीकानेर, बम्बई व कलकत्ता इसके प्रमुख बाजार थे । स्थानीय उपभोग में अधिकतर सस्ता व सूती मसूरिया ही काम आता था । केवल विवाह शादी एवं अन्य उत्सवों पर कुछ उच्च कोटि के मसूरिया वस्त्र काम आते थे । भारतीय सभ्यता की प्रतीक पगड़ी व धोती राजस्थानियों की वेशभूषा का प्रमुख भाग प्रारम्भ से ही रही है व आज भी है । इसलिये राजस्थान के विभिन्न भाग विभिन्न प्रकार की पगड़ियों के लिये प्रसिद्ध हैं उनमें से कोटा भी बारीक सूत की पाड़ियों जिन्हें पैचा कहा जाता है के लिये प्रसिद्ध रहा है । मारवाड़ में धनी परिवारों में नीचे ओढ़ने के ऊपर पहनने के लिये सूत व रेशम के धागों से बने जरी के काम वाले मसूरिया के ओढ़ने अत्यधिक पसन्द किये गये हैं । धनिक समाज होने से उनके लिये उनका क्रय करना अधिक भारी नहीं पड़ता । इसीलिये उस समय कुल उत्पादन का लगभग ७५ प्रतिशत उत्पादन मारवाड़ में चला जाता था । ऐसा कहा जाता है कि बीकानेर में बड़े से बड़े धनवान से लेकर किसी भी जाति के गरीब से गरीब के यहां भी विवाह के अवसर पर मसूरिया का ओढ़ना देना उत्तम माना जाता है । इस प्रकार रियासत काल में मसूरिया उत्पादन के बाजार की लगभग यही स्थिति चलती रही । उस समय लगभग ८० प्रतिशत उत्पादन ओढ़नों व साड़ियों के लिये, १५ प्रतिशत उत्पादन पाड़ियों के लिये व शेष ५ प्रतिशत उत्पादन अन्य कार्यों के लिये होता था ।

स्वतंत्रता के स्वर्णिम सूर्योदय के साथ भले ही पुरूषों ने अन्धे होकर दासत्व का प्रभाव अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये भारतीय जलवायु के प्रतिकूल पाश्चात्य वेशभूषा की नकल की हो परंतु भारतीय नारियों ने ज्योंही उन्हें नवन ज्ञानरूपी प्रकाश मिला भारतीय संस्कृति के प्राचीन आदर्श साड़ियों को जो यहां की गर्म एवं खुश्क जलवायु के अनुकूल है को अपनाकर अपनी बुद्धिमता का परिचय दिया है । जैसा कि बताया गया है प्राचीन काल में भारतीय महीन परंतु कलापूर्ण साड़ियों को कलात्मक ढंग से पहनते थे। तदनरूप ज्यों ज्यों बाहर के व्यक्तियों को मसूरिया की महीन परंतु कलापूर्ण, आकर्षक व लुभावनी साड़ियों का ज्ञान हुआ इन्हें अपनाया गया । किंतु

सेदका विषय यह रहा है कि इसके प्रचार के लिये व इसको बाहर के व्यक्तियों के ज्ञान में लाने के लिये बुनकरों, सेठियों या सरकार द्वारा कोई प्रयत्न नहीं किये गये हैं। फिर भी स्वाभाविक रूप से कोटा के विकास के साथ साथ व साड़ियों का प्रचलन बढ़ने के साथ साथ एक ओर तो उत्पादन की मात्रा में वृद्धि हुई है और दूसरी ओर थानों की अपेक्षा कलापूर्ण नक्काशी की साड़ियां अधिक बुनी जाने लगी हैं। फलस्वरूप: जहां १९४८-४९ में सम्पूर्ण कोटा विभाग में इसका उत्पादन ४-५ लाख रुपये के लगभग था वह १९५८-५९ में बढ़कर लगभग १४-१५ लाख रुपये का हो गया। इस काल में स्थानीय विक्रय व निर्यात दोनों में वृद्धि हुई है परन्तु स्थानीय विक्रय की अपेक्षा निर्यात में लगभग तीगुनी वृद्धि हुई है।

चर्मण्यवती की महती कृपा से कोटा का भाग्योदय हुआ और उसके साथ ही मसूरिया वस्त्रों का भी। विद्युत उपलब्धि से औद्योगीकरण, (चम्बल बैराज आदि) के कारण एक ओर तो यह यात्रा का केन्द्र हो गया दूसरी ओर शिक्षित एवं उच्चवर्गीय जनसंख्या की वृद्धि हुई जिससे मसूरिया की भेष कीमती व कलापूर्ण साड़ियों की स्थानीय बिक्री बढ़ी। जबसे साड़ियां बाहर गई तो इनका पहनाव भी स्वयं इनके प्रचार का माध्यम बना और तेजी के साथ इनकी बाहर से मांग होने लगी। मांग वृद्धि के साथ साथ ही विभिन्न उपभोक्ताओं की रुचि के अनुकूल विभिन्न प्रकार की कलापूर्ण, रंगीन व जरी की साड़ियां बनाई जाने लगी। मसूरिया साड़ियों की लोकप्रियता का कारण केवल इसकी कलापूर्णता नहीं वरन् इसकी बुनावट हुई क्योंकि गत दो वर्षों में साड़ियों के साथ साथ मसूरिया थानों की भी बाहर से भारी मांग आई है। जिसका कारण यह है कि यहां के बुनकर इनको कलात्मक बनाने में आवश्यक मात्रा में सफलीभूत नहीं हो सके हैं। एतदर्थ, मसूरिया थानों को मंगाकर उनपर विशिष्ट प्रकार की कलात्मक व आकर्षक छपाई और कसीदाकारी करके उनका उपयोग साड़ियों के साथ साथ पाश्चात्य वेशभूषा के सदृश विभिन्न वस्त्रों में भी किया जाने लगा है। स्थानीय व्यापारी वर्तमान में जब बाहर जाते हैं तो मसूरिया कपड़े के विभिन्न उपयोगों को देखकर दांतों तले अंगुली दबा लेते हैं। वर्तमान में ऐसी स्थिति है कि मसूरिया वस्त्रों के उत्पादकों एवं स्थानीय व्यापारियों को भी इस बात का पूर्ण ज्ञान नहीं है कि किस प्रकार से किन रूपों में इसका प्रयोग हो रहा है? अब तक बीकानेर व कलकत्ता ही इसके

उत्पादन के विभिन्न स्वरूपों का बदलता अनुपात
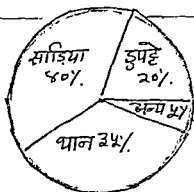
१९५०-५१
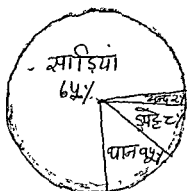
१९६०-६१

१९६२-६३

बाजार थे । लेकिन पर्यटकों की मात्रा में वृद्धि व कानपुर, दिल्ली, बम्बई, इन्दौर
आदि के उद्योगपतियों द्वारा कोटा में उद्योग स्थापित होने से वहां के व्यक्तियों का
कोटा से सम्पर्क व यहां से नमूने के तौर पर मसूरिया साड़ी व थान ले जाना और
बाद में वहां से भारी मांग के कारण दिनों दिन इन स्थानों पर भी निर्यात बढ़
रहा है ।

केवल भारत में ही नहीं गत वर्षों से विदेशों में भी विशेषकर अमेरिका
में इसकी भारी मांग हो रही है । १९६२ में श्रीमती कैनेडी के जयपुर आगमन पर
कैथून की सहकारी समिति द्वारा उन्हें तथा उनकी बहिन को मसूरिया की उत्कृष्ट
कोटि की स्वर्ण वरक जरी कोष पट्टेदार साड़ी भेंट की गई थी । इसके साथ
ही उनके दल के अनेक व्यक्ति मसूरिया की साड़ियां व थान खरीदकर ले गये । तब
से अमेरिका से मसूरिया वस्त्रों की मांग निरंतर आ रही है । जहां तक विदित हुआ
है उसके अनुसार वहां दुपट्टा (स्कार्फ), फ्राक व नृत्य वेशभूषा में इसका प्रयोग किया
जाता है ।

इस प्रकार गत चार पांच वर्षों में मसूरिया उत्पादन लगभग ढाई गुना
हो गया है । ५८-५९ में इसका वार्षिक कुल उत्पादन १४-१५ लाख के लगभग था
जबकि अब ३६ लाख रुपये के लगभग हो गया है । इसकाल में एक ओर तो साड़ियों
के साथ साथ थानों की मांग बढ़ी है दूसरी ओर निर्यात की अपेक्षा स्थानीय बिक्री
में अधिक वृद्धि हुई है जिससे स्थानीय छोटे छोटे दुकानदारों की संख्या में भी पर्याप्त
वृद्धि हुई है । स्थानीय बिक्री में अधिक वृद्धि के दो कारण रहे हैं । प्रथम तो पर्य-
टकों की मात्रा में वृद्धि और दूसरे मांग की अपेक्षा पूर्ति कम होने से बाहर के
व्यापारियों द्वारा यहां आकर क्रय करके ले जाना । इसकाल में साड़ियों व दुपट्टों
में नक्काशी के काम में भी काफी विकास हुआ है ।

वर्तमान में साड़ियों, थानों, दुपट्टों व पेचों का उत्पादन क्रमश: ६०,
३०, ८, व १ प्रतिशत के लगभग है । जबकि १९५०-५१ में यह प्रतिशत क्रमश: ४०,
२०, ३५, व ५ प्रतिशत था । १९६०-६१ में यह प्रतिशत क्रमश: ७५, १५, ८ व २
प्रतिशत के लगभग था । इस समय जरी के काम वाली साड़ियों की अपेक्षा रंगीन
एवं कलापूर्ण साड़ियां अधिक पसन्द की जाती हैं । ... चूंकि यहां के बुनकर इस
कार्य में अधिक दक्ष नहीं हैं और न ही यहां अच्छी एवं आधुनिक छपाई की कोई

मसूरिया उत्पादन एवं विपणन

लाख रुपया

४५
४०
३५
३०
२५
२०
१५
१०
५

३.६५लाख
१४लाख
३७लाख
४५लाख

१९४८-४९
१९५८-५९
१९६२-६३
१९६३-६४ अनुमानित

स्थानीय विक्रय
बाहर निर्यात (देश में)

व्यवस्था है अतः यहां से ४६ इंच चौड़े थान मंगाकर उन पर जयपुर, दिल्ली और बंबई में छपाई या कशीदाकारी करके उनकी साड़ियां बनाई जा रही है। स्थानीय उपभोग के लिए इसकी बिक्री केवल ५०,००० रूपये वार्षिक के लगभग है।

नीचे दी गई तालिका गत १५ वर्षों में इसके उत्पादन व विक्रय मे हुई वृद्धि को स्पष्ट करती है :-

गत १५ वर्षों में
उत्पादन एवं विपणन में वृद्धि दर्शक तालिका

सन्	कुल उत्पादन	स्थानीय विक्रय	निर्यात
	रूपये	रूपये	रूपये
१९४८-४९	३,६५,०००)	९५,०००)	२,७०,०००)
१९५८-५९	१४,००,०००)	२,१०,०००)	११,९०,०००)
प्रतिशत वृद्धि	२८४ प्रतिशत	१२१ प्रतिशत	३४१ प्रतिशत
१९६२-६३	३६,००,०००)	६,००,०००)	३०,००,०००)
१९५८-५९ से ६२-६३ में प्रतिशत वृद्धि	१५८ प्रतिशत	१८५ प्रतिशत	१५२ प्रतिशत
१९४८-४९ से ६२-६३ में प्रतिशत वृद्धि	८८६ प्रतिशत	५३२ प्रतिशत	१०११ प्रतिशत

२- प्रचलित विपरणन पद्वति :-

उत्पादन, वित्त प्रबन्ध और विपणन अन्तर सम्बन्धित घटक है। एतदर्थ विपणन संगठन, उत्पादन संगठन और वित्त प्रबन्ध के ऊपर आधारित रहता है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है मसूरिया बुनकर चार प्रकार से उत्पादन करते हुए पाये जाते हैं :-

१- स्वयं के लिए,

२- सेठियों (मध्यस्थ) या गठरी वालों के लिए,

३- सहकारी समिति के लिए, और

तदनुकूल ही वित्त प्रबन्ध होता है। विपणन प्रक्रिया को हम सुविधापूर्ण

विवरण - पत्र

स्थानीय विक्रय एवं निर्यात (देश के विभिन्न स

क्र०सं०	नाम व्यापारी	१९४८-१९४९			१९५८-५९		
		स्थानीय	निर्यात	कुल	स्थानीय	निर्यात	कुल
१	२	३	४	५	६	७	८
१.	श्री लक्ष्मण दास मदनदास	२००००)	५००००)	७००००)	३५०००)	३हजा०	३हजा०३५ हजार
२.	श्री मथुरा दास गोविंद	२००००)	५००००)	७००००)	५००००)	२हजा० ५०हजा०	३हजा०
३.	श्री प्रेमराज भैरुलाल	२००००)	७००००)	९००००)	५००००)	३हजा०	३हजा० ५०ह०
४.	कोटा वस्त्र भण्डार	३००००)	१०००००)	१३००००)	४००००)	३हजा०	३हजा० ४०ह०
५.	श्री शिवलाल पन्नालाल	--	--	--	--	--	--
६.	कोटा साड़ी स्टोर	--	--	--	१००००)	४०ह०	५०ह०
७.	श्री कल्याणमल सत्यनारा०	--	--	--	--	--	--
८.	साड़ी	--	--	--	--	--	--
९.	साड़ी निकेतन	--	--	--	--	--	--
१०.	बुनकर सहकारी समिति नं० ८२७ कैथून	--	--	--	--	--	--
११.	अन्य	५०००)	--	५०००)	२५०००)	--	२५ह०
	कुल योग	९५०००)	२७००००)	३६५०००)	२१००००)	११हजा० ६०ह०	१४हजा०

नोट :- १. १९४८-४९ एवं ५८-५९ के बारे में सूचनायें जिला सांख्यिकी अधिकारी के व

२. १९६२-६३ के सम्बन्ध में सूचना औसतन एवं अनुमानित है। ३. १९४८-४९ व

के लिए, सेठियों के लिए व व्यापारियों के लिए किया जाने वाला संपूर्ण उत्पादन व्यापारियों के पास आकर एकत्रित हो जाता है।

जो माल धुलाने का होता है उसे व्यापारी व सहकारी समिति कोटा में जो धोबी मसूरिया कपड़े धोते हैं उनसे धुलवा लेते हैं। इस प्रकार संपूर्ण उत्पादन विक्रय के लिए तैयार होता है।

(२) स्थानीय विक्रय :-

स्थानीय विक्रय वर्तमान में कुल उत्पादन का लगभग १६-१७ प्रतिशत होता है। इस विक्रय में भी स्थानीय उपभोक्ताओं का भाग केवल १० प्रतिशत के लगभग ही होता है। बाहरी पर्यटकों, विवाह शादी आदि महोत्सवों पर आने वालों व बाहर के उन व्यक्तियों के लिए जो कोटा में उद्यम कर रहे हैं वापिस जाते समय यह प्रश्न उपस्थित होता है कि कोटा से क्या ले जाया जाये ? इस समस्या का हल मसूरिया की साड़ियां ओढ़नें आदि करते हैं। स्थानीय विक्रय का लगभग ४० प्रतिशत विक्रय इसी प्रकार के उपभोक्ताओं को हो जाता है। इसके साथ ही बाहर से भी व्यापारी स्वयं आकर इच्छानुकूल किस्म का माल प्रतियोगी दरों पर खरीद कर ले जाते हैं। स्थानीय विक्रय का लगभग ५० प्रतिशत विक्रय इस प्रकार बाहर के व्यापारियों को होता है।

(३) निर्यात :-

बाह्य बाजारों में परम्परा से बीकानेर क्षेत्र (संपूर्ण मारवाड़) व कलकत्ता इसके प्रमुख बाजार रहे हैं। वर्तमान में देश के सभी बड़े बड़े नगर दिल्ली, बंबई, मद्रास, इन्दौर, जयपुर, जोधपुर, मन्दसौर, नागपुर और मारवाड़ के सेठ लोगों के निवास स्थान नागौर, झुन्झुनू आदि इसके प्रमुख बाजार हैं। जहां जहां भी मारवाड़ी रहते हैं या जहां से कोटा के व्यापारियों के व्यापारिक संबंध है मसूरिया वस्त्र भेजे जाते हैं। बाहर संपूर्ण निर्यात डाक द्वारा होता है। बंबई व दिल्ली वर्तमान में विकसित हो रहे हैं, बड़े बाजार हैं। निर्यात अबतक साधारणतया व्यापारी और सहकारी समिति ही करती थी परन्तु अब कुछ सेठिये भी करने लगे हैं किन्तु यह मात्रा बहुत कम है। साथ ही एक फर्म में जो अब तक बीकानेर व कलकत्ता में मसूरिया कपड़ों का व्यापार करती थी कोटा में अपनी दुकान खोल ली है। यह यहां से मेढ़ियों से क्रय करके या बुनकरों से बुनवाकर

बसी दुकानों पर बीकानेर व कलकत्ता में भेज देती है। समय समय पर कोटा के कुछ व्यापारी भी इधर से सामान लेकर दिल्ली बंबई आदि जाते हैं और वहां पर उस सामान को बेच आते हैं और उधर से कच्चा माल क्रय करके ले आते हैं।

(४) सहकारी समिति द्वारा विक्रय:-

बुनकर सहकारी समिति नम्बर ८२७, कैथून अपने उत्पादन का लगभग संपूर्ण भाग निर्यात करती है। राजस्थान राज्य बुनकर सहकारी संघ लिमिटेड, जयपुर अखिल भारतीय हाथ कर्घा एवं हस्त कला निर्यात निगम लिमिटेड, कलकत्ता, हेन्डलूम हाउस दिल्ली और अखिल भारतीय हाथ कर्घा वस्त्र विक्रय समिति इसके प्रमुख ग्राहक हैं। इसके अलावा समय समय पर विभिन्न नगरों में स्थित सहकारी हाथ कर्घा वस्त्र विक्रयालयों एवं विक्रय गृहों से भी मांग आती रहती है जिसकी पूर्ति इसी सहकारी समिति द्वारा की जाती है। अखिल भारतीय हाथ कर्घा वस्त्र समिति के फुटकर विक्रयालय भारत में बंबई, मद्रास, नयी दिल्ली व कलकत्ता में और विदेशों में अदन, बैंकाक, कोलम्बो, कुवा, लुम्पुर एवं सिंगापुर में है। लगभग इन सभी स्थानों पर मसूरिया उत्पादन विक्रय हेतु उपलब्ध होते हैं। सहकारी समिति द्वारा किये जाने वाले उत्पादन का लगभग ५० प्रतिशत भाग राजस्थान राज्य बुनकर सहकारी संघ लिमिटेड के जयपुर स्थित विक्रयालय द्वारा क्रय किया जाता है। सहकारी समिति को यह माल साधारणतया साख के आधार पर भेजना पड़ता है। इसके लिए इसे न तो अग्रिम मिलता है और न ही वी०पी० पी० द्वारा ही भेजा जाता है। सहकारी समिति सीधा निर्यात नहीं करती है।

(५) विदेशों को निर्यात:-

इस संबंध में कोटा में सही सही सूचना उपलब्ध नहीं हो पायी है क्योंकि न तो सहकारी विभागों में ही नहीं निर्यात संबंधी कार्यालयों में मसूरिया उत्पादनों का हाथकर्घा वस्त्रों में अलग से श्रेणीयन किया गया है और न ही निर्यात सीधा यहां के व्यापारियों द्वारा होता है। लेकिन यह निश्चित है कि सहकारी एवं निजी दोनों आधारों पर मसूरिया वस्त्रों का निर्यात अवश्य होता है। अमेरिका में इस समय उच्च कोटि के मसूरिया थानों की भारी मांग बताई जाती है जिसकी पूर्ति केवल बुनकर सहकारी समिति नं० ८२७ कैथून के माध्यम

उत्पादन के विभिन्न स्वरूप
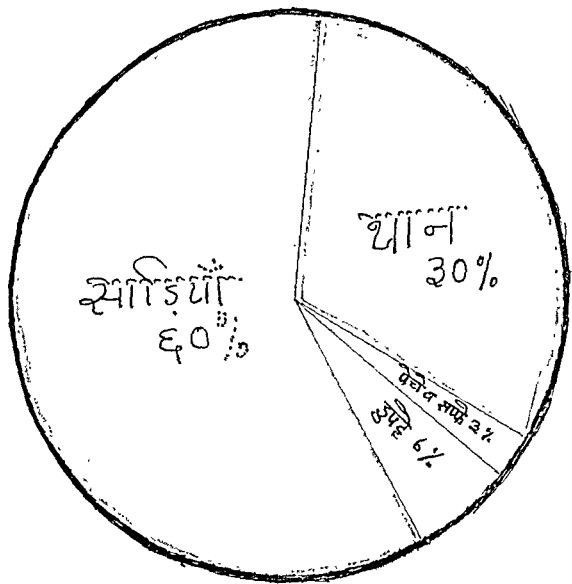
से होती है । विदेशों को निर्यात अखिल भारतीय हाथ करघा वस्त्र विक्रय समिति एवं अखिल भारतीय हाथ करघा एवं हस्त कला निर्यात निगम करता है । विदेशों को निर्यात से पूर्व मसूरिया थानों पर जयपुर, दिल्ली व बंबई में उत्कृष्ट कोटि की छपाई की जाती है ।

फलत: कोटा में मसूरिया वस्त्रों के व्यापारियों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है और जो पुराने व्यापारी है उनका विक्रय भी निरंतर बढ़ रहा है । संलग्न तालिका मुख्य मुख्य व्यापारियों का स्थानीय एवं निर्यात द्वारा विक्रय और उसमें हुई वृद्धि को दिग्दर्शित करती है ।-

३- उत्पाद के विभिन्न स्वरूप :-

मसूरिया उत्पादन खतों की मात्रा, जरी, रंगीन सूत, पूना रेशम, मर्सराइज्ड के विभिन्न रूपों में प्रयोग व फूल पत्ती के काम के अनुसार विविध प्रकार के होते हैं । प्रचलित नामों को ध्यान में रखते हुए इनका क्रमबद्ध श्रेणीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है ।-

(१) थान :-

थानों की लंबाई चौड़ाई निश्चित होने और केवल सादा सूत व रेशम ही प्रयोग होने पर खतों की मात्रा १८० से ४०० तक (पांच पांच के अन्तर से) हो सकने के कारण श्रेणीकरण का एकमात्र आधार खत ही होते हैं । इसी आधार पर श्रेणीकरण किया जाता है । थान ३६ इंच , ४० इंच व ४६ इंच चौड़े इस प्रकार से मुख्य तीन प्रकार के होते हैं । लम्बाई सभी थानों की १२ गज होती है। यह तीनों प्रकार के थान १८० खत से ४०० खत तक के बुने जा सकते हैं । साधारण-तया २०० से २२० खत के थान बुने जाते हैं । थानों के संबंध में बूंदी का स्थान सर्व प्रथम है । वहां के बुनकर उच्च कोटि के ३५० खत तक के थान वर्तमान में भी बुन रहे हैं । इस समय ३६ इंच चौड़े थानों की मांग सर्वाधिक है ।

(२) पेचे या साड़ियां:-

पेचों में लम्बाई के साथ साथ खतों में भी अन्तर पाया जाता है । इसलिए प्रचलित पेचों के उत्पादन का श्रेणीकरण उपरोक्त आधार पर निम्न प्रकार से

श्रेणीकरण किया जा सकता है :-

१५ गज --- १८ सूत, २० सूत, २२ सूत, २४ सूत, २६ सूत ।

१८ गज --- १८ सूत, २० सूत, २२ सूत, २४ सूत, २६ सूत, २८ सूत एवं ३० सूत।

२० गज --- २० सूत, २२ सूत, २४ सूत, २६ सूत, २८ सूत, एवं ३० सूत ।

२२ गज --- . . . . . .

२४ गज --- . . . . . .

२६ गज --- . . . . . .

२८ गज --- . . .

३० गज --- . . .

(३) साफे :-

साफों में सूतों की मात्रा व जरी के उपयोग में विविधता पायी जाती है । एतदर्थ उसी के अनुसार श्रेणीकरण किया जा सकता है ।

१८० सूत --- जरी चौकड़ी :- १ सूत, २ सूत, ३ सूत, ४ सूत ।

२०० सूत --- . . . . .

२२० सूत --- . . . . .

साफे साधारणतया २७ गज लम्बे व एक गज चौड़े बनाये जाते हैं ।

(४) साड़ियां व दुपट्टे :-

वेशभूषा में निरंतर परिवर्तन युग की परम्परा रही है । शिक्षा के प्रसार के साथ साथ भारत में भी साड़ियों का प्रचलन निरंतर बढ़ता चला जा रहा है । तदनुकूल ही विविध प्रकार की साड़ियां विविध आकार प्रकारों में देश के विभिन्न भागों में बुनी जा रही है । वास्तविक रूप में तो साड़ी उत्पादन को ही इस बात का श्रेय दिया जा सकता है जिसके कारण हाथ कर्घा उद्योग में हस्तकला जीवित रह सकी और निरंतर विकास कर रही है । साड़ियां वर्तमान समय में विश्व में सबसे उत्तम कोटि की स्त्री वेश भूषा है, क्योंकि यही एकमात्र वस्त्र है जो अकेला सम्पूर्ण शरीर को ढक सकता है । साथ ही सुहावना लगता है और सभ्यता का प्रतीक है । मसूरिया साड़ियों में सादा सूत व रेशम, रंगीन सूत व रेशम, जरी,

मर्सराइज्ड आदि का विविध प्रकार से उपयोग कर विभिन्न आकार प्रकार का माल उत्पादित किया जाता है। साड़ियों व दुपट्टों में लगभग वही अलंकार प्रकार व रुपांकन होता है। केवल आकार भिन्न भिन्न होता है। केवल कुछ रुपांकन ऐसे हैं जो साड़ियों में होते हैं परन्तु दुपट्टों में नहीं होते।

वर्तमान में साड़ी के मध्य भाग में पट्टा, चौकड़ी, चौखाना और जरीकोशाँ (टीशु) का रूपांकन किया जाता है। पट्टा भी तीन प्रकार से डाला जाता है। इसी प्रकार चौकड़ी, चौखाने आदि भी कितने ही प्रकार के डाले जाते हैं। प्रचलित प्रकार निम्न हैं :-

पट्टा

१- सादा पट्टा:- इसमें पूरी लंबाई में तीन-तीन इंच चौड़े विविध रंगों के पट्टे बनाये जाते हैं।

२- बंगला पट्टा :- इसमें दो प्रकार के पट्टे एक एक क्रम से डाले जाते हैं। प्रथम पट्टे में एक ही रंग के सारे धागे एक साथ आ जाते हैं और दूसरे में बीच बीच में थोड़े थोड़े अन्तर पर दूसरा रंग देकर धारियों के रूप में पट्टा डाला जाता है। यह धारियां तीन, चार या पांच होती है।

३- घाघरा पट्टा:- इसमें लम्बाई में केवल एक ओर की ओर ६ इंच चौड़े भाग में क्रम से किनार की ओर बढ़ती चौड़ाई के पट्टे डाल दिये जाते हैं जिससे यह घाघरा या लहंगा के निचले भाग के समान हो जाता है। शेष मध्य भाग सादा रहता है। यह पट्टा केवल साड़ियों में डाला जाता है और इस पट्टे की बुनी साड़ियां केवल एक ओर से पहनी जा सकती हैं।

४- पट्टे सब रंगीन सूत व रेशम का प्रयोग कर बनाये जाते हैं। पट्टेदार साड़ी में किनारों पर ढाई-तीन इंच चौड़ी मर्सराइज्ड या पूना रेशम की किनार बनाई जाती है। पट्टेदार साड़ियां सादी भी होती है और कुछ में जरी की चौकड़ियां भी डाल दी जाती है। सामान्यतः सस्ती होने से इनमें कुछ जरी का काम नहीं दिया जाता है। अगर आवश्यकता हो तो किनार पर ही कोई डाली जाती है।

चौकड़ी

सफेद या हल्के रंग की साड़ियों में जरी की चौकड़ियां डाली जाती है। चौकड़ियां दो प्रकार की होती हैं।

१- जरी चौकड़ी:- इसमें जरी के दो या चार तार एक साथ एक सत, दो सत, तीन सत, चार सत, पांच सत की दूरी पर समान रूप से लम्बाई व चौड़ाई में डाल दिये जाते हैं जिससे वर्गदार चौकड़ियां सम्पूर्ण साड़ी में बन जाती हैं।
२- बंगला चौकड़ी :- इसमें एक साथ दो प्रकार की चौकड़ियां बड़े आकार में डाली जाती है। प्रथम प्रकार की चौकड़ी में वर्गदार चौकड़ी के समान हो जरी के तार एक साथ डाले जाते हैं और दूसरे प्रकार की चौकड़ी में उनके मध्य थोड़ा-थोड़ा अन्तर ल रख लिया जाता है जिससे तीन, चार या पांच धारियों की चौकड़ी बन जाती है। बंगला चौकड़ी बड़े आकार की होती है। यह दस से बीस तक के अन्तर पर डाली जाती हैं, जिससे कुल चौड़ाई में ७ से १२ तक चौकड़ियां बन जाती हैं।

२--३ें

चौखाना

चौखाना साड़ी में रंगीन सूत के पट्टे लम्बाई व चौड़ाई दोनों में डाल देने से चौखाने बन जाते हैं। इसकी किनार भी मर्सराइज्ड या पूना रेशम को २।।-३ इंच चौड़ी होती है। इसके साथ साथ ही जरी की चौकड़ियां भी डाल दी जाती हैं।

जरी कोण

जरी कोण(टिशू) साड़ियों में ताना तो सूत व रेशम का ही होता है परन्तु बाने (चौड़ाई) में केवल जरी व रेशम के धागे डाले जाते हैं क्रांत सूत के स्थान पर जरी से सत व सत बनाये जाते हैं। यह सादी व पट्टेदार २ प्रकार के होते हैं। पट्टेदार में कोणों में जरी के प्रयोग के साथ साथ जरी के बहुत से तार एक साथ डालकर जरी के पट्टे भी बनादिये जाते हैं। इनमें स्वर्ण जरी या रजत जरी प्रयोग की जाती है जिससे जरी कोण साड़ियां चार प्रकार की हो जाती हैं।

सूती पट्टों की तरह ही सूत के स्थान पर पूना रेशम काम लेकर साड़ी भी बुनी जाती है। इसे पूना रेशम पट्टीदार बोलते हैं। यह सादा भी बुना जाता है और जरी चौकड़ी या बंगला चौकड़ी भी डाल दी जाती है।

उपरोक्त रूपांकनों के साथ साथ ही चौड़ी किनार वाली साड़ियों में

किनार पर व वर्गदार जरी चौकड़ी वाली साड़ियों में चौकड़ियों के बीच फूल पत्ती भी बनाये जाते हैं।

इस प्रकार वर्तमान में प्रचलित मसूरिया साड़ियों का निम्न प्रकार से श्रेणीकरण किया जा सकता है :-

१- साड़ी जरी किनार,

२- साड़ी चौखाना पट्टा,

३- साड़ी सूती पट्टा,

४- साड़ी बंगला पट्टा,

५- साड़ी घाघरा पट्टा;- (क) घाघरा पट्टा सूती
(ख) घाघरा पट्टा जरी

६- साड़ी जरी चौकड़ी :-
(क) १ खत:- २ तारी या ४ तारी,
(ख) २ खत:- २ तार वाली या ४ तार वाली,
(ग) ३ खत:- २ तार वाली या ४ तार वाली,
(घ) ४ खत:- २ तार वाली या ४ तार वाली,
(च) ५ खत:- २ तार वाली या ४ तार वाली ।

७- साड़ी बंगला चौकड़ी:-
(क) तीन धारी, (ख) चार धारी, (ग) पांच धारी ।

८- साड़ी जरी कोण :-
(क) स्वर्ण जरी कोण : (१) सादा, (२) पट्टे दार
(ख) रजत जरी कोण : (१) सादा, (२) पट्टे दार

९- साड़ी पूना रेशम पट्टेदार,

१०- फूल दार :-
(क) बिना जरी,
(ख) जरी दार :- (१) जरी चौकड़ी फूलदार:२,३,या ४ खत
(२) बंगला चौकड़ी फूलदार

दुपट्टे २।। गज लम्बे व २। गज चौड़े होते हैं, इसके लिए एक-मन ४० इंच चौड़ाई में कपड़ा बुना जाता है। इनमें साधारणतया जरी चौकड़ी, बंगला चौकड़ी

स्वर्ण जरी कोण, रजत जरी कोण , जरी चौकड़ी फूलदार और बंगला चौकड़ी
फूलदार बनाये जाते हैं ।

१- विपणन संबंधी समस्यायें:-

(क) आवागमन के साधन :-

मसूरिया उत्पादन के लगभग सभी केन्द्र कोटा जिला के मुख्य कस्बे हैं ।
ये सब मध्य एवं दक्षिणी भाग में केन्द्रित है अतः कोटा से मोटर मार्ग द्वारा
सुसंबंधित हैं । केवल कोड़सुवां , मंडावरा और मोरपा ऐसे ग्राम हैं जो
मुख्य सड़क से दूर है और जहां पर आना जाना कठिनाई से भरा हुवा है । ये
तीनों ग्राम कोटा बड़ौद सड़क पर मुख्य सड़क से ४-५ मील दूर हैं । कोटा-मांगरोल
कोटा-बारां, कोटा-खानपुर जिले के इन तीन मुख्य सड़क मार्गों पर और इनके आस
पास ही सम्पूर्ण मसूरिया उत्पाद केन्द्र स्थित है । कोटा स्वयं भी पश्चिमी रेल्वे
की दिल्ली-बंबई बड़ी लाईन व कोटा-बीना लाइन का मुख्य जंक्शन है । अतः
उत्पादन को बाहर भेजने में कोई असुविधा या देरी नहीं होती है । अधिकतर
निर्यात डाक पार्सल द्वारा ही किया जाता है क्योंकि यह उत्पादन हल्का व काफी
मूल्यवान होता है । इस प्रकार आवागमन के सम्बन्ध में कोई विशेष कठिनाई नहीं
है । केवल कोड़सुवां ऐसा ग्राम है जहां पर मसूरिया बुनकरों की संख्या अधिक है
परन्तु वर्तमान में नहरों के कारण कच्चे सड़क मार्ग बिगड़ जाने से वहां पर पहुंचना
कठिन व असुविधाजनक हो जाता है । मोरपा व मंडावरा में बुनकरों की संख्या
अत्यल्प होने से उनके संबंध में कोई विशेष बात नहीं है ।

(ख) श्रेणीकरण:-

उत्पादक व उपभोक्ता के मध्य निरंतर बढ़ते हुए अन्तर ने स्वाभाविक
रूप से एक ऐसी प्रणाली को जन्म दिया है कि जिसके कारण उपभोक्ता बड़े
पैमाने पर उत्पादित विविध प्रकार की वस्तुओं में से मनवांछित प्रकार की वस्तु
का चुनाव आसानी से कर लेता है । उत्पादक व उपभोक्ता के प्रत्यक्ष संयोग के
कारण सामान्यतः कुटिर उद्योगीय उत्पादन में श्रेणीकरण की विशेष आवश्यकता
प्रतीत नहीं होती । परन्तु कुटीरउद्योगीय उत्पादनों में भी उच्च कोटि की वस्तुओं

के संबंध में जिनका बाजार विस्तृत क्षेत्र में फैला हुआ हो और मध्यस्थों की एक लंबी श्रृंखला विद्यमान हो, श्रेणीकरण आवश्यक हो जाता है। मसूरिया वस्त्रों का उत्पादन तो केवल कोटा विभाग के सीमित क्षेत्र में होता है परन्तु इसके उपभोक्ता भारत के कोने कोने व विदेशों में भी विद्यमान है। अतः श्रेणीकरण परमावश्यक हो जाता है। सहकारी विभागों द्वारा संचालित विक्रयालयों द्वारा विक्रय को सुविधापूर्ण बनाने के लिए इसकी अत्यधिक आवश्यकता है।

मसूरिया उत्पादनों का श्रेणीकरण आसानी से किया जा सकता है जिसका वर्णन पहले कर दिया गया है। श्रेणीकरण संभव हो सकने पर भी प्रमापीकरण के अभाव में उसका महत्व कम रह जाता है।

(ग) प्रमापीकरण :-

किस प्रकार की श्रेणी में किस प्रकार से सूत रेशम व जरी का प्रयोग किया जाय, किस किस्म का कच्चामाल काम में लाया जाय, किस श्रेणी के लिए कितने खतों की बुनावट बुनी जाय आदि सब बातें तय हो जाने पर ही मसूरिया उत्पादनों का वृहद् प्रमापीय उत्पादनों के समान वैज्ञानिक श्रेणीकरण एवं प्रमापीकरण हो सकता है जिससे दूरस्थ स्थानों पर भी मध्यस्थों की लंबी श्रृंखला होते हुए भी विपणन एवं उपभोक्ताओं की मांग के अनुसार उत्पादन सरल हो जाता है। परन्तु मसूरिया उत्पादनों के संबंध में निश्चित प्रमापीकरण का अभाव है। प्रमापीकरण हो सकता है परन्तु नये नये व्यापारियों के प्रवेश व उनमें आपसी प्रतियोगिता के कारण उसी श्रेणी का माल हल्की किस्म का तैयार करने की परम्परा चल गयी है जिसको प्रतिबंधित करना संभव नहीं है। सहकारी समिति को कमसे कम इस क्षेत्र में आगे आकर उनके उत्पादनों के संबंध में प्रमापीकरण करना चाहिए।

(घ) प्रचार एवं विज्ञापन :-

वर्तमान युग व्यावसायिक भाषा में प्रचार का युग (एज ऑफ प्रोपेगेन्डा) कहा जाता है, क्योंकि आज के युग में किसी भी वस्तु का बाजार उसके प्रचार एवं विज्ञापन पर निर्भर है। विज्ञापन में वह चुंबकीय शक्ति है जिसके फलस्वरूप उपभोक्ता की रुचि में परिवर्तन हो सकता है, एक ही वस्तु के प्रति रुचि बनी

रह सकती है और उसके उपभोग में भी वृद्धि हो सकती है। मसूरिया उत्पादनों के संबंध में प्रचार का लगभग अभाव ही है। स्थानीय और बाहरी बाजारों में प्रचार एवं विज्ञापन के लिए सरकार, व्यापारियों, सहकारी समिति, बुनकरों किन्हीं के भी द्वारा प्रभावपूर्ण कदम नहीं उठाये गये हैं। बाहर से आने वाले पर्यटक ही इसके प्रचार का एकमात्र साधन है। जयपुर, दिल्ली, बंबई, कलकत्ता आदि नगरों में स्थापित सहकारी एवं सरकारी विक्रयालयों पर इसका प्रदर्शन किया जाता है लेकिन यह पर्याप्त एवं प्रभावपूर्ण कदम नहीं है। इसके साथ ही सहकारिता, विकास एवं हस्तकला से संबंधित प्रदर्शनियों में इसका प्रदर्शन किया जाता है। यहां तक कि बुनकरों को दर्घे पर बुनते हुए बताया जाता है यह एक आकर्षक एवं प्रभावपूर्ण साधन है परन्तु अभी तक मसूरिया वस्त्रों के संबंध में इसका व्यापक रूप से प्रयोग नहीं किया गया है। बुनकर सहकारी समिति नम्बर ८२७ का मसूरिया के प्रचार कार्य में महत्वपूर्ण योगदान है। इस समिति द्वारा समय समय पर श्रीमती कैनेडी को जयपुर में मसूरिया साड़ी, प्रधान मंत्री श्री जवाहर लाल जी नेहरू को, राजस्थान के भूतपूर्व राज्यपाल श्री गुरुमुख निहाल सिंह, राजस्थान के मुख्य मंत्री श्री मोहन लाल सुखाड़िया एवं वर्तमान राज्यपाल श्री डा० सम्पूर्णानन्द आदि बड़े बड़े व्यक्तियों को कैथून आगमन पर मसूरिया के साफे भेंट किए गये हैं। इन सबके कारण अच्छा प्रचार कार्य हुआ है। स्थानीय व्यापारियों में से कुछने छपी हुई थेलियाँ आदि के द्वारा भी विज्ञापन करने का प्रयत्न किया है। परन्तु यह सब प्रयत्न पर्याप्त नहीं है। मसूरिया उत्पादनों के संबंध में पर्याप्त कुशल एवं वैज्ञानिक ढंग से प्रचार इनकी मांग में आशातीत वृद्धि कर सकते हैं। ~~इसके लिए~~ इसके लिए कुछ सुझाव निम्न हैं:-

(१) इसके लिए राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय एवं प्रान्तीय स्तर की प्रदर्शनियों में इनका प्रदर्शन किया जाना चाहिए। प्रदर्शन में उत्कृष्ट कला पूर्ण वस्त्र होने चाहिए और उनकी बारीक बुनावट व अन्य विशेषताओं के बारे में दर्शकों को परिचय कराया जाना चाहिए।

(२) कोटा में व्यापारियों को अपने परम्परागत ढांचे को छोड़कर दुकान पर प्रदर्शन कक्ष बनाने चाहिए और उनमें सजावट करनी चाहिए ताकि देखने वाले स्वयं आकर्षित हो जाय।

(३) सिनेमा में स्लाइड के द्वारा और समाचार पत्रों में विज्ञापन किया जाना चाहिए । स्थानीय प्रचार की अपेक्षा बड़े बड़े नगरों में व विदेशों में प्रचार कार्य होना अधिक आवश्यक है जिनका यह उपयुक्त माध्यमने है ।
(४) सरकार को भी इस ओर ध्यान देना चाहिए व इसका प्रचार विदेशों में और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की प्रदर्शनियों में इसकी विशेषताएं बताते हुए करना चाहिए । समृद्ध देश जहां पर सबसे भिन्न व नये वस्त्र पहिनने की होड़ लगती है इसका अच्छा बाजार हो सकते हैं । क्योंकि यह कपड़ा आकर्षक और अपने ढंग का निराला है जो मिलों में पैदा नहीं हो सकता परन्तु विभिन्न आकार प्रकार व रूपांकन का हो सकता है और उसका प्रमापीकरण व श्रेणीकरण संभव है । इस प्रकार विज्ञापन एवं प्रचार द्वारा यह विदेशी मुद्रा अर्जन का अच्छा एवं स्थायी माध्यम बन सकता है ।

(ह०) प्रतियोगिता :-

व्यापारियों की सीमित संख्या, श्रेणीकरण एवं प्रमापीकरण के कारण व्यापारियों में प्रतियोगिता पाई जाती है । मसूरिया उत्पादनों के बाजार में व्यापारियों में प्रतियोगिता पाई जाती है । फलस्वरूप व्यापारी निर्मित माल पर केवल ८ से १० प्रतिशत लाभ लेकर कार्य कर रहे हैं । परन्तु बिक्री शीघ्र होने से उन्हें अपनी विनियोजित पूंजी पर वर्ष भर में पर्याप्त लाभ मिल जाता है ।

गत कुछ वर्षों में नये नये व्यापारियों के बाजार में आने से जिनका अधिकतर विक्रय स्थानीय है और जो आंशिक रूप से अन्य प्रकार की वस्तुओं के साथ साथ मसूरिया वस्त्रों में व्यापार करते हैं उनके ~~ररर~~- द्वारा अपने बाजार की वृद्धि और पुराने व्यापारियों के समक्ष प्रतियोगिता में टिकने के लिए किस्म में निकृष्टता लाने ~~के~~ के प्रयास किये गये हैं जिनका अनुसरण प्रतियोगिता के कारण अन्य व्यापारी भी करते हैं । यह कार्य उद्योग की साख एवं प्रतिष्ठा के लिए अनुपयुक्त व अज्ञानक है । परन्तु विवशता है कि वर्तमान में सरकारी हस्तक्षेप इतना प्रभावपूर्ण नहीं हो सकता है कि इसे पूर्णतः रोक दे ।

(५) सरकार एवं सहकारिता :-

सहकारिता आन्दोलन गांवों के पुराने संगठित जीवन के पुनरुत्थान और

और उसकी शक्ति के सुसमर्थ पुनर्स्थापन का एक साधक साधन है। वित्त-प्रबन्ध के साथ साथ विपणन के क्षेत्र में भी सहकारिता द्वारा जो कुछ किया गया है वह सतह खरोंचने के बराबर है। स्वतंत्रता के पश्चात इस क्षेत्र में सरकार द्वारा काफी प्रयत्न किये गये हैं परन्तु उनका कार्यकरण अभी भी नाम मात्र को ही है। मसूरिया जैसे उत्पादन के लिए जिसकी अपनी विशेषताओं के कारण मध्यस्थों की लंबी श्रंखला विद्यमान है विपणन की सस्ती व सुलभ सुविधाएं उपलब्ध न होने तक क्ला जैसे वास्तविक स्वामियों की वही परम्परागत शोषणीय अवस्था बनी रहेगी। विपणन की सस्ती व सुलभ सुविधाएं तब तक उपलब्ध नहीं हो सकती जब तक कि सरकार आगे बढ़कर आत्मसहायता के मार्ग को प्रोत्साहन एवं सहयोग एवं संरक्षण देकर, नियंत्रण करके नहीं, पूर्ण एवं दीर्घजीवी नहीं बना देती। जब तक ऐसा न हो सरकार को ही इस कार्य में हाथ बंटाना होगा।

किसी भी विशाल संगठन की सुदृढ़ता, कार्यक्षमता एवं सफल अस्तित्व उसकी छोटी से छोटी इकाई की सुदृढ़ता, कार्यक्षमता, मितव्ययता और आत्म सहायता पर निर्भर होता है। सरकार द्वारा प्रान्तीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर विद्यालय स्थापित किए गए हैं जो अपर्याप्त तो हैं ही परन्तु उनकी कार्यक्षमता का भी पूरा पूरा उपयोग नहीं किया जा रहा है। इसका मूल कारण प्राथमिक सहकारी समितियों का अभाव है। प्राथमिक विपणन सहकारी समितियों का अभाव इसलिए है क्योंकि विपणन से पूर्व सहकारी समिति के लिए या सदस्यों द्वारा स्वयं के लिए उत्पादन होना आवश्यक है जोकि कच्चे माल की उपलब्धि की महान समस्या व वित्त प्रबन्ध की पर्याप्त व समुचित व्यवस्था के अभाव में स्वाभाविक रूप से असंभव है। यदि कुछ बुनकर मिलकर ऐसा करने का प्रयास भी करते हैं तो गरीब व अशिक्षित होने से हमारी गुलामी के मूल अंग्रेजी भाषा में पत्र व्यवहार के थपेड़ों द्वारा इस प्रकार से धकेले जाते हैं कि उनके लिए स्वनिर्भर हो खड़े रह सकना असंभव हो जाता है। इसे हम राष्ट्र का दुर्भाग्य कहें और नहीं तो क्या कि जहां जनता की खून पसीने की कमाई के करोड़ों रूपये पानी की तरह सहकारिता, विकास, हिन्दी भाषा आदि के नाम पर खर्च किए जा रहे हैं, वहां हमारे गरीब, दलित एवं अशिक्षित मजदूरों

से इस विदेशी जुड़े के माध्यम से, जिसका पूर्ण ज्ञान उन्हें १०० वर्ष में भी नहीं हो सका।भारत के संविधान की परवाह किये बिना स्वतंत्रता के १६ वर्ष बाद भी सम्पर्क स्थापित कर उनके विकास के खोखले सपने साकार करने का प्रयास किया जा रहा है। इतना ही नहीं सहकारी माध्यम से विपणन की प्रक्रिया इतनी जटिल, दीर्घ एवं अमितव्ययी है कि सरल, सादा, एवं प्रत्यक्ष संतुष्टि का जीवन व्यतीत करने वाले ग्रामीण उससे निराश हो जाते हैं। इसके अलावा सर्वेक्षण के काल में यह भी ज्ञात हुआ है कि बुनकरों से जब वे मोटा कपड़ा बुनते थे कुछ कपड़ा सहकारी विभाग द्वारा विक्रय के लिये लिया गया था उसका मूल्य ५-६ माह बाद चुकाया गया था। इसके कारण यदि वे सहकारी माध्यम से विक्रय करते हैं तो पहले ही अपने उत्पादनों का मूल्य काफी ऊंचा लगा देते हैं दूसरे जब सेठिये उन्हें सारी सुविधायें दे रहे हैं तो वे उनकी ओर ही आकर्षित हो जाते हैं।

सहकारिता के नाम से बुनकर इतने उदास हो गये हैं कि कितने ही बुनकर तो समितियों में से अपनी दी गई अंशपूंजी वापिस प्राप्त करने के लिए अत्यधिक लालायित हैं। दूसरी ओर बुनकर सेठियों व व्यापारियों के शिकंजों में इस प्रकार फंसे हुए हैं कि उन्हें उसमें से निकालने के लिए क्रान्तिकारी, पूर्ण एवं सुसंगठित योजनाबद्ध प्रयत्नों की आवश्यकता है। लेकिन यदि सहकारिता इन असफल होती है तो ग्रामीण भारत की सबसे बड़ी आशा निष्फल हो जावेगी। अतः भूतकाल की असफलताओं के बावजूद भी आन्दोलन वित्त संबंधी संकुचित कार्य को पूरा करने के अतिरिक्त बुनकरों के जीवन निर्माण के साधन के रूप में सब प्रकार से विकसित किया जाना चाहिए।

विपणन समितियों की सफलताओं के लिए यह आवश्यक है कि पहले शुद्ध उत्पादन सहकारी समितियां स्थापित की जावें। अन्ततः सर्वप्रथम कच्चे माल व वित्त प्रबन्ध की समस्या है जिसका हल किये बिना आगे की बात सोचना केवल हवा में चित्रांकन करने के समान है। वर्तमान स्थिति को देखते हुए तात्कालिक प्रयत्न के रूप में सरकार को एक सुदृढ़ एवं पूर्णतः वित्त समस्या से मुक्त क्रय विक्रय केन्द्र कोटा में स्थापित करना चाहिए जिसकी सदस्यता मसूरिया बुनकर सहकारी समितियों के लिए आवश्यक होनी चाहिए। इसमें इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि बुनकरों की आय बढ़ाने का प्रयत्न, सस्ते कच्चे माल की उपलब्धि एवं

मितव्ययता के द्वारा हो न कि उन्हें प्रचलित बाजार मूल्यों से अधिक मूल्य देकर। अन्यथा वह विक्रयालय व्यापारियों की प्रतियोगिता में कभी भी न टिक सकेगा और अन्ततः जैसा हो रहा है सरकारी पूंजी का दुरुपयोग मात्र ही होगा। वर्तमान में ऐसा पाया गया है कि सहकारी समिति के माध्यम से बाहर भेजे गये माल पर ऊंची कीमत ली जाती है जिसका परिणाम यह होता है कि बाहर उपभोक्ता सहकारी विक्रयालयों को अपेक्षा व्यापारियों से खरीदना पसन्द करते हैं। तात्कालिक रूप से इस केन्द्र पर केवल सहकारी समिति के माध्यम से ही माल खरीदने का प्रतिबन्ध नहीं होना चाहिये। इसे सीधे बुनकरों से खरीदने की छूट होनी चाहिये।

इस क्रय विक्रय केन्द्र में सहकारी समितियां, बुनकर, एवं सरकार सबका प्रतिनिधित्व होना चाहिये, परन्तु सरकारी हस्तक्षेप धीरे धीरे कम किया जाना चाहिये। इस समिति को सम्पूर्ण क्षेत्र के लिये आवश्यक उच्च कोटि के सूत, रेशम व जरी का कोटा दिया जाना चाहिये जिसका वित्त प्रबन्ध सरकार द्वारा रिजर्व बैंक योजना द्वारा और मान्यता प्राप्त होने, प्रमाणीकरण व श्रेणीकरण होने पर व्यापारिक बैंकों द्वारा किया जा सकता है। कच्चे माल को सस्ते प्राप्त करने और सस्ती वित्त सुविधाओं से प्राप्त मितव्ययता का प्रयोग आंशिक रूप से बुनकरों की आय बढ़ाने, प्रचार, उत्पादन का मूल्य कम करने और सुदृढ़ कोष निर्माण हेतु होना चाहिये। इसे न तो क्रय के लिये ही केवल सहकारी समितियों पर निर्भर होना चाहिये और न विक्रय के लिये केवल सहकारी विक्रयालयों पर। इसे बम्बई, दिल्ली, मद्रास आदि मुख्य बाजारों में सम्बन्धित व्यापारियों से सम्बन्ध स्थापित कर उन्हें माल भेजने का प्रावधान करना चाहिये। इस विक्रयालय द्वारा किये गये विक्रय पर वे सभी छूटें दी जानी चाहियें जो वर्तमान में अन्य हाथकर्घा उत्पादनों के विक्रय पर दी जा रही हैं। जो कि निम्न प्रकार हैं :-

(क) २) रूपये से ऊपर की फुटकर बिक्री पर ५ प्रतिशत।

(ख) अखिल भारतीय हाथकर्घा सप्ताह और अन्य उत्सवों पर ५ नये पैसे प्रति रूपया अतिरिक्त छूट।

(ग) थोक बिक्री पर ३ प्रतिशत प्रति रूपया (१००) से अधिक विक्रय पर)

(घ) भारत से बाहर निर्यात पर ५ न०पै० प्रतिरूपया अतिरिक्त छूट।

विदेशों में निर्यात के लिये इस समिति का सीधा सम्पर्क विदेशी विक्रया-

लयों से होना चाहिये ताकि वहां की मांग के अनुसार उत्पादन करवाके शीघ्र भेजा जा सके ।

इतना सब होते हुये भी इसकी सफलता संचालक मण्डल व व्यवस्थापक की योग्यता पर निर्भर होगी क्योंकि किसी भी योजना में नियंत्रण एवं संगठन स्वामित्व की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण होता है । अतः कम से कम व्यवस्थापक और जहां तक हो सके संचालक मण्डल के सक्रिय सदस्यों में अच्छी तारतम्य बुद्धि, नैतिकता, व्यवसायिक योग्यता, व्यवसायिक शिक्षा, सहनशीलता और संस्था व कला के विकास में रूचि होना परमआवश्यक है ।

६ - निष्कर्ष :-

विद्यमान परिस्थितियों में विपणन सम्बन्धी कोई समस्या नहीं है । समस्या यह है कि किस प्रकार विद्यमान विपणन संगठन में हो रही अमितव्ययताओं को दूर किया जाय और उसका बाजार अधिक से अधिक विस्तृत कर अधिक बुनकरों को रोजगार देकर ग्रामों की पूर्ण एवं अर्ध बेरोजगारी की समस्या को हल करने व कला के विकास के लिये प्रयत्न किया जाय । समस्या इस बात की भी है कि किस प्रकार इस फैशन की वस्तु की मांग निरन्तर बनी रखी जाय जिसके लिये प्रचार आवश्यक है । अन्यथा किसी भी समय रूचि एवं फैशन परिवर्तन होने पर हजारों बुनकरों के बेरोजगार हो जाने व राजस्थान के कला के विलुप्त हो जाने की सम्भावना है । राष्ट्रीय बाजारों की अपेक्षा विदेशी बाजारों के विकास पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिये जहां कि अपनी विशेषताओं के कारण यह उत्पादन स्थायी एवं भारी मांग पैदा कर सकता है । राष्ट्रीय दृष्टिकोण से विदेशी कच्चा माल आयात करना और उत्पादित माल का विलासता के रूप में उपयोग विद्यमान परिस्थितियों में उचित नहीं कहा जा सकता । अतः जहां तक हो सरकार, सहकारिता एवं व्यापारियों सबको मिलकर विदेशी बाजारों के विकास के लिये कृतसंकल्प हो प्रभाव पूर्ण कदम उठाने चाहियें ।

=o=o=o=o=o=o=o=o=

अध्याय - अष्टम्

श्र म

१, श्रम का महत्व एवं प्रकार :-

कुटीर उद्योगों की सफलता जिनमें कि मानव श्रम द्वारा सस्ते व सादे यंत्रों की सहायता से अपने गृह में ही उत्पादन किया जाता है अन्य सब बातों की अपेक्षा कला के स्वामी श्रमिकों का महत्व अधिक बढ़ जाता है । नक्काशी, पच्चीकारी, मीनाकारी आदि हस्तकला के उत्कृष्ट नमूनों में श्रम कुशलता का महत्व और भी अधिक है । मसूरिया एक अत्यधिक बारीक एवं कलापूर्ण बुनावट है क्योंकि इसमें बाल के समान महीन सूत व रेशम के एक एक धागे को गिनकर समान दूरी पर जमाते हुये (दसमलव)५ से १ मिली मीटर के आकार के खन बनाते हुए नक्काशी का कार्य किया जाता है अत: स्वाभाविक रूप से इस उत्पादन में श्रम कुशलता का महत्व और भी अधिक हो जाता है । कोटा जिले में चल रहे १५००-१७०० कर्घों पर जिन पर लगभग ५,००० व्यक्ति आंशिक व पूर्णत: निर्भर हैं मसूरिया बुना जा रहा है । कुटीर उद्योग के रूपमें उत्पादित होने से स्वाभाविक रूपसे इसके उत्पादन में पूर्ण परिवार का योगदान होता है । बच्चों से लगाकर घर के बड़े बूढ़े व स्त्रियां भी किसी न किसी रूप में अपना सहयोग अवश्य देती हैं । पूर्णत: श्रम पर आधारित होने के कारण ही अत्यधिक महंगा कच्चा माल प्रयुक्त होने पर भी सामान्य उत्पादनों की उत्पादन लागत में ४० से ५० प्रतिशत भाग श्रम का प्रतिफल ही होता है । इस पर भी यदि कच्चा माल उचित मूल्यों पर मिल सके तो बुनकरों के प्रतिफल का प्रतिशत ५०-६० प्रतिशत हो सकता है । फूलदार, बेलदार एवं नक्काशी के काम वाली साड़ियों में श्रम का प्रतिफल और भी अधिक बढ़ जाता है । यदि इनका इतना महीन सूत व रेशम ये बुनकर कात सकते तो यह प्रतिफल ८०-९० प्रतिशत तक पहुंचना स्वाभाविक था ।

वैसे इसमें स्त्रियां एवं पुरुष दोनों का योगदान महत्वपूर्ण है फिर भी

कौनसा काम स्त्रियां ही करें और कौनसा पुरूष ही करें ऐसा बिल्कुल सही माप दृष्टिगोचर नहीं होता । कुछ प्रक्रियायें ऐसी हैं जिन्हें सामान्य रूप से केवल स्त्रियां ही करती हैं, कुछ ऐसे हैं जिन्हें पुरूष ही करते हैं और कुछ ऐसी हैं जिन्हें दोनों करते हुये पाये जाते हैं । जो कम कुशलता के परन्तु अधिक समय लेने वाले काम हैं जैसे सूत पक्का करना, नरिया भरना, व ताना करना इन्हें सामान्यत: स्त्रियां ही करती हैं । माण्डी करना, रञ्जीकरण, धागे जोड़ना, मांज बांधना व बुनाई ऐसे कार्य हैं जिनमें पूर्ण कुशलता की आवश्यकता होती है । अत: ये कार्य सामान्यतया पुरूषों द्वारा ही किये जाते हैं । बुनाई में भी सामान्य बुनाई का काम तो कई स्थानों पर स्त्रियां करती हुई पाई गई हैं परंतु कलापूर्ण बुनाई केवल पुरूष ही करते हैं । नरियां भरना व ताना करना ऐसे काम हैं जिनमें समय, बुनाई में लगने वाले समय की अपेक्षा कम लगता है अत: स्त्रियां घरका काम करते हुये आसानी से इन्हें कर लेती हैं । रञ्जीकरण में काफी ताकत की आवश्यकता होती है इसलिये यह कार्य केवल पुरूष ही कर सकते हैं । कोटा में पेचों की बुनाई साधारणतया स्त्रियां करती हैं क्योंकि पुरूष अन्य उद्यमों में लगे हुये हैं ।

मांज बांधने का कार्य सबसे बारीक एवं कुशलतापूर्ण होता है । ज्यों, ज्यों सतों की मात्रा अधिक होती जाती है अधिक कुशल बुनकर ही उस काम को कर सकते हैं । इसी प्रकार नक्काशी का काम भी केवल अत्यधिक कुशल बुनकर ही कर सकते हैं । ।

<u>२. श्रम की पूर्ति एवं प्रकृति :-</u>

अतित काल से भारत में सूत कातना राष्ट्रीय धन्धा व कपड़ा बुनना लाखों करोड़ों व्यक्तियों का व्यवसाय रहा है । कोटा जिला भी उपरोक्त परम्परा का अपवाद नहीं है । कोटा, कैथून, मांगरोल, सीसवाली, सांगोद, कोड़सुवां, बपावर, सुल्तानपुर आदि जिले के प्रमुख बुनकर केन्द्र हैं । इनके अलावा जिले के प्रत्येक कस्बे में जो पहले निजामतें थीं वहां सामान्य रूप से बुनकर रहते हैं जो परम्परा से विविध प्रकार के कपड़े बुनते चले आ रहे हैं । प्रत्येक कस्बे में फैले हुये बुनकर भारतीय ग्रामीण स्वनिर्भरता का स्पष्ट दिग्दर्शन करते हैं । १९५१ की जनगणना के अनुसार कोटा जिला में ३३२० पुरूष व ८७३ स्त्रियां वस्त्र निर्माण कार्य में संलग्न थीं ।
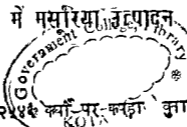
वर्तमान में जिले में ४० स्थानों पर २२४६ कर्घों पर कपड़ा बुना जाता है। इस प्रकार लगभग ५००० व्यक्ति वस्त्र निर्माण में संलग्न हैं। जहां तक मात्रा का प्रश्न है पूर्ति सम्बन्धी कोई कठिनाई नहीं आती। मसूरिया कपड़ा बुनने के लिये कुछ विशेष - प्रशिक्षण की आवश्यकता होतीहै जो कि बुनाई का काम कर रहा बुनकर ५-६ माह में आसानी से प्राप्त कर सकते हैं। यदि नये व्यक्तियों को न भी लिया जाय तो भी सामान्य प्रशिक्षक बुनकरों को कुछ उच्च प्रशिक्षण देकर आवश्यक आवश्यकतानुसार पूर्ति बढ़ाई जा सकती है। कैथून में अधिकांश व्यक्तियों का यह एक मात्र व्यवसाय व आय का साधन है। अन्य गांवों में जहां अब तक मोटा कपड़ा बुनता चला आ रहा है कृषि व पशु पालन सहायक उद्यम हैं। ज्यों ज्यों बुनकर मसूरिया बुनना प्रारम्भ कर रहे हैं यह प्रवृत्ति पाई जाती है कि वे कृषि कार्य स्वयं करना छोड़कर दूसरे कृषकों से करवाने लग गये हैं। कोटा में ५० प्रतिशत कर्घों पर जिन पर पैबे बुने जाते हैं लगभग सब प्रक्रियायें स्त्रियां व बच्चे ही करते हैं। यहां पुरूष अधिक लाभप्रद उद्योगों जैसे सिलाई, मजदूरी व्यापार नौकरी आदि में लगे हुये हैं। जिनके लिये मसूरिया उत्पादन सहायक परंतु पैत्रिक धन्धा है। फिर भी लगभग ६० प्रतिशत बुनकरों का बुनना ही मुख्य व्यवसाय है।

प्रति कर्घा कम से कम एक स्त्री व एक पुरूष की आवश्यकता होती है परंतु उत्पादन इकाई का आकार बढ़ने पर यह अनुपात कम हो जाता है। इस प्रकार वर्तमान में कोटा जिले में मसूरिया उत्पादन में लगभग १५०० परिवार संलग्न हैं। जिनमें से ५० प्रतिशत पूर्ण रूप से इसी कार्य पर निर्भर हैं। ४० प्रतिशत का कृषि एवं पशुपालन सहायक व्यवसाय है और शेष १० प्रतिशत में से ५ प्रतिशत अन्य सहायक व्यवसायों में लगे हैं और ५ प्रतिशत का मसूरिया उत्पादन सहायक व्यवसाय है।

३. सामाजिक व आर्थिक स्थिति :-

(क) आय :-

जैसाकि बताया जा चुका है अधिकतर बुनकरों का यही मुख्य उद्यम है। इसमें आय बुनाई की कुशलता पर निर्भर होती है। यह पाया गया है कि कैथून व कोटा में बुनकरों को २५ गज कपड़ा बुनने में जहां १५ दिन लगते हैं वहां अन्य गांवों में २० - २२ दिन लग जाते हैं। क्योंकि वे अभी उतने कुशल नहीं हुये हैं। एतदर्थ

दिसम्बर ६३ से मजदूरी में की गई भारी कमी

उत्पादन एवं किस्म	दिसम्बर ६३ से पूर्व	दिसम्बर ६३ से
(क) थान (प्रति पाण २५ गज)		
२०० सूत	६०)००	४५)००
२५० सूत	७०)००	५५)००
३०० सूत	८०)००	६५)००
(ख) साड़ियां (२५ गज की पाण)		
जरी किनार	६०)००	४५)००
जरी स्काट सादा	६३)००	४८)००
जरी बंगला	७०)००	५०)००
जरी चौकड़ी - ५ सूत २ तार	७०)००	५०)००
५ सूत ४ तार	७२)००	५२)००
३ सूत २ तार	७१)००	५१)००
३ सूत ४ तार	७३)००	५३)००
२ सूत २ तार	७३)००	४३)००
२ सूत ४ तार	७५)००	५५)००
१ सूत २ तार	८२)००	६०)००
१ सूत ४ तार	९०)००	६५)००
फूलदार (१०० फूलजरी)	८०)००	६५)००
पूना रेशम	७२)००	५५)००
सादा पट्टा	६३)००	४८)००
टीसू सादा	६५)००	६०)००
टीसू पट्टेदार	१००)००	६५)००
(ग) साफा :- (२७ गज की पाण)		
जरी किनार	६५)००	५०)००
जरी चौकड़ी ३ सूत	८०)००	६०)००
२ सूत	९०)००	६५)००
१ सूत	९५)००	७०)००
२० रवत	४)००	३)५०

उनकी आय भी कम है। अधिकतर बुनकर ऐसे हैं जिनकी आय वर्तमान प्रचलित मजदूरी दरों के आधार पर प्रति कर्घा १०० से १२० रूपये के मध्य है। नमूने की जांच के आधार पर विभिन्न आय वर्गों में आने वाले परिवारों का प्रतिशत इस प्रकार है:-

मासिक आय	प्रतिशत
८० रूपये से कम	५
८० रूपये से १००	३०
१०० रूपये से १२०	४०
१२० रूपये से १४०	१५
१४० रूपये से अधिक	१०

कुशलता, सहायक उद्यम और उत्पादन इकाई के आकार एवं प्रकार के आधार पर आय में भिन्नता पाई जाती है।

(ख) कार्य करने व रहने का स्थान :-

सामान्य रूपसे सभी बुनकर रहने के मकान के एक भाग में ही बुनाई का काम करते हैं। ताना, सज्जीकरण आदि प्राथमिक क्रियायें बाहर खुले मैदान में करनी पड़ती हैं। एक कर्घे के लिये औसतन ३० वर्ग फीट स्थान कम से कम आवश्यक होता है। सामान्यत: यह रहने के घर का एक भाग, बरामदा या अलग कमरा होता है। आय की कमी के कारण इनके मकान कच्चे, अन्धेरे, खपरैल के व कम हवादार हैं। जहां बुनकर बैठकर काम करते हैं उसके पास सामान्य रूपसे पांच वर्ग फीट से १० वर्ग फीट के आकार की खिड़कियां पाई जाती हैं। उन गांवों में जहां पर अभी अभी यह कार्य चालू हुआ है, इस प्रकार की खिड़कियां भी नहीं हैं। कुछ परिवार जिनके आय के साधन अच्छे हैं उनके पक्के, हवादार मकान पाये जाते हैं। अधिकतर पक्के व हवादार मकान जो मसूरिया उत्पादन के उपयुक्त हैं गत एक दो वर्षों में ही बनाये गये हैं। और कुछ वर्तमान में निर्माणाधीन हैं। पक्के मकान वर्तमान में केवल दो तीन प्रतिशत बुनकरों के पास हैं। इतना होते हुये भी गांव में बुनकरों के मकान अन्दर व बाहर साफ सुथरे पाये जाते हैं। कोटा में अन्दर व बाहर से अत्यधिक गन्दे मकानों में ही बुनकर रहते हैं।

(ग) कार्यकाल :-

औसतन रूपसे वे बुनकर जिनका यह मुख्य व्यवसाय है वर्ष में ३०० दिन और माह में २५ दिन काम करते हैं। उद्योग वर्ष भर चलता है परंतु अत्यधिक वर्षाकाल व पारिवारिक कार्यों के लिये समय समय पर काम बन्द करना पड़ता है। वर्षाकाल में मुश्किल से मास भर में १५-२० दिन काम हो पाता है। सर्दी का मौसम सर्वाधिक उपयुक्त होता है परंतु प्रकाश की सुविधा के अभाव में उसका पूरा उपयोग नहीं हो पाता है। अत्यधिक गर्मी के दिनों में बन्द मकान होने से कार्यकुशलता कम हो जाती है। वर्ष के विभिन्न भागों में प्रति दिन कार्य करने के औसत घंटों की संख्या निम्न प्रकार होती है :-

जनवरी से मार्च	६ घंटे
अप्रैल से जून	१० घंटे
जुलाई से सितम्बर	७ घंटे
अक्टूबर से दिसम्बर	८ घंटे

औसतन प्रतिदिन ८ घंटे काम किया जाता है। प्रकाश के अभावमें रात्रि के समय कोई भी काम नहीं करते हैं। प्रातःकाल का अन्धेरे का समय पशुपालन आदि सहायक उद्योगों के सम्बन्ध में व सायंकाल व रात्रि का समय भोजन व गप्पे मारने में काम लिया जाता है।

(घ) भोजन शिक्षा एवं स्वास्थ्य :-

यह सभी बातें आय के ऊपर निर्भर होती हैं। कोटा व कैथून में बुनकरों का भोजन वही होता है जो सामान्यतः शहरों में निम्न वर्ग वालों का पाया जाता है। गेहूं, दालें और सब्जियां मुख्य खाद्यपदार्थ हैं। पौष्टिक भोजन का सामान्यतः अभाव रहता है परंतु चाय पीने की आदत सामान्य रूप से पाई जाती है। आय का ६० - ७० प्रतिशत भाग भोजन पर व्यय किया जाता है। कोटा में मांसाहारी भोजन भी किया जाता है परंतु गांव में इसका लगभग अभाव है। केवल विशेष उत्सवों एवं त्योहारों पर काम में लिया जाता है।

अधिकतर बुनकर अशिक्षित हैं। उनमें भी स्त्रियां तो पूर्णतः अशिक्षित ही हैं। अब नई पीढ़ी के नवयुवक पढ़ने के बाद भी इस उद्योग में लग रहे हैं। जैसाकि

उद्योग का स्वभाव है कृषि के समान इसमें बच्चों का सक्रिय श्रम के रूप में उपयोग नहीं किया जाता जिससे जहां जहां भी शिक्षा की सुविधायें उपलब्ध हैं सभी बुनकरों के बच्चे पढ़ रहे हैं । कई स्थानों पर कितने ही नवयुवक बुनकर ऐसे हैं जो माध्यमिक (हाई व हायर सैकेन्ड्री) शिक्षा प्राप्त हैं । परंतु फिर भी वे इस उद्योग में संलग्न हैं । उत्पादन के लगभग सभी केन्द्रों पर माध्यमिक शिक्षा की सुविधायें उपलब्ध हैं एतदर्थ, आली पीढ़ी के शिक्षित होने की पूर्ण सम्भावना है ।

स्वास्थ्य, भोजन व रहन सहन की स्थिति पर निर्भर होता है । कोटा में बुनकरों का स्वास्थ्य सबसे निम्न कोटि का है क्योंकि उनके रहने के मकान गंदे व अंधेरे हैं, उनका भोजन भी अधिकतर तामसिक होता है, और शहर में दूध व दूध निर्मित वस्तुओं जैसे सामान्य सुलभ प्रकृतिदत्त पदार्थ वैसे ही नहीं मिलते हैं । गांवों में बुनकर गरीब होते हुये भी साफ सुथरे मकानों में रहते हैं, शुद्ध हवा का सेवन करते हैं और तामसिक की अपेक्षा शाकाहारी भोजन करते हैं और पशुपालन सामान्य रूपसे सहायक व्यवसाय होने से दूध रूपी अमृत पौष्टिक भोजन के रूपमें मिल ही जाता है । अतः उनका स्वास्थ्य अच्छा है । कस्बों में स्वास्थ्य मध्यम श्रेणी का है ।

(ड०) सामाजिक स्थिति व रहन सहन का स्तर :-

सामाजिक स्थिति के दृष्टिकोण से मसूरिया उत्पादन में संलग्न समस्त बुनकर मुसलमान जुलाहे एवं हिन्दू कतइये हैं । हिन्दू कतइये केवल कोटा में हैं शेष सब स्थानों पर मुसलमान जुलाहे हैं जो मोमिन कहलाते हैं । अभी अभी रेगर, छीपा आदि जातियों के व्यक्ति भी इस कार्य को सीख रहे हैं । संलग्न बुनकरों में से ९८ प्रतिशत मोमिन हैं । समाज में इनका विशेष स्थान नहीं है । कोटा में तो सामाजिक स्थिति की दृष्टि से इनकी स्थिति अत्यन्त दयनीय है । गांव में इनमें से जो व्यक्ति अच्छे समझदार व धनवान हैं उनकी सामाजिक स्थिति भी अच्छी है । शहर से ज्यों ज्यों गांव की ओर बढ़ते हैं हिन्दू-मुस्लिम भेद की खाई कम होती हुई दृष्टिगोचर होती है ।

मुसलमान जुलाहों में नशा धार्मिक दृष्टि से वर्जित होने के कारण नहीं किया जाता है परन्तु कतइये व रेगर आदि अत्यधिक नशेबाज हैं । इनकी आय का २० से ३० प्रतिशत भाग इसी पर व्यय हो जाता है ।

जनसंख्या वृद्धि की दर इनमें काफी तीव्र पाई जाती है जिसका कारण

निम्न रहन सहन का स्तर, रात्रि को कोई काम न होना, मनोरंजन के अन्य साधनों का अभाव व इनकी परम्परायें एवं मान्यतायें हैं।

सामान्य रूपसे औरतों का घर पर प्रभुत्व पाया जाता है। चूंकि औरते ही घर गृहस्थी का सारा काम करते हुये भी बुनाई के कार्य में पूर्ण योगदान देती हैं वे अत्यधिक सक्रिय पाई जाती हैं। यही कारण है कि परिवार का सारा नियंत्रण उन्हीं के हाथ में होता है। पुरूष अधिकतर आलसी से दृष्टिगत होते हैं जो दिन का कार्य करने का बना काफी समय भी बाजार में गप्पे लगाने व ताश खेलने में खराब कर देते हैं। यह पाया जाता है कि पुरूष मुख्य मुख्य क्रियायें करके व मांज बांधकर चले जाते हैं फिर बुनाई का काम भी स्त्रियों को ही करना पड़ जाता है। स्त्रियों का उत्साह एवं कार्यशीलता प्रशंसनीय है।

रहन सहन का स्तर सामान्य है। नीचे विभिन्न आय वाले ५ परिवारों का आर्थिक विवरण दिया गया है। जो इसे स्पष्ट करता है :-

बुनकरों की आर्थिक स्थिति दिग्दर्शक तालिका

परिवार क्रमांक	१	२	३	४	५
सदस्य संख्या	८	८	५	५	३
परिवार की कुल आय	१५० रूपये	१३० रू०	१०० रू०	८० रू०	७५ रू० प्रतिमास
व्यय :- (रूपयों में)					
भोजन	९०	८०	६०	५५	५०
ईंधन	७	७	५	५	५
प्रकाश	३	३	२	२	२
वस्त्र	१५	१५	१०	८	८
मकान	१०	१०	८	६	५
शिक्षा	३	२	२	-	-
स्वास्थ्य एवं चिकि०	१	१	१	-	१
अन्य	१०	७	७	३	२
बचत	१०	५	५	१	२
	१५०	१३०	१००	८०	७५

	१/४	२/४	३/३	४/२	५/२
मकानों की संख्या					
भोजन पर प्रतिशत (कुल आय का)	६०	६२	६०	६६	६७

(च) मनोरंजन :-

मनोरंजन का कोई उपयुक्त एवं बाह्य साधन नहीं है। साधारणतया ताश खेलना ही एक मात्र मनोरंजन का साधन है। अब कुछ बुनकर कैथून में रेडियो खरीद चुके हैं जिनके द्वारा उनके परिवार का मनोरंजन होता है। परन्तु यह संख्या नाम मात्र को है। अन्य स्थानों पर अभी बुनकरों की यह स्थिति नहीं है।

कैथून में बुनकर चूंकि बहुत काल से मसूरिया बुन रहे हैं और व्यापारियों व सेठियों के निजी सम्पर्क में हैं अत: उन्हें इसके सम्बन्ध में जो अधिक ज्ञान है उसका उपयोग विविध प्रकार से बेईमानी करने के लिये किया जाता है। हल्की बुनाई करके कपड़ा बचा लेना, हल्का कच्चा माल लगा देना, आदि प्रक्रियायें सामान्य हो गई हैं। इन सबके कारण कैथून में बुनकरों की आय अन्य स्थानों की अपेक्षा अधिक है। जिसका स्पष्ट प्रमाण वहां पर निरन्तर निर्माणाधीन पक्के मकान व बुनकरों द्वारा क्रय किये जाने वाले रेडियो आदि विलासिता के प्रसाधन हैं। अन्य गांवों के बुनकर अभी इसमें अधिक कुशल न होने से साधारणतया अनुचित लाभ प्राप्त नहीं कर पाते हैं।

३. श्रम समस्यायें :-

(क) रहने व काम करने के स्थान की समस्या :-

अन्धेरे व कच्चे मकान बुनाई प्रक्रिया में अनेक कठिनाइयां खड़ी कर देते हैं। अत्यधिक नाजुक तन्तुओं का काम होने से कम से कम बुनने का स्थान ऐसा होना आवश्यक है जो पट्टी पोशदार पक्का मकान हो नीचे पक्का फर्श हो, ऊंची और बड़ी खिड़कियां हों जिन पर जाली लगी हो और रोशनी व हवा का समुचित प्रबन्ध हो। जिससे कि प्रत्येक मौसम में व दिन भर कार्य कर सकना सुगम हो, जाले कुचरा, कंकर पत्थर का भय न होने से काम सफाई का हो और कभी कभी कंकर, जाला, पत्थर आ पड़ने से ताना टूट जाने पर जो श्रम, समय एवं माल की बर्बादी होती है वह न

हो ।

(ख) श्रम विभाजन :-

इसके उत्पादन में श्रम विभाजन करके भी मितव्ययता प्राप्त की जा सकती है । सूत पक्का करना, तानाकरना, सज्जीकरण, नली भरना आदि ऐसी क्रियायें हैं जिन्हें कई करघों के लिये एक साथ करने पर समय एवं श्रम दोनों की बचत होती है । इस ओर अभी कुछ कदम उठाये गये हैं जिनके अनुसार कोटा में व कैथून में कुछ बुनकर ऐसे हैं जो केवल सूत पक्का करके उसका ताना करने व सज्जीकरण कर लुंडी बना देने का कार्य करते हैं । शेष बुनाई का काम व रेशम के ताने का काम बुनकर स्वयं करते हैं । परन्तु यह विभाजन एक प्रयास मात्र है और इसका उद्देश्य श्रम-विभाजन न होकर कुछ की उपलब्धि के अभाव में कार्य को सुचारू रूपसे चालु रखना मात्र है । आदर्श श्रम बस्ती में अलग अलग क्रियाओं का अलग अलग विशिष्टीकरण करके श्रम विभाजन के लाभ प्राप्त किये जा सकते हैं । सहकारिता ही श्रम विभाजन के लाभ प्राप्त करने का एक मात्र अमोघ उपाय है ।

(ग)प्रशिक्षण :-

प्रशिक्षण के लिये जहां पर परिवार में यह बुनावट चल रही है वहां परम्परा से स्वाभाविक रूप से मिल जाता है । परन्तु जहां यह कार्य नहीं हो रहा है परन्तु वे बुनकर सीखना चाहते हैं तो उन्हें अपने सम्बन्धियों या मित्रों की शरण लेनी पड़ती है । जाति प्रथा के होने से पारस्परिक प्रेम इस कार्य को सुविधापूर्ण बना देता है फिर भी आज के बढ़ते स्वार्थ युग में अपनी कला का दूसरे को पूर्ण ज्ञान देना बहुत कठिन समस्या है । साथ ही इस प्रकार जो प्रशिक्षण मिलता है वह अपूर्ण एवं परम्परावादी होता है । इससे जो त्रुटियां विद्यमान समय में हैं वे चलती रहती हैं । अतः यह आवश्यक है कि स्वतंत्र रूप से शिक्षा के साथ साथ नवीन पीढ़ी को जो इस उद्योग में आ रही है आधुनिक ढंग से आधुनिक सुविधाओं का उपयोग बताते हुये प्रशिक्षण दिया जाय । इसके लिये सरकार को आगे बढ़ने की आवश्यकता है । बुनकर बस्ती में एक प्रशिक्षक की नियुक्ति करके,जो कि समय समय पर काम कर रहे बुनकरों को आवश्यक निर्देशन दे एवं नये बुनकरों को पूर्ण प्रशिक्षण दे, के द्वारा इस समस्या का कुछ हद तक हल हो सकता है । चूंकि नये बुनकर कम प्रतिफल के कारण सरकारी प्रशिक्षण केन्द्रों में काम करना पसन्द नहीं करते ,

यहां पर उन्हें प्रशिक्षण भी दिया जा सकता है और शोध का काम भी किया जा सकता है ।

(घ) मनोरंजन एवं स्वास्थ्य :-

मसूरिया उत्पादन के एक ही स्थान पर झुककर, बैठकर, आंखें गड़ाकर नियमित रूप से निरन्तर काम करना पड़ता है, अतः स्वास्थ्य खराब हो जाने व आंखें खराब होने का भय रहता है । मनोरंजन के द्वारा खोई गई शक्ति का संचय होकर कुशलता व उत्साह बनाये रखना भी जरूरी है । इसके लिये गांवों में रात्रि को मुशायरा, नाटक, भजन, विचार गोष्ठी आदि की व्यवस्था उपयुक्त हो सकती है । समय समय पर सरकार के प्रचार विभाग द्वारा फिल्म प्रदर्शन आदि भी किये जावें तो अच्छा होगा । ये सब कार्य तभी सम्भव हो सकते हैं जब सहकारिता विद्यमान हो और सरकारी योगदान हो ।
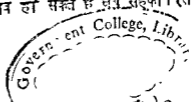
५. सरकार एवं सहकारिता :-

श्रम समस्याओं के हल एवं श्रम कल्याणकार्यों के सम्बन्ध में जहाँ तक सरकार एवं सहकारिता मूक प्राय है । गृह समस्या के सम्बन्ध में सरकार द्वारा सहकारी गृह निर्माण योजना चालु करके इस ओर प्राथमिक कदम उठाया गया है । इस योजना के अन्तर्गत वहां के हाथकर्घा वस्त्र उत्पादक सहकारी समिति को ५० मकान निर्माण हेतु १,२०,०००)रुपया ऋण एवं ६०,०००) अनुदान के रूपमें स्वीकृत किया गया है । अब तक ८०,०००)रूपये प्राप्त किये जा चुके हैं व निर्माण कार्य चल रहा है ।(इसका एक चित्र साथ में दिया गया है।) कैथून में भी इसी प्रकार की बुनकर बस्ती निर्माण हेतु योजना बनाई गई थी परन्तु गत वर्ष राष्ट्रीय संकट के कारण उसे अभी स्थगित कर दिया गया है ।

प्रशिक्षण के सम्बन्ध में कोई सरकारी या सहकारी केन्द्र ऐसा नहीं है जहां मसूरिया उत्पादन के प्रशिक्षण की सुविधायें विद्यमान हों । द्वितीय योजना-काल में पंचायत समिति के अन्तर्गत विकास विभाग द्वारा जो हाथ कर्घा प्रशिक्षण केन्द्र कुछ स्थानों पर चालू किये गये थे वे एक अप्रैल, १९६३ से बंद कर दिये गये हैं । कैथून के हाथ कर्घा प्रशिक्षण केन्द्र में १९६२ में ही एक वर्ष पर मसूरिया उत्पादन का प्रशिक्षण देना चालू किया गया था परन्तु कुछ ही समय बाद वह केन्द्र ही बंद

हो गया। कोटा में सरकार द्वारा संचालित आदर्श कार्यकर्ता प्रशिक्षण केन्द्र है परन्तु इस में भी मसूरिया उत्पादन के लिये प्रशिक्षण नहीं दिया जाता है।

मनोरंजन के लिये भी सरकार या किसी सहकारी समिति द्वारा कोई प्रयास नहीं किया गया है। सहकारिता के वास्तविक जीवन में न आने के कारण श्रम विभाजन की ओर भी कोई प्रयत्न नहीं किये जा रहे हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उत्पादन के प्रमुख पहलू श्रम की ओर अभी तक कोई ध्यान नहीं दिया गया है। अब आवश्यकता इस बात की है कि शीघ्र ही सरकार इस ओर ध्यान दे। गृह समस्या के हल के लिये उठाया गया कदम प्रशंसनीय है। परन्तु देखा गया है कि इस प्रकार से प्राप्त रकम से अलग अलग बुनकरों द्वारा घर बनाने से धन की अमितव्ययता हुई है। दूसरी ओर ऋण एवं अनुदान प्राप्त करने के सम्बन्ध में जो नियम बनाये गये हैं उनका पालन नहीं किया गया है। इस प्रकार की बस्तियां केवल सीमित व्यक्तियों के लिये ही सुविधायें उपलब्ध कर सकती हैं। अतः यह आवश्यक है कि नई बस्तियां निर्माण के साथ साथ विद्यमान मकानों को मसूरिया उत्पादन के उपयुक्त बनाने के लिये तात्कालिक ऋण भी दिये जाने चाहिये। मांगरोल की बुनकर बस्ती में सामान्य शेड बनाने की भी कोई व्यवस्था नहीं की गई है जो कि मसूरिया उत्पादकों के लिये प्रथम आवश्यकता है।

इन सब समस्याओं के सामूहिक हल का उचित उपाय तो यह दृष्टिगत होता है कि बस्ती के लिये जो राशि प्राप्त हो उससे एक साथ एक ही स्थान पर एक कोलोनी के रूप में घर बनाये जावें। ऋण एवं अनुदान से प्राप्त राशि का सदस्यों में वितरण न किया जाकर समिति ही गृह निर्माण एक बस्ती के रूपमें कराये जिसके चारों ओर काम करने व रहने के मकान हों। बाहर अन्दर के मकान बनाये जावें ताकि बाहर की तरफ कर्घा लगाया जा सके व अन्दर बुनकर स्वयं रहें। इस बस्ती के मध्य भाग में मैदान रखा जाय जहां पर कड़की धूप और वर्षाकाल में ताना सज्जीकरण आदि कार्य आसानी से किये जा सकें। साथ ही इस मैदान का उपयोग मनोरंजन कार्यों के आयोजन के लिये भी आसानी से किया जा सकता है।

इस बस्ती का प्रबन्ध सहकारी समिति द्वारा किया जाना चाहिये। सहकारी समिति सरकारी योगदान से वहां पर प्रशिक्षण, रंगाई गृह, रूपांकन एवं सुधार कार्यों का प्रबन्ध करे। प्रशिक्षक नव शिक्षितों को तो पूर्ण प्रशिक्षण

दे हो साथ में चल रहे कार्यों पर काम के सम्बन्ध में अपने सुधारात्मक सुझाव भी दे ।
अपने सुझावों को लागु करवावे और उनका समय समय पर निरीक्षण करते हुये
आवश्यक निर्देशन देता रहे । इसी सहकारी समिति द्वारा रात्रि के समय भोजन के
उपरांत मनोरंजन कार्यक्रम आयोजित किये जावें । समय समय पर सरकारी चल चित्र
वाहन भी वहां जाकर विभिन्न प्रकार की शिक्षा प्रद एवं योजना सम्बन्धी फिल्मों
का प्रदर्शन करे ।

यदि यह समिति उत्पादन एवं विपणन का वित्त प्रबन्ध एवं उत्पादन
व विपणन कार्य अपने हाथ में लेकर बहुउद्देशीय समिति के रूप में कार्य करे तो सर्वोत्तम
होगा । बुनकर बस्ती के साथ ही सरकार द्वारा रंगाई व रूपांकन केन्द्र खोले जा
सकते हैं । इन बस्ती के एक प्रांगण में एक मनोरंजन एवं शिक्षा केन्द्र भी होना
चाहिये जहां पर रेडियो, पत्र पत्रिकायें एवं अन्य मनोरंजन सामग्री उपलब्ध हो ।

स्त्रियों की स्थिति को ठीक करने के लिये व उनमें सुधारात्मक भाव लाने
हेतु विशेष प्रयास किया जाना चाहिये । आदर्श बस्ती के अन्तर्गत उनके लिये विशेष
एवं विशिष्ट प्रकार के कार्यक्रम आयोजित किये जाने चाहियें ।

श्रम कल्याण के लिये यह भी एक सक्रिय एवं सुधारात्मक कदम होगा यदि
उस समिति के प्रांगण में ही एक उपभोक्ता सहकारी वस्तु भण्डार स्थापित कर दिया
जाय । इस प्रकार की आदर्श बस्ती के निर्माण का सर्वप्रथम प्रयास कैथून में किया
जाना चाहिये, क्योंकि वहां पर बुनकरों की संख्या अन्य सभी स्थानों की अपेक्षा
अधिक है । साथ ही यहां के बुनकर ही अन्य स्थानों के बुनकरों पर नियंत्रण एवं
नैतिक प्रभाव भी रखते हैं । कोटा के पास होने व विद्युत सुविधा होने से इसकी
उपयुक्तता और भी अधिक बढ़ जाती है । उसके पश्चात् ऐसी अनेक बस्तियां क्रमशः
बनाई जावें और उनमें प्रयत्न यह रहे कि बुनकर स्वयं अधिक से अधिक रुचि लें एवं
प्राथमिकता करें ।

६. निष्कर्ष :-

मसूरिया उत्पादन में गृह, प्रशिक्षण एवं श्रम कल्याण प्रमुख समस्यायें हैं,
जिनका स्थायी हल परमावश्यक है । सरकार एवं सहकारिता ही इनके हल का उपयुक्त
माध्यम है । ऊपर बताई गई योजना के अनुसार प्रयत्न होने पर विविध प्रकार की
मितव्ययतायें सरकारी एवं निजी क्षेत्र में प्राप्त होंगी, बुनकरों की सामाजिक व

आर्थिक स्थिति का सुधार होगा और अन्ततः उत्पादन में कुशलता व मितव्ययता प्राप्त होगी जो कि इस कला के विकास एवं संवर्धन में सहायक होगी जिससे बुनकरों के एवं उत्पादन के सुन्दर भविष्य का निर्माण होगा। बुनकरों की विद्यमान स्थिति स्थिति का बहुत कुछ उत्तरदायित्व बुनकरों की रूढ़िवादिता अशिक्षा एवं परम्परागत विश्वास हैं फिर भी यदि अन्य बुनकरों से जो मोटे उत्पादन में संलग्न हैं तुलना की जावे तो मसूरिया उत्पादन में संलग्न बुनकरों की आर्थिक स्थिति उनकी तौला काफी अच्छी है। बुनकर भी स्वयं काफी चालाक हैं जो कि समय आने पर सेठियों एवं व्यापारियों को भी धोखा देकर अनुचित लाभ प्राप्त कर लेते हैं। कैथून में बुनकरों की स्थिति अन्य गांव के बुनकरों की अपेक्षा काफी अच्छी है क्योंकि प्रथम तो वे काफी दिनों से इस उत्पादन में संलग्न होने से अधिक कुशल हैं दूसरे इसका पूर्ण ज्ञान होने से क कई प्रकार से अप्रत्यक्ष आय प्राप्त कर लेते हैं। निरन्तर पक्के एवं मसूरिया उत्पादन के उपयुक्त सुन्दर एवं विशालकाय भवनों का निर्माण व दैनिक जीवन स्तर में हो रही वृद्धि बुनकरों की आर्थिक स्थिति में होने वाली निरन्तर वृद्धि को स्पष्ट करती है। परन्तु ईमानदार बुनकरों की सुरक्षा भी आवश्यक है। अतः बेईमानी को रोककर ईमानदारी व सत्यता से कार्य करते हुऐ अपनी स्थिति अच्छी करने के लिये बुनकरों को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये तभी यह उत्पादन स्थायी एवं सुदृढ़ बाजार स्थापित कर विकास एवं संवर्द्धन को प्राप्त होगा जो कि इसके सुदृढ़ भविष्य का निर्माण कर अन्य हाथकर्घा उत्पादनों के लिये आदर्श स्थापित करेगा।

-0-0-0-0-0-0-0-0-

अध्याय-नवम्

उ प सं हा र

विद्यमान स्थिति :-

किसी उद्योग के किसी स्थान या क्षेत्र विशेष में उद्गम, विकास एवं केन्द्रीयकरण कच्चे माल को सुविधापूर्ण व पर्याप्त उपलब्धि एवं मांग की पर्याप्तता के ऊपर मुख्य रूप से निर्भर होता है। परन्तु मसूरिया उत्पादन के सम्बन्ध में विधि की विडम्बना है। एक ऐसे क्षेत्र में, एक ऐसे उद्योग का उद्गम, विकास एवं केन्द्रीयकरण हुआ है जहां उसके लिये आवश्यक उच्च कोटि का तो दूर सामान्य कोटि का कच्चा माल भी उपलब्ध नहीं है। न पर्याप्त बाजार है और न ही पर्याप्त संरक्षण एवं प्रोत्साहन। जिस प्रकार यह क्षेत्र औद्योगिक विकास के लिये पर्याप्त सामग्री का भण्डार होते हुये भी दीर्घकाल से सुषुप्त अवस्था में पड़ा हुआ था उसी प्रकार यह कला भी जिसके विकास का पर्याप्त क्षेत्र विद्यमान था, सुषुप्त प्राय हो थी। चर्मण्यवती की महती कृपा व स्वतंत्र भारत की विकासप्रिय सरकार की अनुकूल नीति के कारण ज्योंही इस क्षेत्र में विद्यमान प्राकृतिक साधनों के शोषण की ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट हुआ और उसके लिये सक्रिय कदम उठाये गये स्वाभाविक रूप से हो बिना सरकार, बुनकरों, सेठियों एवं व्यापारियों के प्रयास के ही इस कला का भाग्योदय हुआ एवं इसने तीव्र विकास का मार्ग ग्रहण किया। १० वर्ष पूर्व कोटा, बुन्दी व कैथून की कुछ झोंपड़ियों तक सीमित यह कला औद्योगिक विकास के गत १० वर्षों में इतनी फैली कि इन स्थानों के सभी परम्परागत बुनकर इसके उत्पादन में संलग्न हो गये और इसके अलावा कोटा विभाग के अन्य ग्रामों एवं कस्बों में जहां जहां भी मुसलमान बुनकर विद्यमान हैं इसका प्रसार तेजी से हो रहा है। १९६२ तक कोटा जिले में बुनकरों की दो प्रमुख बस्तियां कोटा व कैथून में ही मुख्य रूपसे इसका प्रसार हुआ। परन्तु जब वहां विद्यमान सब बुनकर इसके उत्पादन में संलग्न हो गये तो १९६२-६३ के वर्ष में ही लगभग १० अन्य स्थानों पर इसका उत्पादन प्रारम्भ हो गया और अब १९६४ के केवल डेढ़ दो माह की अवधि में ही पांच अन्य स्थानों (सातोलो, आटोन, सांगोद, पलेठ और इटावा) पर भी इसका

उत्पादन कार्य प्रारम्भ हो चुका है। १९५० में जहां कोटा जिले में यह ५०० के लगभग कर्घों पर बुना जाता था १९६० में १००० कर्घों पर बुना जाने लगा। और अब ३ वर्ष की अत्यल्प अवधि में डेढ़े कर्घों (१५००) पर बुना जाने लगा है। वर्तमान में(फरवरी ६४) कोटा जिले में १९ स्थानों पर लगभग १६०० कर्घों पर इसका उत्पादन हो रहा है। इसके अलावा बून्दी व झालावाड़ जिलों के ७ बुनकर केन्द्रों पर लगभग ४०० कर्घों पर भी इसका उत्पादन कार्य प्रारम्भ हो चुका है। अभी इसका तीनों जिलों के बुनकर केन्द्रों पर निरन्तर प्रसार हो रहा है।

इस उत्पादन के सम्बन्ध में विद्यमान परिस्थितियां इस प्रकार हैं :-

१. कच्चा माल सम्बन्धी :-

इसके उत्पादन में प्रयुक्त किया जाने वाला सम्पूर्ण कच्चा माल

(क) हजारों व सैंकड़ों मील दूर देश व विदेश से आता है।

(१) देशी कच्चा माल अहमदाबाद, बम्बई, सूरत एवं बंगलौर से मुख्य रूप से आता है।

(२) विदेशी सूत इंगलैंड व इटली और रेशम जापान से आता है।

(३) देशी कच्चामाल हल्की किस्म का होता है एवं विदेशों से आयात किया हुआ उच्च किस्म का होता है।

(ख) विशाल प्रमापीय उद्योगों में निर्मित होता है।

(ग) कीमती एवं हल्का है।

(घ) कच्चे माल के सम्बन्ध में प्रमापीकरण का निरन्तर उल्लंघन किया जाकर हल्के किस्म का कच्चा माल प्रयोग करने की परम्परा वर्तमान में चल रही है।

२. उपकरण एवं सज्जा :-

(क) इसे केवल थ्रो शटल पिट लूम पर ही बुना जा सकता है।

(ख) इसके उत्पादन में प्रयुक्त होने वाले उपकरण एवं सज्जा

(१) की लागत अन्य कर्घों की लागत की अपेक्षा कम है।

(२) के मुख्य एवं महत्वपूर्ण भाग कंघी, डोटा और ब्रुश भी बाहर से आते हैं एवं बाहर वालों द्वारा बनाये जाते हैं।

३, संगठन सम्बन्धी :-

(क) सम्पूर्ण उत्पादन का नियंत्रण कोटा के व्यापारियों द्वारा होता है।

(ख) कोटा के केवल चार व्यापारी ७५ प्रतिशत उत्पादन का नियंत्रण करते हैं।

(ग) बुनकरों में कुछ शिक्षित व धनिक बुनकर जो व्यापारियों व बुनकरों के बीच की महत्वपूर्ण कड़ी हैं जिन्हें बुनकर सेठिया व व्यापारी गठरी वाले बोलते हैं वे व्यापारियों द्वारा दिये गये प्रलोभनों के कारण

(१) बुनकरों के शोषण में मदद करते हैं,

(२) सहकारी आंदोलन को सफल नहीं होने देते क्योंकि

(अ) प्राय: वे ही सहकारी समितियों के भी पदाधिकारी हैं अत: अपने स्वार्थों के हनन को ध्यान में रखकर समिति के विकास के लिये कार्य नहीं करते और जो कुछ सरकारी रूपया मिलता है उसका दुरूपयोग मात्र ही करते हैं।

(ब) ये सरकार व सहकारिता के प्रति मिथ्या व डरावने प्रचार करते हैं जिससे बुनकरों में इनके प्रति गलत विचारधारा जड़ पकड़तीजा रही है।

४, बुनकर्ते-क (३) बुनकरों को अपने शिकंजे में इस प्रकार फंसा रखा है कि वे न निकल नहीं सकते, क्योंकि ये

(क) अपनी दुर्गे लगाकर व उपकरण देकर स्थायी पूंजी का प्रबंध करते हैं।

(ख) मजदूरी अग्रिम दे देते हैं

(ग) पारिवारिक खर्चों के लिये समय समय पर ब्याजरहित ऋण भी दे देते हैं।

(घ) मजदूरी का तत्काल भुगतान करते हैं।

(घ) जहां सहकारी क्षेत्र की भारी आवश्यकता है इसका पूर्णत: अभाव है। यहां तक कि सहकारी क्षेत्र का दुरूपयोग हो रहा है। सहकारी समिति नं० ८२७ जिसने सहकारिता के नाम पर सरकार से

सूत व रेशम के कोटे प्राप्त कर रखे हैं और सहकारी एवं सरकारी विक्रयालयों को निर्मित माल भेजती है ।-

(१) बुनकरों के हित के लिये कोई काम नहीं करती

(अ) उत्पादन एवं विपणन से होने वाला सम्पूर्ण लाभ इसके अधिकारी हो विभिन्न रूपों में प्राप्त कर लेते हैं ।

(ब) बुनकर मजदूरी पर कार्य करते हैं जो लगभग उतनी ही है जितनी रैठिया लोग देते हैं ।

(स) उनके प्रशिक्षण, अनुसंधान, प्रोत्साहन एवं श्रम कल्याण के लिये यह कोई व्यवस्था नहीं करती ।

(२) इसके उत्पादन एवं विपणन का वित्त प्रबन्ध भी व्यापारी करते हैं ।

(३) सहकारी एवं सरकारी विक्रयालयों को उत्पादन बाजार मूल्यों से ऊंचे मूल्यों पर भेजा जाता है ।

(४) इतना तक होता है कि सहकारी व सरकारी विक्रयालयों की मांग की पूर्ति समिति द्वारा भी व्यापारियों से निर्मित माल क्रय करके की जाती है ।

(५) कोटे से सस्ते मूल्यों पर प्राप्त कच्चा माल इसके द्वारा भी ऊंचे मूल्य लेकर बेच दिया जाता है ।

(६) इसके क्रय विक्रय के सम्बन्ध में कोई सूचना एवं आंकड़े सहकारी विभाग में उपलब्ध नहीं हैं ।

(७) इसने कार्यशील पूंजी के लिये सरकार या सहकारी बैंक से कोई ऋण नहीं ले रखा है । इसके अधिकारी ही अपने साधनों से या कोटा के व्यापारियों से साख सुविधा प्राप्त कर वित्त प्रबन्ध करते हैं ।

(१०) वैज्ञानिक एवं क्रमबद्ध संगठन है

(१) ~~कैथून~~-कोटा के व्यापारी शीर्ष स्थान रखते हैं उनके प्रतिनिधि रैठिया लोग हैं और अब अनेक गांवों में विस्तार होने से हर गांव में रैठिया भी अपना प्रतिनिधि रखने लगे हैं ।

(२) सैठिया स्वयं कच्चा माल लाकर देने व पक्का माल लाने से मितव्ययता होती है और श्रम व समय की बचत होती है।

(३) कच्चे माल, उपकरण, एवं सज्जा की पूर्ति व वित्त प्रबन्ध, मजदूरी चुकाने का वित्त प्रबन्ध और विपणन एवं विपणन का वित्त प्रबन्ध सभी कार्य एक ही क्रमबद्ध संगठन द्वारा सम्पादित किये जाते हैं।

(च) बड़े बड़े नगरों एवं विदेशों में विक्रय हेतु सहकारी व सरकारी विक्रयालय विद्यमान हैं परन्तु उनकी मांग की पूर्ति के लिये कोई भी प्राथमिक उत्पादन सहकारी समितियां नहीं हैं।

४. उत्पादन प्रक्रिया सम्बन्धी :-

(क) उत्पादन प्रक्रिया विशेष जटिल नहीं है। बुनकर कुल में उत्पन्न व्यक्ति आसानी से ६ माह में इसका पूर्ण प्रशिक्षण प्राप्त कर सकता है।

(ख) रंगाई, रूपांकन एवं नक्काशी में यह उत्पादन काफी पीछे है।

(ग) इसका उत्पादन मिलों में या शक्तिचालित करघों पर नहीं हो सकता।

(घ) उत्पादन प्रक्रिया में कठिनाइयों का मूल कारण कार्य करने के उपयुक्त स्थान का अभाव है।

५. उत्पादित माल सम्बन्धी :-

(क) उत्पादनों में साड़ी का उत्पादन सर्वाधिक है। गत १-२ वर्षों में जो थानों का उत्पादन बढ़ा है उसका उपयोग भी साड़ियों के रूप में ही होता है।

(ख) उत्पादन की किस्म तकनीक की दृष्टि से निरन्तर घट रही है परंतु नक्काशी के काम की दृष्टि से विकास कर रही है।

(ग) उत्पादन में अब तक प्रमापीकरण था परन्तु अब नये व्यापारियों के प्रवेश, मांग का आधिक्य व प्रतियोगिता के कारण प्रमापित उत्पादन का ध्यान न रखते हुये विभिन्न प्रकार से उसी श्रेणी के उत्पादन को हल्की किस्म का बुनाने का प्रयत्न किया जाता है जो उद्योग के विकास एवं प्रतिष्ठा के लिये घातक है।

(घ) सामान्य रूप से उत्पादन का श्रेणीकरण किया जा सकता है।

(ङ०) उत्पादन लागत में कच्चे माल व श्रम की लागत मुख्य हैं जो सामान्य उत्पादनों में लगभग बराबर होती हैं। किस्म ऊंची होने के साथ साथ कच्चे माल की लागत का अनुपात बढ़ता जाता है और श्रम लागत का अनुपातघटता जाता है। बिना जरी के नक्काशी के काम द्वारा किस्म ऊंची करने पर श्रम लागत का अनुपात बढ़ता है।

६. वित्त(प्रबन्ध सम्बन्धी :-

(क) मुख्य रूप से कच्चे माल, विपणन एवं मजदूरी के लिये कार्यशील पूंजी का प्रबन्ध करने की आवश्यकता होती है। स्थिर पूंजी के लिये थोड़ी मात्रा में ही वित्त प्रबन्ध आवश्यक होता है।

(ख) इस उत्पादन का लगभग सम्पूर्ण वित्त प्रबन्ध कोटा के व्यापारी सेठियों के माध्यम से करते हैं।

(ग) बुनकरों को वर्तमान में वित्त प्रबन्ध सम्बन्धी किसी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता।

(घ) वित्त प्रबन्ध के लिये सरकार द्वारा पर्याप्त सुविधायें उपलब्ध की गई हैं परन्तु उनका उपयोग मसूरिया उत्पादन मेंबिल्कुल भी नहीं किया जा रहा है।

७. मांग एवं विपणन सम्बन्धी :-

(क) राजस्थान के मारवाड़ी सेठ अब तक इसके प्रमुख उपभोक्ता थे एवं मारवाड़ प्रमुख बाजार।

(ख) अब तक बीकानेर एवं कलकत्ता ज्वं- प्रमुख बाजार थे परन्तु अब दिल्ली व बम्बई भी तेजी से विकसित हो रहे नये बाजार हैं।

(ग) गत २-३ वर्षों से इसका तेजी से विदेशों कोनिर्यात किया जाने लगा है और वह निरंतर वृद्धि पर है। ऐसा कहा जाता है कि अकेले अमेरिका की मांग १ करोड़ रूपया वार्षिक है।

(घ) अब तक इसका प्रयोग साड़ी, दुपट्टे, फाड़ी आदि परम्परागत भारतीय वस्त्रों के रूप में ही होता था परन्तु अब यह पाश्चात्य वेशभूषा एवं सजावट में भी कामआने लगे हैं।

(ड०) इसकी मांग इन वस्त्रों पर की जाने वाली नक्काशी के कारण न होकर मसूरिया बुनावट के कारण है क्योंकि निरन्तर सादे थानों की मांग बढ़ती चली जा रही है।

(च) विपणन में मध्यस्थों की लम्बी श्रृंखला विद्यमान है।

(छ) प्रचार एवं विज्ञापन की कोई समुचित व्यवस्था नहीं है।

(ज) सहकारी उत्पादक समिति न होने से केन्द्रीय विक्रय संघों के विक्रयालयों एवं सरकारी विक्रयालयों की मांग पर्याप्त होते हुये भी माल नहीं मिल पा रहा है। सहकारी समिति नं० ८२७ द्वारा जो माल भेजा जाता है वह बाजार मूल्यों से भी ऊंचे मूल्यों पर भेजा जाता है, जिसका प्रभाव यह होता है कि वहां के विक्रयालयों में विक्रय मूल्य यहां के बाजार मूल्य से कुछ अधिक ही होता है।

८. श्रम एवं रोजगार सम्बन्धी :-

(क) कलात्मक कार्य होने से श्रम का महत्वपूर्ण स्थान है।

(ख) इसके उत्पादन में मुख्यत: मुसलमान जुलाहे ही संलग्न हैं जिन्हें मोमिन्स कहा जाता है।

(ग) बुनकरों को प्रत्यक्ष रूप से व धोबी, राछ भरनेवाले और ब्रुश बनाने वालों को अप्रत्यक्ष रूप से पूर्णरोजगार मिलता है।

(घ) कला में बारीकी एवं सावधानी पूर्ण कार्य एवं मंहगाई को देखते हुये श्रमिकों का प्रतिफल कम है। परन्तु कैथून में किस्म को हल्का करने की जो परम्परा चली है उसके कारण बुनकर अप्रत्यक्ष रूपसे अधिक आय प्राप्त कर लेते हैं।

(ड०) बुनकरों का व्यापारियों एवं सेठियों द्वारा शोषण हो रहा है परन्तु बुनकर भी अधिकांश रूप से अपने आप को अत्याधिक चतुर मानते हैं और उन्हें जो कच्चा माल बुनने के लिये दिया जाता है उसमें से कुछ बचाकर अतिरिक्त आय प्राप्त करते हैं। ऐसा बहुत दिनों से काम कर रहे कैथून के बुनकर ही कर पाते हैं।

(च) बुनकरों के शोषण की जिम्मेदारी बहुत कुछ उन्हीं पर एवं उन्हीं में से निकले उनके नेता सेठियों पर है।

(छ) श्रम कल्याण सम्बन्धी कोई व्यवस्था नहीं है।

(ज) काम करने एवं रहने के स्थान का अभाव सबसे बड़ी समस्या है। कच्चे, संकरे व अन्धेरे मकान हैं जो इसके उत्पादन कार्य के लिये पूर्णतः अनुपयुक्त हैं।

(झ) बुनकर सेठियों से मजदूरी के सम्बन्ध में ठहराव करने की स्थिति में नहीं है अतः जो कुछ वे देते हैं वे उसे ही स्वीकार कर लेते हैं। इसी प्रकार सेठिया भी साधारणतया व्यापारियों से ठहराव नहीं करते। उनका जो प्रतिफल नियत होता है उतना समायोजन कर व्यापारी मूल्य लगा देते हैं।

६. अन्य :-

(क) मसूरिया वस्त्रों की जैसी धुलाई कोटा में होती है वैसी अभी तक अन्य किसी स्थान पर नहीं हो सकी है।

कमियां एवं दोष :-

(क) बुनकरों का शोषण :- मध्यकाल में जैसा कि भारत में सामान्य रूपसे हुआ है चाहे कृषक हो, चाहे मजदूर या कलाकार सबका महाजन, साहूकारों, मध्यस्थों एवं व्यापारियों द्वारा शोषण होता रहा है। मसूरिया उत्पादन में अभी भी वही परम्परा विद्यमान है। इसके ~~निम्न कारण हैं~~ :-,

(१) मूल उत्पादक जो कला के स्वामी हैं, किराये के मजदूर मात्र रह गये हैं,

(२) बुनकरों में स्वाभिमान व स्वनिर्भरता व आत्मविश्वास की भावना सुन लुप्त प्राय: हो गई है,

(३) मुख्य मुख्य व्यापारी मिलकर कभी भी बुनकरों की मजदूरी कम करके उन्हें निम्नतम जीवन स्तर पर जीवन व्यतीत करने को बाध्य कर सकते हैं जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण दिसम्बर ६३ में मजदूरी में एक दम की गई १० से ३० प्रतिशत तक की कटौतियां हैं,

(४) इसके परिणामस्वरूप बुनकरों को बहुत कम मिल पाता है जिससे वे न्यूनतम जीवन स्तर पर भी नहीं रह पाते और भविष्य में इस कार्य को छोड़कर अन्य कार्यों में संलग्न हो सकते हैं।

(ख) सहकारिता का अभाव :- सहकारिता ही इसका एक मात्र हल है परन्तु मसूरिया उत्पादन में उसका अभी तक कोई वास्तविक उपयोग नहीं किया गया है जिसके निम्न कारण हैं :-

१. बुनकरों का अज्ञान, अशिक्षा व रूढ़िवादिता,

२. सेठियों का सहकारी समितियों के अधिकारी पदों पर होना,

३. सेठियों एवं व्यापारियों द्वारा सहकारी विभाग, सहकारी समिति एवं सहकारी संगठनों के प्रति बुनकरों को उल्टे सीधे समझाकर भ्रम एवं शंका में डालना,

४. रिजर्व बैंक द्वारा मसूरिया उत्पादक सहकारी समितियों को ऋण देने के लिये केन्द्रीय सहकारी बैंकों को राशि कोष (फंड) न देना। फरवरी ६४ में रिजर्व बैंक द्वारा यह आदेश दिया गया है कि केन्द्रीय सहकारी बैंक मसूरिया उत्पादक सहकारी समितियों को चाहे तो अपने कोषों से ऋण दे सकते हैं। इन्हीं ऋणों पर भी सरकारी गारन्टी योजना लागू होगी परन्तु यह सुविधा पर्याप्त नहीं है क्योंकि प्रथम तो केन्द्रीय सहकारी बैंकों के पास स्वयं के कोषों का अभाव हो रहता है दूसरे इनकी ब्याज दर भी ऊंची होगी,

५. सहकारी विभाग एवं सरकार द्वारा इस पर विशिष्ट रूप से अब तक कोई ध्यान न दिया जाना,

६. गैर बुनकरों का भी बुनकर सहकारी समितियों के सदस्य होना।

(ग) सहकारी स्रोतों के अलावा निजी स्रोतों (व्यापारियों, सेठियों या बुनकरों) द्वारा भी निम्न के बारे में कोई खास प्रयत्न नहीं किये गये हैं :-

१. गृह समस्या का हल,

२. बुनकरों के शिक्षा एवं प्रशिक्षण की व्यवस्था,

३. अनुसंधान एवं खोज,

४. आधुनिक उत्पादन प्रक्रिया एवं उपकरणों का उपयोग,

५. प्रचार एवं विज्ञापन,

६. बुनकरों के कल्याण एवं मनोरंजन की व्यवस्था।

७. रूपांकन एवं किस्म ऊंचा करने के समुचित प्रयत्न।

(घ) कच्चा माल :- कच्चे माल के सम्बन्ध में काफी गड़बड़ चल रही है। वास्तविक लागत से काफी ऊंचे मूल्यों पर इसे उत्पादन लागत में जोड़ा जाता है जिससे उत्पादन का मूल्य काफी बढ़ जाता है। सहकारी समिति को प्राप्त होने वाले मूल्य एवं बाजार मूल्य में १५ से ३५ प्रतिशत तक का अन्तर पाया जाता है। विदेशी कच्चे माल एवं जरी के सम्बन्ध में यह अन्तर अधिक होता है। जिसके निम्न कारण हैं :-

१. आयातकों से मसूरिया बुनकरों तक पहुंचने के बीच मध्यस्थों की लम्बी श्रृंखला की विद्यमानता,
२. व्यापारियों से प्रतियोगिता करने वाली किसी सहकारी या सरकारी संगठन का न होना,
३. विदेशी विनिमय नियंत्रण के कारण विदेशी कच्चे माल की पूर्ति में कमी,
४. स्वर्ण नियंत्रण के कारण जरी निर्माण हेतु पर्याप्त शुद्ध स्वर्ण का उपलब्ध न होना।

(ङ०) किस्म ह्रास :- वर्तमान में किस्म ह्रास की जो प्रवृत्ति पैदा हो गई है उसे रोका जाना चाहिये। अन्यथा उसका दीर्घकालीन प्रभाव बुनकरों, व्यापारियों एवं उत्पादकों सबके लिये बुरा होगा।

इस प्रकार यदि विद्यमान स्थिति रही तो इसके परिणाम भविष्य में निम्न हो सकते हैं :-

१. कठिन कार्य के साथ कम मजदूरी होने पर बुनकर कोटा में विकासशील रोजगार के नये क्षेत्र उद्योगों में जाकर रोजगार ढूंढेंगे जिसका परिणाम होगा कला को हमेशा के लिये खोना।
२. इस उद्योग की स्थिति ऐसी हो जावेगी कि कभी भी हजारों बुनकर एक साथ बेरोजगार हो सकते हैं जिसके निम्न कारण हो सकते हैं :-
   (क) सरकार द्वारा विदेशी विनिमय संकट के कारण विदेशी सूत व रेशम के आयात पर प्रतिबन्ध,
   (ख) रुचिनुसार अन्वेषण द्वारा परिवर्तन एवं प्रचार व विज्ञापन न होने के कारण रुचि एवं फैशन में परिवर्तन,
   (ग) शक्तिचालित कर्घे या मिल में बुने जा सकने की खोज,

(घ) व्यापारियों द्वारा गठबंधन।

यदि सरकार द्वारा आगे बढ़कर इसके विकास की समुचित व्यवस्था की जावे तो इसके निम्न परिणाम हो सकते हैं :-

१. यह विदेशी मुद्रा कमाने का स्थायी साधन बन सकता है क्योंकि इसका विदेशी बाजार निरन्तर प्रसार कर रहा है। और आगे भी बढ़ने की सम्भावना है क्योंकि :-
   (क) मिलों में इसका उत्पादन नहीं हो सकता,
   (ख) पाश्चात्य धनिक देशों में नये नये एवं विशिष्ट आकार प्रकार व रूपांकन के वस्त्रों की मांग,
   (ग) मसूरिया उत्पादन में नये नये एवं विशिष्ट आकार प्रकार व रूपांकन का उत्पादन सम्भव होना,
   (घ) मंहगा होने पर भी पाश्चात्य धनिक देशों द्वारा खरीदा जा सकना,
   (ङ०)आकर्षक एवं लुभावना,
   (च) पाश्चात्य देशों में अंग प्रत्यंग दिखने वाले वस्त्रों को पहनने की फैशन,
   (छ) श्रेणीकरण व प्रमापीकरण हो सकना।
२. मिलों द्वारा बढ़ते हुये सूती वस्त्र उत्पादन के कारण उसकी प्रतियोगिता में न टिकने से ग्राम ग्राम में फैले हजारों बुनकरों को इससे रोजगार मिल जावेगा।
३. उत्कृष्ट कोटि के सूत व रेशम की मांग बढ़ने पर उसे भारत में ही निर्माण करने के लिये कदम उठाये जावेंगे।
४. एक हस्तकला जीवित रहकर विकास को प्राप्त होगी।

सुझाव :-

मसूरिया उत्पादन के सुव्यवस्थित विकास एवं प्रसार के लिये निम्न सुझाव कार्यान्वित किये जाने चाहियें।-

तात्कालिक रूप से :-

१. कैथून व कोटा में एक एक निगम सरकार की ओर से स्थापित किया जाय

या राजस्थान राज्य बुनकर सहकारी संघ द्वारा अपने क्रय विक्रय केन्द्र कोटा व कैथून में खोले जायं ।

(क) इसके लिये पर्याप्त वित्त की व्यवस्था होनी चाहिये । कम से कम प्रति केन्द्र ५ लाख रूपये की व्यवस्था होनी चाहिये ।

(ख) सभा नं० ८२७ का रेशम का कोटा इस केन्द्र को दे दिया जाय व उसमें आवश्यकतानुसार वृद्धि कर दी जावे । इसी प्रकार सूत भी वान आयुक्त द्वारा वांछित किस्म का समुचित मात्रा में उपलब्ध कराने के लिये प्रयत्न किया जाय ।

(ग) यह केन्द्र मजदूरी के आधार पर सेठियों से कुछ अधिक दर पर कपड़ा बुनवाना चालू करें ।

(घ) सहकारी विक्रयालयों द्वारा ही मसूरिया वस्त्रों की पर्याप्त मांग होने से वर्तमान में विपणन सम्बन्धी कोई कठिनाई इसके सामने नहीं आवेगी। यदि उत्पादन वहां की मांग से अधिक हो तो कोटा में मसूरिया वस्त्र विक्रयालय स्थापित किया जाय और दिल्ली बम्बई आदि नगरों में स्थित मसूरिया वस्त्रों के व्यापारियों को भी उत्पादन भेजने का प्रबन्ध यह केन्द्र कर सकता है ।

(ङ०) इसके लाभ का कुछ भाग बुनकरों के प्रशिक्षण की व्यवस्था, श्रम कल्याण
कार्यक्रमों पर व्यय किया जाना चाहिये
व्यवस्था, स्वास्थ्य सुधार आदि कार्य करें और कोटा का

(च) कैथून का केन्द्र केवल कैथून के बुनकरों के लिये
केन्द्र अन्य सब स्थानों के बुनकरों के लिये व्यवस्था करे । इसमें यह व्यवस्था होनी चाहिये कि बाहर गांव के बुनकर या कुछ बुनकरों के प्रतिनिधि या विद्यमान सहकारी समिति के अधिकारी आकर कच्चा - माल ले जावें और फिर निर्मित माल लाकर वापिस दे जावें ।

२. जो व्यक्ति वर्तमान में सेठियों के रूपमें कार्य कर रहे हैं उन्हें बुनकर न माना जाय और इस प्रकार सहकारी समितियों की सदस्यता से उन्हें वंचित कर दिया जाना चाहिये ।

३. समिति नं० ८२७ के सम्बन्ध में गहन एवं विस्तृत जांच की जाकर सहकारिता के नाम के दुरुपयोग के सम्बन्ध में उचित कार्यवाही की जानी चाहिये ।

४. समाचार पत्र पत्रिकाओं में व चलचित्रों में विज्ञापन पट्टियाँ (सिनेमा शाइड्स) द्वारा बड़े बड़े नगरों व विदेशों में विज्ञापन की व्यवस्था की जानी चाहिये।

उपरोक्त कार्यों का निम्न परिणाम होगा :-

१. व्यापारियों एवं सेठिये अपने प्रतियोगी सहकारी केन्द्र को देखकर अपनी शोषण की प्रवृत्ति ढीली करेंगे।

२. बुनकरों में सहकारिता के प्रति जो उदासीनता एवं निराशा आ गई है व समाप्त होकर रुचि एवं उत्साह पैदा होगा।

३. सहकारी समिति नं० ८२७ द्वारा सहकारिता का दुरुपयोग बन्द होकर व वास्तविक सहकारी समिति के रूपमें बुनकरों के कल्याण के लिये कार्य करने का मार्ग ग्रहण कर सकते हैं।

४. सहकारी समितियों को कच्चे माल का कोटा देने पर इसका काले बाजार में जो विक्रय होता है वह नहीं होगा।

५. दीर्घकालीन कार्यक्रम लागु करने के लिये प्रारम्भिक स्तर तैयार हो जावेगा।

६. श्रेणीकरण व प्रमापीकरण सम्भव होगा।

दीर्घकालीन कार्यक्रम :-

आत्म सहायता या सहकारिता ही एक मात्र मार्ग है जो किसी भी वर्ग या समाज के दीर्घकालीन विकास ~~क-एक-मन्त्र~~ में सहायक बन सकता है व प्राप्त उच्चतम् स्तर को बनाये रख सकता है। अतः दीर्घकालीन उद्देश्य यह होना चाहिए कि बुनकर स्वावलम्बी हो जावें। इसके लिये :-

१. कैथून व मांगरोल में जहां बुनकर बस्तियां बनने की योजना विचाराधीन हैं ~~और-कैथून-में-~~ एवं बन रही हैं आदर्श मसूरिया बुनकर बस्ती स्थापित की जावे। इसमें श्रम विभाजन, प्रशिक्षण, रंगाई गृह, रूपांकन एवं उपभोक्ता भण्डार की व्यवस्था की जानी चाहिये।

२. आगे जो बुनकर बस्तियां बने उनमें चारों तरफ मकान बनाये जावें व बीच में खुला दालान रहे जिसमें ताना करने, माणकरने, सज्जीकरण आदि के लिये छायादार स्थान बनाये जावें।

३. अलग से प्रशिक्षण एवं अनुसंधान केन्द्र सरकार द्वारा स्थापित किया जाना चाहिये जो नये बुनकरों को मसूरिया उत्पादन का प्रशिक्षण देने के साथ साथ नवी-

आधुनिक उपकरणों के उपयोग रूपांकनों की खोज आदि के बारे में भी व्यवस्था करे।

४. प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले बुनकरों को पर्याप्त छात्रवृत्ति देने की व्यवस्था होनी चाहिये ताकि उत्पादन करने से प्राप्त होने वाली आय को छोड़कर वे बुनकर प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिये आ सकें।

५. मसूरिया बुनकर समितियां अलग से स्थापित की जावें या विद्यमान समितियों को पुनर्गठन कर दिया जाय। इन सब समितियों का एक संघ स्थापित हो जिसे ही बाद में सूत व रेशम का कोटा मिले। वर्तमान में तात्कालिक कदम के रूपमें सरकार या राजस्थान राज्य बुनकर सहकारी संघ द्वारा क्रय विक्रय केन्द्र को ही इस रूपमें बदल दिया जाय। इसे नियंत्रित मूल्यों पर कच्चा माल व अन्य सामग्री प्राप्त कर सदस्य समितियों में वितरित करने व उनके उत्पादन के उचित मूल्यों पर विक्रय की व्यवस्था करनी चाहिये। इसमें सरकार भी भागीदार बने ताकि वित्त सम्बन्धी कठिनाई न आवे; और नियंत्रण रहे जिससे धोखा व सरकारी कोषों का दुरूपयोग न हो। इसका सम्बन्ध अन्तर्राष्ट्रीय सहकारी संस्थानों से स्थापितकिया जाय ताकि यह वहां से सीधा कच्चा माल प्राप्त कर सके और निर्मित माल को विक्रय के हेतु सीधा भेज सके। इससे मसूरिया वस्त्रों के प्रचार एवं विज्ञापन में भी सुविधा होगी।

६. बुनकरों को सामान्य शिक्षा देने की व्यवस्था की जावे जिसके लिये प्रौढ़ कक्षायें प्रारम्भ करनी चाहियें।

७. प्रचार के लिये आधुनिक ढंग से विज्ञापन किया जाना चाहिये मितव्ययता एवं कुशलता प्राप्त करने के लिये विज्ञापन का कार्य मसूरिया बुनकर सहकारी संघ द्वारा किया जाना चाहिये।

८. नई बुनकर बस्तियों के निर्माण के साथ साथ विद्यमान घरों को समुचित मरम्मत व मसूरिया उत्पादन के उपयुक्त बनाने के लिये आवश्यक परिवर्तन करने हेतु अल्पकालिक व मध्यकालीन ऋण भी दिये जाने चाहियें।

९. देशी बाजारों की अपेक्षा विदेशी बाजारों के विस्तार पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिये। इसके लिये विदेशों में समाचार पत्रों में इसका विज्ञापन किया जाय, वहां पर होने वाली प्रदर्शनियों में इसका प्रदर्शन किया जाय। चलचित्रों में विज्ञापन पट्टियों द्वारा प्रचार किया जाय। विदेशों में विद्यमान सहकारी एवं सरकारी विक्रयालयों में इसकी बिक्री एवं प्रदर्शन की व्यवस्था होनी चाहिये।

विदेशों में विपणीय- विस्तार का कार्य अखिल भारतीय हाथ कर्घा वस्त्र विक्रय सहकारी समिति लि० एवं अखिल भारतीय हस्तकला एवं हाथकर्घा निर्यात निगम द्वारा किया जाना चाहिये क्योंकि इनके विदेशों में विक्रय गृह विद्यमान हैं और भविष्य में भी ये नये नये विक्रय गृह स्थापित कर रहे हैं और कर सकते हैं।

१०, वर्तमान में उत्कृष्ट कोटि की आधुनिक छपाई की व्यवस्था इस क्षेत्र में न होने के कारण बम्बई, दिल्ली जयपुर आदि में जाकर छपाई होती है। अत: कोटा या कैथून में ही उत्कृष्ट कोटि की छपाई व्यवस्था की जानी चाहिये। यह कार्य संघ द्वारा आसानी से प्रारम्भ किया जा सकता है।

११, जरी की पर्याप्त व सस्ती दर पर उपलब्धि के लिये कोटा में लघु-उद्योग के रूपमें जरी निर्माणशाला स्थापित की जावे।

१२, गांव में सस्ती विद्युत उपलब्ध की जावे जिससे वर्षाकाल में, अन्धेरे मकानों में व रात्रि के समय भी बुनाई का कार्य किया जा सके।

१३, स्वास्थ्य विभाग द्वारा इनकी आंखों की सुरक्षा के लिये उपयुक्त औषधि की व्यवस्था की जानी चाहिये।

१४, सहकारी समितियों द्वारा विभिन्न स्थानों पर मनोरंजन के विभिन्न कार्यक्रम समय समय पर आयोजित किये जाने चाहियें। बुनकर बस्ती में मनोरंजन के हेतु अलग कक्ष रखा जा सकता है।

१५, स्त्रियों के महत्वपूर्ण योगदान, निरंतर कार्यरतता, उत्साह आदि को ध्यान में रखकर उनके लिये शिक्षा, स्वास्थ्य एवं मनोरंजन की व्यवस्था अलग से एवं विशिष्ट रूप से की जानी चाहिये।

१६, मांग वृद्धि के साथ के साथ कोटा विभाग के उन विभिन्न स्थानों पर जहां बुनकरों की बड़ी संख्या विद्यमान है,इसकी बुनाई का प्रसार किया जाना चाहिये

१७, कच्चे माल की समस्या के हल के लिये उत्कृष्ट कोटि का १०० से १६० काउन्ट तक का सूत भारतीय सूती मिलों में ही तैयार करवाने के लिये प्रयत्न करना चाहिये। इसी प्रकार कृत्रिम रेशम जो कि इसमें उपयोग में की जाती है और जापान से आती है उसके स्थानापन्न के लिये भारत में ही इस प्रकार की रेशम उत्पादन करने के लिये आवश्यक प्रयत्न किये जाने चाहियें।

१८, विदेशों से आयात किया हुआ सूत व रेशम संघों के माध्यम से उपलब्ध

कर इनके मुख्यों में होने वाली चोर बाजारी को रोका जावे ।

भविष्य :-

सरकार एवं सहकारी विभाग द्वारा इसके विकास एवं विस्तार में रूचि, विदेशों से आ रही भारी मांग, उत्पादन के विस्तार के लिये पर्याप्त क्षेत्र, सस्ती विद्युत की उपलब्धि, कोटा के विकास के साथ साथ इसकी स्थानीय मांग में हो रही वृद्धि और इस उत्पादन की अपनी विशेषतायें इसके उज्जवल भविष्य के लिये आदर्श परिस्थितियां उपलब्ध करती हैं । किंतु सुदृढ़ आधार पर स्थायी विकास तभी हो सकता है जब आत्मसहायता का मार्ग ग्रहण किया जाय । इसके लिये कुछ बहुउद्देशीय सहकारी समितियां एवं संघ स्थापित करने होंगे और तात्कालिक रूपसे सरकार को आगे बढ़कर सक्रिय योगदान देना होगा । यदि सरकार, बुनकर और व्यापारी सब मिलकर आपसी सहयोग से काम करें तो इस उत्पादन का राष्ट्रीय व विदेशी बाजार अत्यधिक विकसित हो सकता है जिससे मसूरिया उत्पादन के साथ कैथून व कोटा का नाम छूटकर कोटा विभाग के विभिन्न स्थानों पर विद्यमान बुनकरों की हजारों झोंपड़ियों का नाम जुड़ सकता है । साधन, सुविधायें एवं क्षेत्र विद्यमान है आवश्यकता केवल संगठन, एवं-ईमानदारी, कठिन परिश्रम के द्वारा सुविधाओं के समुचित एवं मितव्ययता पूर्ण उपयोग की है ।

-o-o-o-

इति
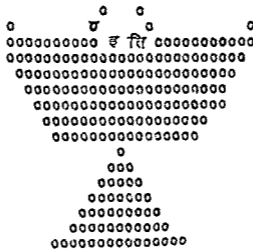
१	२	३	४	५
२२.	सभा मोमीनान सुल्तानपुर	सुल्तानपुर	७२३	१७-८-४५
२३.	कोड़गुवां हाथकर्घा वस्त्र उत्पादक सहकारी समिति लि०	कोड़गुवां	७२४	१७-८-४५
२४.	सीसवाली हाथकर्घा वस्त्र उत्पादक सहकारी समिति लि०	सीसवाली	७४०	५-२-४६
२५.	बड़ौद हाथकर्घा वस्त्र उत्पादक सह० समिति लि०	बड़ौद	७४४	२८-३-४६
२६.	मांगरोल हाथकर्घा वस्त्र उत्पादक सहकारी समिति लि०	मांगरोल	६११	
२७.	मसूरिया हाथकर्घा वस्त्र उत्पादक सहकारी समिति	बून्दी	१६५७	२३-६-५७
२८.	मोरड़ीपाड़ा मसूरिया हाथकर्घा वस्त्र उत्पादक सहकारी समिति	बून्दी	२१२बी	२३-१२-५७
२९.	कुमार सहकारी समिति	रोटूंदा	१०५२बी	२३-६-५१

परिशिष्ट-घ

प्रश्नावलियां

क. व्यापारी :-

१ - दुकान का नाम एवं पता

२ - संगठन का प्रकार

३ - स्थापना वर्ष

४ - वर्ष जब से मऊरिया कपड़े का व्यापार करते हैं

५ - क्या क्या कार्य सम्पादित करते हैं :-

क- कच्चे माल का आयात(देश से/विदेश से)

ख- सज्जा एवं उपकरणों का आयात

ग- क्रय (१) सेठियों से (२) बुनकरों से

घ- बुनाई (मजदूरी के आधार पर) बुनाई की दरें

च- विक्रय (१) स्थानीय (२) बाहर (देश और विदेश)

६ - गत वर्ष में विक्रय (मात्रा एवं मूल्य) क.स्थानीय ख. निर्यात

७ - प्रचलित बाजार भाव (क) कच्चा माल (ख) उपकरण एवं सज्जा (ग) उत्पादन

८- अनुमानित करघों की संख्या जिनका उत्पादन इनके पास आता है

९ - विभिन्न उत्पादनों का अनुमानित प्रतिशत
साड़ी, थान, पँचे, दुपट्टे, साफे एवं अन्य

१०- व्यापार में लगी पूंजी

११- कच्चा माल एवं उपकरणों के विभिन्न प्रकार कहां से मंगाते हैं एवं क्रय मूल्य
सूत, रेशम, जरी, मर्सराइज, पूना रेशम, कंघी, छोटे

१२- बाहर माल कहां कहां जाता है और किन किन कामों में प्रयुक्त होता है

१३- उत्पादित माल किस प्रकार प्राप्त करते हैं

१४- केवल मऊरिया का व्यापार करते हैं या अन्य व्यापार भी साथ में होता है

१५- कठिनाइयां जो सामने आती हैं

१६- अन्य (क) गत वर्ष में कच्चे माल एवं विभिन्न उत्पादन एवं उनकी विभिन्न किस्मों के मूल्य (ख) लाभ का प्रतिशत आदि

स, सेठिये :-

१- नाम एवं पता

२- मशूरिया कर्घो करते हैं ? कब से बुना जारहा है ? किसने चालू किया ? आदि ।

३- मशूरिया बुनवाने का काम कब से कर रहे हैं ?

४- इससे पूर्व क्या करते थे ?

५- स्थानानुसार कर्घो की संख्या जिन पर आपका कपड़ा बुना जा रहा है ।

६- क्या बुनाई का काम भी करते हैं ?

७- क्या किसी सहकारी समिति के सदस्य हैं ? यदि हां, तो क्या कोई पद भी ले रखा है ?

८- कच्चा माल कहां से और कैसे प्राप्त करते हैं ?

९- स्वयं का ही बुनवाते हैं या क्रय भी करते हैं ?

१०-कर्घो का स्वामित्व किनका है (क) बुनकरों का (ख) स्वयं का ।

११-कच्चा माल प्राप्त करने एवं बुनाई के लिये देने की शर्तें ।

१२-यदि मुख्य मुख्य उपकरणों का भी प्रबन्ध करते हैं तो (क) कहां से प्राप्त करते हैं ? (ख) क्रय मूल्य ?

१३-वार्षिक उत्पादन जो आपके माध्यम से होता है ? (क) बुनाई (ख) क्रय ।

१४-कच्चे माल की खपत (वार्षिक) सूत, रेशम, जरी, एवं अन्य ।

१५-विभिन्न प्रकार के उत्पादनों का अनुपात

१६-वित्त प्रबन्ध कहां से होता है ?(क) स्वयं की पूंजी (ख) व्यापारियों से उधार (ग) सहकारी समिति से ऋण (घ) अन्य ।

१७-विक्रय :-

(क) किसे व कहां करते हैं

(ख) मूल्य निर्धारण विधि

(ग) आनका पारश्रमिक निर्धारण विधि ।

१८-मजदूरी की प्रचलित दरें क्या हैं ?

१९-अन्य सहायक व्यवसाय यदि कोई हो ?

२०-बुनाई प्रशिक्षण कहां से प्राप्त किया ?

२१- मासिक आय

२२- आय ।

ग. बुनकर :-

१- मजूरिया क्यों कहते हैं एवं कबसे बुना जा रहा है ?

२- कहां से एवं किससे सीखा और सीखने में कितना समय लगा ?

३- कब से बुन रहे हो ?

४- बुनकर का स्वरूप (क) स्वयं के लिये उत्पादन कर्ता

(ख) सेठियों के लिये उत्पादन कर्ता

(ग) सहकारी समिति के लिये

(घ) व्यापारियों के लिये

५- अन्य सहायक व्यवसाय या आय का कोई साधन

६- यदि स्वयं के लिये उत्पादन करते हैं तो :- (क) कच्चा माल कहां से प्राप्त करते हैं ? (ख) कैसे प्राप्त करते हैं एवं किन शर्तों पर प्राप्त करते हैं - उधार । नकद (ग) क्रय मूल्य (घ) विक्रय - किसको एवं कहां करते हैं ? मूल्य निर्धारण विधि (च) शुद्ध प्रतिफल जो प्राप्त हो जाता है

७- यदि सेठियों या ~~अन्नन्नन्न~~ व्यापारियों के लिये उत्पादन करते हैं तो (क) उपकरण एवं कच्चा स्वयं का है या उनका (ख) मजदूरी क्या मिलती है ?

८- यदि सहकारी समिति के लिये उत्पादन करते हैं (क) क्या उसके सदस्य हैं ? (ख) क्या कोई ऋण प्राप्त कर रखा है ? (ग) देय राशि (घ) मजदूरी की दर (च) क्या सहकारी समिति लाभांश देती है यदि हां तो कितना ?(छ) अन्य कोई सुविधा भी सहकारी समिति देती है । (ज) क्या और ऋण प्राप्त करना

५. राजस्थान हस्तकला विक्रयालय, नई दिल्ली

७. अखिल भारतीय हस्तकला एवं हाथकरघा निर्यात निगम,
२४६- दादाभाई नौरोजी रोड,

परिशिष्ट - च

सहकारी एवं सरकारी विक्रयालय
(जहाँ मधुरिया वस्त्रों
का विक्रय होता है)

१. अखिल भारतीय हाथ कर्घा वस्त्र विक्रय समिति लि०:-
जन्मभूमि, चेम्बर, ग्राउण्डफ्लोर, फर्स्ट स्ट्रीट, बम्बई-१
२२१, दादाभाई नौरोजी रोड, बम्बई
६, रतन बाजार, मद्रास
लिन्डसे स्ट्रीट, कलकत्ता
६-ए कनाट प्लेस, नई दिल्ली
विदेशों में :-
अदन, बैंकांग, कोलम्बो, कुवा, लम्पुर एवं सिंगापुर

२. हाथकर्घा गृह (हैन्डलूम हाउस)
३ -ए, गैस्टर प्लेस, लिनसेड स्ट्रीट,
कलकत्ता

३. हाथकर्घा गृह, ६-ए कनाट प्लेस,
नई दिल्ली

४. हाथकर्घा गृह, मद्रास

५. राजस्थान राज्य बुनकर सहकारी संघ लि०, :-
हाथकर्घा वस्त्र विक्रय केन्द्र, जयपुर
हाथकर्घा वस्त्र विक्रय केन्द्र, बाड़मेर

६. राजस्थान हस्तकला विक्रयालय, नई दिल्ली

७. अखिल भारतीय हस्तकला एवं हाथकर्घा निर्यात निगम,
२४६- दादाभाई नौरोजी रोड,

परिशिष्ट - छ

स्थिति दर्शन-फरवरी, १९६४

सामान्य रूपसे सर्वेक्षण का कार्य नवम्बर, दिसम्बर मास तक पूर्ण हो चुका था । इसके बाद दिसम्बर, जनवरी व फरवरी में भी उद्योग के विस्तार संगठन एवं मूल्यों में अत्याधिक परिवर्तन हुवे हैं एवं सरकार द्वारा भी कुछ नये कदम उठाये गये हैं और कुछ नये कदम उठाने का आश्वासन् मिला है ।

इस काल में फतेह, सांगोद, सातोली, बाटीन, कनवास, खानपुर आदि स्थानों पर भी उत्पादन प्रारम्भ हो गया है एवं कोटा की द्वितीय प्रमुख बुनकर बस्ती मांगरोल में भी मसूरिया बुन रहे कर्घों की संख्या बढ़कर १३० के लगभग हो चुकी है और निरन्तर बढ़ रही है । इसी प्रकार अन्य केन्द्रों पर भी बुनकर मोटा काम छोड़कर निरन्तर मसूरिया बुनना सीख रहे हैं । परिणामस्वरूप जब तक केवल कैथून के सेठिये समस्त स्थानों पर कपड़ा बुनवाते थे किंतु अब मांगरोल में भी वहां के ही ५-६ सेठियों ने जो पहले मोटा कपड़ा बुनवाते थे मसूरिया बुनवाना चालू कर दिया है ।

मजदूरी की दरें अभी भी वही हैं जो दिसम्बर में घटाकर कम कर दी गई थीं । रेशम व सूत का मूल्य वही है परन्तु जरी का भाव और अधिक बढ़ गया है ।

रिजर्व बैंक द्वारा कोटा केन्द्रीय सहकारी बैंक को उसके कोषों से मसूरिया उत्पादन हेतु ऋण देने की स्वीकृति प्रदान कर दी गई है । जिन पर कि सरकारी गारन्टी योजना लागू होगी । आशा है इसका उपयोग शीघ्र प्रारम्भ होगा । इसके लिये मांगरोल में विद्यमान बुनकर सहकारी समिति के अलावा एक अलग मसूरिया-उत्पादक सहकारी समिति संगठित करने की योजना बन चुकी है ।

जनवरी, ६४ में महाराजा हरिश्चन्द्र जी द्वारा कैथून दौरे के समय मसूरिया बुन रहे कर्घों का निरीक्षण किया गया है और कच्चे माल, वित्त-प्रबन्ध एवं विपणन की समुचित व्यवस्था हेतु कैथून में सरकार की ओर से एक निगम स्थापित करने का आश्वासन् दिया गया है । हाल ही में जयपुर में मसूरिया उत्पादन के सम्बन्ध में सरकार द्वारा सभा आयोजित की गई थी जिसमें सरकार द्वारा इसके

विवरण अभी प्राप्त नहीं हुआ है।

वर्तमान में प्रचलित मूल्य एवं मजदूरी निम्न प्रकार हैं :-

१. कच्चा माल :-

(क) सूत (प्रति १० पौंड)	८० का०	१०० का०	१२० का०	१४० का०	१६० का०
देशी	७०)००	८०)००	११६)००	१३२)००	--
विदेशी	६२)००	६५)००	१२०)००	१५७)५०	१६०)००

(ख) रेशम :- (प्रति किलो)

देशी २०।२२ काउन्ट -- १३।१५ काउन्ट १२०)००

विदेशी २०।२२ काउन्ट १८३)०० १३।१५ काउन्ट २०४)००

फूलारेशम -- १७२)००

(ग) जरी (प्रति गट्टक-२४० ग्राम)

	१४०० गजी	२७०० गजी	२४०० गजी
स्वर्ण	६५)००	११२)००	११०)००
रजत	-----	७२)००	-----

(घ) मर्सराइज (प्रति तोला):-

१२० नं०	१०० नं०
१)७५	१)५०

२. मजदूरी :-

उत्पादन एवं किस्म	दिसम्बर ६३ से पूर्व	दिसम्बर ६३ से
१	२	३
(क) थान (प्रतिपाण २५ गज)		
२०० सूत	६०)००	४५)००
२५० सूत	७०)००	५५)००
३०० सूत	८०)००	६५)००

१	२	३
(ख) साड़ियां (प्रति पाण २५ गज)		
जरी किनार	६०)००	४५)००
जरी स्पाट सादा	६३)००	४८)००
जरी स्पाट रंगीन (दोरंग)	६५)००	५०)००
जरी बंगला	७०)००	५०)००
जरी चौकड़ी (पांच खत दो तार)	७०)००	५०)००
जरी चौकड़ी (पांच खत चार तार)	७२)००	५२)००
जरी चौकड़ी (तीन खत दो तार)	७१)००	५१)००
जरी चौकड़ी (तीन खत चार तार)	७३)००	५३)००
जरी चौकड़ी (दो खत दो तार)	७३)००	५३)००
जरी चौकड़ी (दो खत चार तार)	७५)००	५५)००
जरी चौकड़ी (एक खत दो तार)	८२)००	६०)००
जरी चौकड़ी (एक खत चार तार)	९०)००	६५)००
साड़ी फूलदार (१०० फूल जरी)	८०)००	६३)००
साड़ी पूरा रेशम	७२)००	५५)००

-0-0-0-0-0-0-0-0-0-0-0-0-0-0-0-0-0-

(ग) साफा :- (२७ गज की पाण)		
जरी किनार	६५)००	५०)००
जरी चौकड़ी ३ खत	८०)००	६०)००
२ खत	९०)००	६५)००
१ खत	९५)००	७०)००

३. उत्पादन मूल्य :-

उत्पादन एवं किस्म	दिस० ६३ से पूर्व	दिस० ६३ से
(क) थान (१२ गज)		
२०० सूत	५५)००	५०)००
२५० सूत	६५)००	६१)००
३०० सूत	७५)००	७२)५०
(ख) साड़ी (५गज)		
जरी किनार	२५)००	२२)००
जरी स्काट सादा	२६)००	२३)२५
जरी स्काट रंगीन	२८)५०	२४)००
जरी बंगला ३ सींक ६ तार	३३)००	२६)५०
जरी बंगला ४ सींक ६ तार	३४)००	३१)००
जरी चौकड़ी ५ सूत २ तार	३३)००	३०)००
५ सूत ४ तार	३५)००	३३)५०
४ सूत २ तार	३४)००	३१)००
४ सूत ४ तार	३८)००	३४)००
३ सूत २ तार	३७)५०	३५)००
३ सूत ४ तार	४२)००	३८)००
२ सूत २ तार	४२)००	४०)००
२ सूत ४ तार	५२)००	४५)००
१ सूत २ तार	७०)००	६०)००
१ सूत ४ तार	६०)००	७२)५०
रंगीन पट्टा	२८)००	२५)००
फूलदार	५०)००	४५)००
टीसू सादा	८०)००	७५)००
(ग) साफा :- (६ गज)		
जरी किनार	४०)००	३६)००
जरी चौकड़ी २ सूत	[illegible])००	[illegible])००

संदर्भ ग्रन्थ-सूची

१. कोटा राज्य का इतिहास -- डा० मथुरा लाल शर्मा
२. प्राचीन भारतीय वेशभूषा -- डा० मोती चन्द
३. विलेज रजिस्टर मर्दुम शुमारी रियासत, कोटा १६२१
४. विलेज रजिस्टर मर्दुम शुमारी रियासत, कोटा १६३१
५. जनगणना रिपोर्ट, कोटा जिला १६५१
६. भारतीय अर्थ-शास्त्र-जघुवार एवं बेरी
७. भारत १६६३
८. ग्रामोद्योग मासिक पत्र
६. राजस्थान एयर बुक १६६३
१०. अहिंसक समाजवाद की ओर --गांधी
११. सहकार संकलन -- प्रचार संविभाग, सहकारी विभाग, राजस्थान ।
१२. कतिपय सहकारी सुमन -- डा० स्वरूपचन्द्र मेहता
१३. साधारण सिद्धान्त -- अखिल भारतीय खादकर्या बोर्ड
१४. पैम्फलेट्स, अखिल भारतीय खाद्य कर्या सप्ताह ।